ECONOMIC DATA AS CONTAINED IN EARLY BUDDHIST TEXTS

(IN HINDI)

Thesis

submitted to the University of Allahabad

for the degree of

Doctor Of Philosophy

(Faculty of Arts)

By

Pratibha Pathak

Supervisor

Prof. G.C. Pande

Ex- Head of Department of Ancient History, Culture and Archaeology

University of Allahabad

Chairman, Indian Institute of Advanced Study, Shimla

and Allahabad Museum Society, Allahabad

Department of Ancient History, Culture And Archaeology

University of Allahabad (U.P.)

1999

विषय सूची

भूमिका

प्राचीन भारतीय सस्कृति एव समाज पर सामान्यतया अनेक ग्रन्थ लिखे गये है तथा आर्थिक इतिहास को लेकर भी कई ग्रन्थो का प्रणयन हुआ है तो भी प्राचीन बौद्ध साहित्य मे वर्णित आर्थिक जीवन पर केन्द्रित शोध कार्य की आपेक्षिक विरलता को देखते हुए शोध–विषय का चयन किया गया है। प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य जो सामान्य जन–जीवन से जुडा हुआ है उसमे तत्कालीन आर्थिक जीवन सम्बन्धी प्रचुर साम्रगी बिखरी पडी है। प्राचीन सास्कृतिक इतिहास पर प्रणीत नये ग्रन्थो मे प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डे की पुस्तक "फाउन्डेशन ऑव इडियन कल्चर"[1] वाल्यूम प्रथम एव द्वितीय उल्लेखनीय है। बुद्ध कालीन समाज के विषय मे रतिलाल मेहता की "प्री बुद्धिस्ट इण्डिया",[2] टी डब्ल्यू राइस् डेविड्स की "बुद्धिस्ट इण्डिया" रिचर्ड फिक् की कृति दि सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धज टाइम" मोहनलाल महतो की "जातक कालीन सस्कृति" उत्तम कृतियॉ है। प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास पर लिखित पुस्तको मे मोती चन्द्र की 'सार्थवाह', अतीन्द्रनाथ बोस की "सोशल एण्ड रुरल इकोनॉमि ऑफ नार्दन इण्डिया" वाल्यम प्रथम एव द्वितीय, डॉ० प्राणनाथ की "ए स्टडी इन द एकोनामिक कन्डीशन ऑव इडिया", के०पी० रगास्वामी अयगर की "ऐस्पेक्ट्स ऑफ एशेट इडियन एकोनामिक थॉट" श्रीमती राइस डेविड्स का एतद्विषयक लेख "अर्ली इकोनामिक कन्डीशनस् इन नार्दन इण्डिया (J R A S. 1901) एन०एस० सुब्बाराव की पुस्तक "एकोनामिक एण्ड पोलिटिकल कन्डीशन्स इन ऐनशियन्ट इडिया", डॉ० प्रिया श्रीवास्तव की "प्राचीन बौद्ध ग्रन्थो मे वर्णित धातु एव धातुकर्म" आदि उल्लेखनीय है। इन विषयो पर अन्य

---

१ प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डे, फाउन्डेशन ऑफ इन्डियन कल्चर, दो वाल्यूम मे, डायमैनसस् ऑफ ऐन्शियन्ट इन्डियन सोशल हिस्ट्री, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिसर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

२ रतिलाल मेहता, प्री बुद्धिस्ट, बम्बई एक्जामिनर प्रेस, १६३१

पुस्तको का उल्लेख पुस्तक सूची मे सगृहीत है। किन्तु इन पुस्तको मे प्राचीन बौद्ध सूत्रो मे उपलब्ध आर्थिक तथ्यो का समग्र विवेचन नही किया गया है इसलिए इस शोध विषय का चयन किया गया है।

पालि त्रिपिटक के लिए उसके नालन्दा सस्करण का उपयोग किया गया है। जातको के लिए भदन्त आनन्द कोसल्यायन का हिन्दी अनुवाद तथा कावेल के अग्रेजी अनुवाद का उपयोग किया है।

इसके अतिरिक्त पालि त्रिपिटक के लिए 'पालि टेक्सस्सोसाइटी' के द्वारा प्रकाशित अग्रेजी अनुवाद एव महोबोधि सोसाइटी, सारनाथ द्वारा प्रकाशित हिन्दी अनुवादो का उपयोग किया गया है। 'बौद्ध भारती' के द्वारा प्रकाश्यमान पालि त्रिपिटक के सानुवाद मूल से युक्त खण्डो का भी उपयोग किया गया है। कुछ स्थलो पर इगतपुरी के प्रकाशित त्रिपिटक का भी उपयोग किया है। मूल बौद्ध साहित्य के अतिरिक्त अन्य सम्बद्ध साहित्य का भी उपयोग किया गया है जिसमे रामायण, महाभारत, सूत्र साहित्य, अर्थशास्त्र एव यूनानी विवरण उल्लेखनीय है।

साहित्यिक साक्ष्य के अतिरिक्त एव उसकी पुष्टि के लिए पुरातात्विक साक्ष्यो का भी उपयोग किया गया है। इसके लिए विभिन्न बौद्ध केन्द्रो के उत्खनन विवरणो का उपयोग किया है। जिनका उल्लेख यथा स्थान एव पुस्तक सूची मे दिया गया है।

शोध विषय के सदर्भ मे सम्बन्धित भौगोलिक जानकारी के लिए डा० भरतसिह उपाध्याय की "बुद्धकालीन भारतीय भूगोल" सर अलेक्जेडर कर्निघम द्वारा लिखित एव जगदीश चन्द्र द्वारा अनूदित "प्राचीन भारत का भूगोल", प्रो० यू० एन० राय की "प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन", डा० विमलचरण लाहा की "प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल" का अध्ययन किया गया है।

पालि ग्रन्थो के तिथिक्रम की विवेचना हेतु प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डे की "स्टडीज इन द ओरिजन्स ऑफ बुद्धिज्म" (इलाहाबाद, १९५७) एव "बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास"

विण्टरनिट्ज की "हिस्ट्री ऑफ इण्डियन् लिटरेचर"[1] डॉ० भरत सिह उपाध्याय की "पालि साहित्य का इतिहास"[2] डॉ० राहुल साकृत्यायन का "पालि साहित्य का इतिहास"[3] एव डॉ० विमल चरण लाहा की "हिस्ट्र ऑफ पालि लिटरेचर"[4] का अध्ययन किया गया है।

पालि साहित्य के विभिन्न शब्दो के समुचित अर्थज्ञान हेतु जिन कोषग्रन्थो का अध्ययन किया गया इनमे प्रमुख है जी० पी० मलालशेखर की दो भागो मे प्रकाशित "डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स"[5] रीजडेविड्स महोदय की "पालि इग्लिश डिक्शनरी" एव भदन्त आनन्द कौसल्यायन की "पालि हिन्दी कोश"।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सात अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय मे "प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य का तिथिक्रम एव परिचय प्रस्तुत किया गया तथा शोध विषय की दृष्टि से उनके महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

---

१ यह पुस्तक लन्दन से १६०२ मे प्रकाशित हुई थी। १६५० एव १६७१ मे मोतीलाल बनारसीदास ने इसे पुनर्मुद्रित किया।

२ डा० भरतसिह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रथम, सन् १६७२।

३ महापण्डित राहुल साकृत्यायन, पालि साहित्य का इतिहास" हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ० प्र० लखनऊ १६६३

४ लन्दन, १६३३

५ जी० पी० मलालशेखर, ए डिक्शनरी ऑव पालि प्रौपर नेम्स–३, जिल्द

द्वितीय अध्याय "भौगोलिक परिचय" मे प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे प्रसिद्ध एव बहुचर्चित भौगोलिक स्थलो का परिचय दिया गया है एव विनयपिटक तथा सुत्तपिटक से उनके सम्बन्ध को दर्शाया गया है।

तृतीय अध्याय "कृषि" मे कृषि एव पशुपालन सम्बन्धी विषयो की विवेचना की गई है।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है "उद्योग एव व्यवसाय"। बुद्धयुगीन विकसित उद्योगो एव जीवकोपार्जन के विभिन्न साधनो का विवरण इस अध्याय मे प्रस्तुत है।

पॉचवा अध्याय "व्यापार एव वाणिज्य" से सम्बधित है। इसमे व्यापारिक व्यवस्था, विनिमय से साधन एव आर्थिक सगठन की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

अध्याय छ मे खानपान, वस्त्राभूषण एव मनोरजन के प्रचलित साधनो का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय सात 'उपसहार' के रूप मे लिखा गया है जिसमे तत्कालीन आर्थिक जीवन की समीक्षा करते हुए शोध अध्ययन के माध्यम से प्राप्त प्रमुख तथ्यो को प्रस्तुत किया गया है।

मै प्रात स्मरणीय परमपूज्य गुरुवर्य प्रोफेसर गोविन्द चन्द्र पाण्डे की सदैव ऋणी हू, जिन्होने अपने विद्वतापूर्ण कार्यो मे अत्यन्त व्यस्तता से परिपूर्ण दैनिकचर्या के मध्य मेरे शोध कार्य हेतु अपने निर्देशन की सहर्ष स्वीकृति दी। यह मेरा परमसौभाग्य है कि मै गुरुवर के उदार स्नेह की सदैव भागिनी रही हूँ एव जिनके पाण्डित्यपूर्ण सुस्पष्ट निर्देशन एव प्रोत्साहन से यह शोध प्रबन्ध अपना यह रुप ग्रहण कर सका है। ऐसे मूर्धन्य गुरुश्रेष्ठ के मार्गप्रदर्शन से मुझे

गर्व एव हर्ष का अनुभव हो रहा है। मै अपने स्तुतत्य गुरुश्रेष्ठ के प्रति अपनी हार्दिक विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य को पूर्ण कराने मे प्रोफेसर उदय नारायण राय, भूतपूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग की स्वभावगत सह्रदयता तथा उपकारी वृत्ति एव उनका स्नेहिल आशीर्वाद द्वारा विभिन्न रुपो मे मेरी जिस प्रकार सहायता हुई, उन्हे लेखनी एव शब्दो के माध्यम से वर्णित करने मे मै अपने को अक्षम महसूस करती हूँ।

मै विशेष आभारी हूँ डॉ० हरि नारायण दुबे, रीडर, प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्व विभाग की, जिन्होने सम्पूर्ण शोधावधि मे बडे ही स्नेहपूर्वक मेरा उत्साहवर्धन किया एव अभिरूचि पूर्वक मेरी सहायता की।

डॉ० जय नारायण पाण्डे, रीडर प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्व विभाग, की शोधार्थियो पर विशेष कृपा रहती है। उन्होने मेरा भी मार्गदर्शन कर मुझे बहुमूल्य सुझाव दिये, जिसके लिए मै उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

डॉ० देवी प्रसाद दुबे, प्रवक्ता प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग ने मुझे शोध प्रबन्ध विषयक अति उपयोगी सुझाव दिये तथा शोध–विषयक व्यवधानो का वैदुष्यपूर्ण ढग से समय–समय पर निराकरण किया अत उनके प्रति मै अपनी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

प्रोफेसर विजय कुमार पाण्डेय, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, डॉ० राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद एव डॉ० ओम प्रकाश श्रीवास्तव, (अधिकारी पुरातत्व) ने शोध निमित्त मुझे जो महत्वपूर्ण सुझाव एव बहुमूल्य सहयोग दिया उसके लिए मै उनकी सदैव अभारी हूँ।

विभाग के वर्तमान अध्यक्ष प्रोफेसर विद्याधर मिश्र ने विभागाध्यक्ष के रूप मे मुझे कृपापूर्वक समस्त विभागीय सुविधाये उपलब्ध करायी उतदर्थ मे उनके प्रति अपना विशेष आभार व्यक्त करती हूँ। डॉ० ओम प्रकाश श्रीवास्तव, प्रवक्ता प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग ने अपना समय–समय पर जो सहयोग एव सुझाव दिया उनके प्रति मै अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मै प्रोफेसर सिद्धेश्वरी नारायण राय, प्रो० ब्रजनाथ सिह यादव, प्रो० जसवन्त सिह नेगी, प्रो० शिवेश चन्द्र भट्टाचार्य, प्रो० रामकृष्ण द्विवेदी, डॉ० वनमाला मधोलकर, डॉ० अनामिका राय की अत्यन्त अत्यन्त अभारी हूँ जिनकी शुभकामनाऐ शोध कार्य के दौरान मेरा उत्साहवर्धन करती रही।

मै इलाहाबाद सग्रहालय समिति, इलाहाबाद के अधिकारी गण, निदेशक श्री उदयशकर तिवारी, सग्रहपाल डॉ० शिवकुमार शर्मा, डॉ० सुनील सिन्हा एव डॉ० दिनेश केसरवानी का हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जो मेरे सदैव शुभेच्छु रहे है एव जिन्होने शोध कार्य की पूर्णता हेतु अपना सतत् सहयोग प्रदान किया। मै अपने अग्रज डॉ० राजेश कुमार मिश्रा के प्रति अपनी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होने समय–समय पर अपना यथेष्ट सहयोग दिया।

मै अपने पति श्रीमान् विद्या रतन पाठक की चिर ऋणी हूँ जिन्होने शोध हेतु मुझे निरन्तर प्रोत्साहन एव अपना यथाशक्ति सहयोग प्रदान किया एव मेरे शोधकार्य के वें मुख्य प्रेरणा स्रोत रहे हैं।

मैं अपना स्नेहिल धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ अपनी तीन वर्षीय नन्ही पुत्री कुमारी अपर्णा पाठक को, जो दो मास तक मुझसे दूर, फैजाबाद मे मेरे वात्सल्य से वचित रही एव वहॉं धैर्यपूर्वक मेरे शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने की प्रतिक्षा करती रही।

ममतामयी परममूज्य जननी श्रीमती गायत्री देवी एव जनक श्री रामानन्द मिश्रा का तो सम्पूर्ण जीवन ही मेरे कल्याण के लिए सर्मपित रहा है। मेरी मॉ एव पिता ने मुझे अबोध बालिका मान मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वदा मुझ पर जो स्नेहवर्षा की है उसके लिए आभार व्यक्त करना लेखनी के बस की बात नही है।

अपने पितृवत् ससुर श्रीमान् केसरी प्रसाद पाठक एव मातृवत् सास श्रीमती यन्त्रावती देवी के असीम स्नेह के कारण मै सर्वथा चिन्तामुक्त होकर शोध–कार्य कर सकी हूँ एव उनके पुण्य–प्रताप से ही मेरा यह शोध कार्य पूर्ण हो सका है। उनके प्रति मै अपना हार्दिक एव आत्मिक नमन अभिव्यक्त करती हूँ।

मेरे शोध प्रबन्ध के टकण का कार्यभार राका प्रकाशन ने बडी कुशलता एव एकाग्रता से सम्हाला एव प्रत्येक स्तर पर अपनी दक्षता का परिचय दिया जिसके लिए मै श्री राकेश तिवारी, श्री जितेन्द्र कुमार मिश्रा एव श्री सुनील पाण्डेय के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

दिनाक

प्रतिभा

(प्रतिभा)

अध्याय-१

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य-तिथिक्रम एवं ग्रन्थ परिचय

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य-तिथिक्रम एवं ग्रन्थ परिचय

बुद्धत्व प्राप्ति से महापरिनिर्वाण तक भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यो एव अन्य व्यक्तियो को यत्र–तत्र धर्मसम्बन्धी उपदेश दिये। अर्थात् ये उपदेश अनेक व्यक्तियो को अनेक स्थानो पर दिये गये। भगवान् बुद्ध के जीवन काल मे उनके समस्त उपदेश मौखिक ही थे। इन उपदेशो को भगवान् बुद्ध के शिष्य अपने स्मृति मे भलीभॉति सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते थे। इसके अनेक प्रमाण हमे प्रारम्भिक पालि साहित्य मे मिलते है। विनयपिटक के चुल्लवग्ग मे धर्म–धर (धर्म या सुत्त पिटक को धारण करने वाले), विनय–धर (विनयपिटक या विनय सम्बन्धी उपदेशो को धारण करने वाले), मातृका–धर (मातृकाओ–तात्त्विक उपदेश–सम्बन्धी अनुक्रमणियो, जिनसे बाद मे अधिधम्म पिटक का विकास हुआ, को धारण करने वाले), पडित चतुर एव मेधावी भिक्षुओ का उल्लेख मिलता है।[1] अगुत्तरनिकाय के 'एतदग्गवग्ग' मे भगवान् बुद्ध की शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रो मे पारगत भिक्षु–भिक्षुणियो एव उपासक–उपासिकाओ की पूरी एक सूची मिलती है।[2] भगवान् बुद्ध ने प्रचलित मागधी भाषा मे उपदेश दिया और भिक्षुओ को अनुमति दी कि वे अपनी–अपनी बोलियो मे उनके उपदेशो को स्मरण करे।[3]

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग १/२/७,

२ अगुत्तर–निकाय एतदग्गवग्ग,

३ डॉ० पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० ६४,

भगवान् बुद्ध ने किसी भिक्षु को अपना उत्तराधिकारी नही नियुक्त किया था। मगध के महामात्य वर्षकार वेणुवन कलन्दक निवाप मे आयुष्मान आनन्द से प्रश्न करते है "भो आनन्द! क्या आप सबमे एक भिक्षु को भी उन गौतम ने (यह कह) स्थापित किया है– 'मेरे बाद यह तुम्हारा प्रतिशरण (आश्रयदाता) होगा, जिसका कि इस समय आप लोग अनुसरण करते है?''

"नही, ब्राह्मण! उन जाननेवाले, देखनेवाले भगवान् अर्हत् सम्यक– सबुद्ध ने एक भिक्षु को भी नही स्थापित किया– 'मेरे बाद यह तुम्हारा प्रतिशरण होगा, जिसका कि इस समय हम अनुसरण कर रहे हो।"

"– – – – – – भो आनन्द! इस प्रकार प्रतिशरण–रहित होने पर एकता (=सामग्री) का क्या हेतु है?"

"ब्राह्मण! हम प्रतिशरण–रहित नही है, ब्राह्मण! हम धर्म–प्रतिशरण (=धर्म है शरण जिनका) है।"[१] स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् 'धम्म' ही भिक्षुओ का सहारा था। शास्ता ने यह बात अपने जीवन काल मे स्वय भी स्पष्ट कर दी थी। वज्जि–जनपद के वेणु–ग्राम मे भगवान् एक बार (परिनिर्वाण के कुछ समय ही पूर्व) बडे अस्वस्थ हो गये। भारी मरणान्तक पीडा होने लगी ऐसी स्थिति मे निरीह एव मूढ हो जाने वाले आनन्द को भगवान् ने कहा– "आनन्द! मैने न अन्दर न –बाहर करके धर्म उपदेश कर दिये। आनन्द' धर्मो मे तथागत को (कोई) आचार्य मुष्टि (=रहस्य) नही है। – – – इसलिये आनन्द! आत्मदीप=आत्मशरण=अनन्यशरण, धर्मदीप=धर्मशरण=अनन्य–शरण होकर बिहरो।"[२]

---

१ मज्झिम–निकाय, गोपक–मोग्गलान–सुत्तन्त,

२ दीघ–निकाय २/३

यह स्पष्ट है कि प्रचलित प्रथा के विरुद्ध शाक्यमुनि ने अपने शिष्यो का सगठन शास्तृमूलक न करके शासनमूलक किया था।[1]

परन्तु भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के एक सप्ताह पश्चात ही भिक्षुओ मे अनुशासनहीनता स्पष्ट रूप से दिखायी पडने लगी। भगवान के देहान्त से दुखी, करुण विलाप करते भिक्षुओ से सुभद्र नामक बृद्ध प्रव्रजित यह कहते सुना गया–" मत आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुमुक्त हो गये। हम महाश्रमण से पीडित रहा करते थे– 'यह तुम्हे विहित है, यह तुम्हे विहित नही है।' अब हम जो चाहेगे, सो करेगे, जो नही चाहेगे, सो नही करेगे।"[2] ऐसी परिस्थिति मे बुद्ध के वचनो के सग्रह एव सगायन की आवश्यकता को बल मिला। आयुष्मान् महाकाश्यप ने निश्चय किया "अच्छा हो आवुसो! हम धर्म और विनय का सगान (=साथ पाठ) करे, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। अधर्मवादी वलवान् हो रहे है, धर्मवादी दुर्बल हो रहे है।"[3] इसके लिए पॉच सौ भिक्षुओ का चयन किया गया एव राजगृह मे वर्षावास करते हुए धर्म एव विनय के सगायन का निश्चय हुआ।

---

१ डॉ० पाण्डे, गोविन्द चन्द्र– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० १३४

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ११/१/१,

दीघ निकाय, २/३,

३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ११/१/१,

राजगृह के वैभारपर्वत मे स्थित सप्तपर्णी गुफा मे यह सभा आयोजित हुई। इस सभा की अध्यक्षता महाकाश्यप ने की एव आनन्द ने भी प्रमुख रूप से भाग लिया। यह सभा इतिहास मे 'प्रथम सगीति' के नाम से विख्यात हुई। इसमे पॉच सौ भिक्षुओ के भाग लेने के कारण इस सगीति को 'पच शतिका' भी कहा जाता है।[१] विनयपिटक के चुल्लवग्ग, दीपवस, महावस, बुद्धघोष कृत समन्तपासादिका (विनयपिटक की अर्थकथा) की निदान कथा, महाबोधिवस, महावस्तु, तिब्बती दुल्व मे थोडी–बहुत विभिन्नताओ के साथ, राजगृह की इस प्रथम सगीति का वर्णन मिलता है। धम्म (सुत्त) एव विनय का सगायन किया गया।[२] स्पष्ट है इन सभी साक्ष्यो मे धम्म (सुत्त) एव विनय के सगायन की बात कही गयी है।

गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के सौ वर्ष पश्चात् वैशाली के बालुकाराम मे द्वितीय सगीति का आयोजन किया गया। वैशाली के भिक्षु विनय–सम्बन्धी कुछ नियमो के पालन मे मनमानी करने लगे थे एव विनय–विरुद्ध निम्न दस नियमो का पालन करने के लिए अन्य व्यक्तियो को भी प्रोत्साहित कर रहे थे।

१ श्रृगि–लवण–कल्प विहित है।

(अर्थात् सीग मे नमक रखकर पास रक्खा जा सकता है, कि जहॉ अलोना होगा, लेकर खायेगे)

२ द्वयगुल–कल्प विह्ति है।

(अर्थात् दोपहर को दो अगुल छाया को बिताकर भी विकाल मे भोजन करना विहित है

---

१ विनयपिटक, महावग्ग,११/४/२,

२ उपाध्याय डॉ० भरतसिह, पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ८६,

३ ग्रामान्तर–कल्प विहित है।

(अर्थात् भोजन कर चुकने पर, छक लेने पर गॉव के भीतर भोजन करने जा सकता है)।

४ आवास–कल्प विहित है।

(अर्थात एक सीमा के बहुत से आवासो मे उपोसथ करना विहित है)

५ अनुमति–कल्प विहित है।

(अर्थात् एक वर्ग के सघ का विनय–कर्म करना, 'यह ख्याल करके, कि जो भिक्षु (पीछे) आयेगे, उनको स्वीकृति दे देगे)

'६ आचीर्ण–कल्प विहित है।

(अर्थात् यह मेरे उपाध्याय ने आचरण किया है, यह मेरे आचार्य ने आचरण किया है' ऐसा समझकर किसी बात का आचरण करना विहित है)

७ अमथित–कल्प विहित है।

(अर्थात् जो दूध दूध–पन को छोड चुका, दही पन को नही प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकने पर, छक लेने पर, अधिक पीना विहित है)

८ जलोगी–पान विहित है।

(जो सुरा अभी चुवाई नहीं गई है, जो सुरापन को अभी प्राप्त नही हुई है, उसका पीना विहित है)

६ अदशक निषीदिन (बिना मगजी का आसन) विहित है?

१० जातरूप–रजत (=सोना चाँदी) विहित है।[1]

इन दस बातो का समर्थन करने वाले प्राचीनक के (पूर्ववाले) या वैशाली के भिक्षु थे एव इन बातो को न मानने वाले भिक्षु पावेयक (=पश्चिमवाले) कहे गये। इस विवाद के सुलझााने के लिए भिक्षुगण वैशाली मे एकत्रित हुए। भिक्षुओ के शोर–गुल मे कोई हल न निकलता देख चार प्राचीन भिक्षुओ (आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान साढ, आयु मान् क्षुद्रशोभित (=खज्ज सोभित), आयुष्मान् वार्षभग्रामिक (=वासभगामिक)एव चार पावेयक भिक्षुओ (आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् सभूत साणवासी, आयुष्मान् यश काकडपुत्त, आयुष्मान् सुमन) की एक समिति बनायी गयी।[2] इस समिति ने विवादग्रस्त दस बातो को विनय विरुद्ध घोषित कर दिया।

तत्पश्चात् वैशाली के बालुकाराम मे महास्थविर रेवत की अध्यक्षता मे एक सभा आयोजित हुई इसमे भी, प्रथम सगीति के समान ही धम्म एव विनय का सगायन एव सकलन हुआ। यह सभा इतिहास मे 'द्वितीय सगीति' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सगीति मे सात सौ भिक्षुओ ने भाग लिया इसलिए यह सगीति, 'सप्तशातिका' कही जाती है।[3] इस सगीति का वर्णन भी प्राय उन सब ग्रन्थो मे मिलता है, जिनमे प्रथम सगीति का।[4]

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १२/१/१,

२ वही १२/३/१,

३ वही १२/३/३,

४ डॉ० उपाध्याय, भरतसिह पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६५,

वैशाली के भिक्षुओ की दस बातो के नियम विरुद्ध घोषित होने पर उन्होने स्थविरवाद (अन्य भिक्षुओ) से पृथक् महासघ बनाया और वे लोग महासाधिक कहलाने लगे। कालान्तर मे स्थविरवाद एव महासाधिक से अन्य सम्प्रदायो की उत्पत्ति हुई। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २२८ वर्ष बाद सम्राट अशोक के समय तक बौद्ध भिक्षु सघ अठारह निकायो मे विभक्त हो गया। इनमे बारह स्थविरवाद परम्परा तथा छे महासघिक परम्परा से सम्बद्ध थे। दीपवस के अनुसार निकाय भेद क्रम इस प्रकार था।[1]

---

१ डॉ० पाण्डे , बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ १७६,
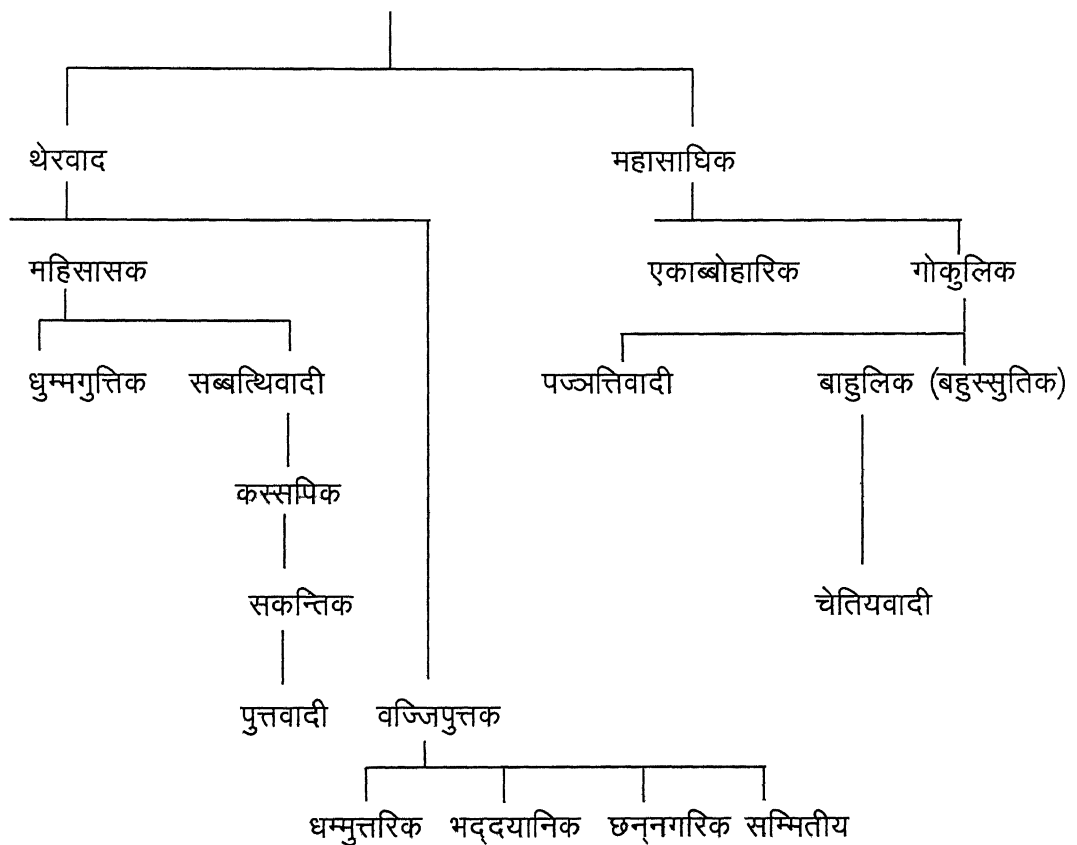
तृतीय सगीति सम्राट अशोक के काल मे हुई। अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था तथा वह स्थविरवादी परम्परा के भिक्षुओ का प्रश्रयदाता था। इस प्रश्रय से आकृष्ट होकर अन्य मतावलम्बी भी सघ मे प्रवेश कर गये और वह अपने अपने मत को बुद्ध का मत बताने लगे। वास्तविक भिक्षुओ ने इससे क्षुब्ध होकर उपोसथ (पातिमोक्ख का पाठ) करना बन्द कर दिया। राजा अशोक ने सघ मे पुन उपोसथ प्रारम्भ कराने के लिए तत्कालीन महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स की सहायता से सघ से साठ हजार पाखडियो को निकाल दिया। तत्पश्चात् बुद्ध के परिनिर्वाण के २३६ वर्ष बाद पाटलिपुत्र के अशोकाराम मे तृतीय धर्म–सगीति का आयोजन किया गया। दीपवस, महावस एव समन्तपासादिका, मे इस सगीति का विवरण मिलता है। इस सभा मे अन्तिम रूप से बुद्ध वचनो के स्वरूप का निश्चय किया गया और ६ महीनो के अन्दर भिक्षुओ ने तिस्स मोग्गलिपुत्त के सभापतित्व मे बुद्ध–वचनो का सगायन एव परायण किया। इसी समय तिस्स मोग्गलिपुत्त ने मिथ्यावादी १७ बौद्ध, सम्प्रदायो का निराकरण करते हुए 'कथावत्थु' नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसे अधिधम्मपिटक के ग्रन्थो मे सम्मिलित कर, त्रिपिटक के अन्य ग्रन्थो के समान सम्मान मिला। इस सगीति मे त्रिपिटक को अन्तिम स्वरूप प्रदान किया गया एव भिक्षुओ को बौद्ध धर्म के प्रचार के निमित्त पडोसी देशो मे भेजने का निर्णय लिया गया।

बौद्ध सगीतियो के इतिहास से स्पष्ट है कि त्रिपिटक क्रमश इनमे अन्तिम स्वरुप प्राप्त करते रहे। इन तीनो पिटको मे विनयपिटक एव सुत्तपिटक की प्राचीनता स्पष्ट है। पहली दो

---

१ उपाध्याय, भरतसिह, पाली साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६५.

सगीतियो के धम्म (सुत्त) एव विनय के सगायन की बात स्पष्ट रूप से कही गयी है। अधिधम्म पिटक तीसरी सगीति मे बुद्ध की शिक्षाओ का नये सिरे से विभाजन करके जोडा गया है। इसका एक ग्रन्थ 'कथावस्तु' स्पष्ट रूप से अशोककालीन है। विनयपिटक एव सुत्तपिटक के अधिकाश भाग को बुद्ध के निर्वाण के १०० वर्ष के अन्दर का ही सकलन मानना चाहिए क्योकि विभिन्न बौद्ध सम्प्रदाओ मे यही ग्रन्थ राशि हेरफेर के साथ मिलती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि यह ग्रन्थ राशि सम्प्रदाय भेद के पहले की है। इसके विपरीत अभिधम्मपिटक मे सम्प्रदाय गत भेद अधिक मिलता है। विनयपिटक एव सुत्तपिटक मे बिम्बसार एव अजातशत्रु के नाम मिलते है। परन्तु जो अशोक जो बौद्ध धर्म का महान सरक्षक था उसका नाम नही मिलता अत यह ग्रन्थ अशोक के पूर्व काल का होना ही सम्भाव्य है।

आधुनिक इतिहासकार बुद्ध के महापरिनिर्वाण की तिथि लगभग ४८७ से ४८३ ई० पू० के बीच मानते है। इस तिथि का मुख्याधार सिहली ऐतिहासिक परम्परा है। इस परम्परा के अनुसार   का राज्याभिषेक बुद्ध के परिनिर्वाण के २१८ वर्ष बाद हुआ था। (द्रष्टव्य गायिगर–महावश, रायचौधरी–पालिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐन्शियन्ट इण्डिया,) अशोक के राज्याभिषेक २६६ ई० पू० मनाने पर महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि ४८७ ई० पू० हो जाती है। बुद्ध के निर्वाण के सौ वर्ष बाद द्वितीय सगीति का आयोजन हुआ। अत यह तिथि ३८७ ई० पू० के आसपास ठहरती है और इस सौ वर्ष के मध्य ही विनयपिटक और सुत्तपिटक का सकलन काल ठरहता है। यहॉ पर यह स्मरणीय है कि बुद्ध के निर्वाण की तिथि पर विवाद रहा है। उत्तरी परम्परा के अनुसार जिसमे वसुमित्र का समयभेदोपरचनचक्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है, बुद्ध का परिनिर्वाण एव पहली सगीति अशोक से सौ वर्ष पूर्व की है। इस मत

को हाल की गटिगन सगोष्ठी मे स्वीकार किया गया है और प्रो० बेशर्ट आदि विद्वान इसे अब सामान्यतया स्वीकार करते है। उत्तरी परम्परा मे अशोक एव काकवर्णी कालाशोक का भेद नही किया गया है इसलिए यह परम्परा अश्रद्धेय है। दूसरा इस मत मे, बुद्ध कालीन नगर, नगर ही नही थे यह माना जाता है। यह कल्पना पुरातत्व समर्थित नही है। अत उत्तरी परम्परा को प्राय भारत मे स्वीकार नहीं किया जाता।[1]

विनयपिटक

भगवान् बुद्ध ने जिस धर्म का उपदेश दिया उसका साक्षात्कार जीवन की पवित्रता के बिना सम्भव नही था। अत बौद्ध भिक्षु–भिक्षुणियो की जीवनचर्याओ से सम्बन्धित चारित्रिक विधान, नैतिक शिक्षा एव बौद्ध सघ के लिये किये गये नियम निर्देश ही विनयपिटक का मूलाधार है। प्रथम धर्म–सगीति के प्रारम्भ मे उसके सभापति महाकाश्यप ने भिक्षुओ से पूछा "आयुष्मानो हम पहले किसका सगायन करे धम्म का या विनय का? तब भिक्षुओ ने उन्हे उत्तर दिया 'भन्ते महाकाश्यप विनय ही बुद्ध शासन की आयु है, विनय के ठहरने पर ही शासन ठहरता है इसलिए विनय का ही सगायन करे।" इस प्रकार प्रारम्भिक काल से त्रिपिटक के अन्तर्गत विनयपिटक का महत्व स्पष्ट है।[2] विनयपिटक तीन विभागो मे विभक्त है। १ सुत्त विभग २ खन्धक ३ परिवार

सुत्त विभग दो उपविभागो मे विभक्त है यथा पाराजिक (भिक्खु विभग) एव पाचित्तिय (भिक्खुनि–विभग)[1] सुत्त विभग मे 'पातिमोक्ख' के विभिन्न नियमो की विस्तृत व्याख्या है।

---

१ डॉ० पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, स्टडीज इन द ओरिजन्स ऑफ बुद्धिज्म, पृष्ठ ६०२, ६०३ एव ६०४

२. विनयपिटक, सम्पादकीय–वक्तव्य, डॉ० परमानन्द सिह

खन्धक भी दो भागो मे विभक्त है १ महावग्ग २ चुल्लवग्ग सुत्त विभग जब कि अधिकाशत निषेधात्मक है, महावग्ग का स्वरूप विधानात्मक है। सघ एव दैनिक जीवन सम्बन्धी विभिन्न नियमो का वर्णन ही खन्धक का उद्देश्य है। महावग्ग एव चुल्लवग्ग दोनो ही वर्गो मे क्रमश दस दस की सख्या मे अध्याय है। परिवार या परिवार–आठ विनयपिटक का अन्तिम भाग है। परिवार को विदृत्गण कालान्तर का सकलन स्वीकार करते है। परिवार मे उन्नीस परिच्छेद है, जिसमे अधिधम्म शैली पर विनयपिटक के विषय की ही पुनरावृत्ति है।[२] कौन सा शिक्षाप्रद कहाँ दिया गया है सघ के झगडे कितने प्रकार के होते है तथा उपोसथ आदि क्या है जैसे बौद्धधर्म के व्यवहारिक शिक्षा के साथ–साथ महेन्द्र द्वारा श्रीलका गमन एव विनयपिटक की परम्परा स्थापित करने एव उन २६ सिहली भिक्षुओ के नाम भी दिये गये है जिन्होने ताम्रपर्णि द्वीप मे विनयपिटक का प्रकाशन किया।[३]

महात्मा बुद्ध के जीवन सम्बन्धी एव ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण घटनाओ के साथ–साथ शोध–प्रबन्ध के दृष्टि से विनयपिटक हमे अत्यन्त व्यापक एव विस्तृत सूचनाये देता है। खान–पान वस्त्र–आभूषण, पात्र (बर्तन), जूते आदि से सम्बन्धित विभिन्न भिक्षु–भिक्षुणी नियमो मे, हमे तत्कालीन आर्थिक जीवन सम्बन्धी अच्छी झाकी मिलती है। अन्य स्थलो पर भी प्रसगवस

---

१ इस विभाजन से सम्बन्धित समस्याओ का विस्तार से उल्लेख डॉ० भरतसिह उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ 'पालि साहित्य का इतिहास' मे किया है।

२ डॉ० उपाध्याय, भरतसिह, पालि साहित्य का इतिहास, पृ० ३५६

३ प्राचीन बौद्ध ग्रन्थो मे वर्णित धातु एव धातुकर्म, पृ० १२

ऐसी सूचनाये मिल जाती है। एक भाई प्रव्रजित होने के इच्छा से दूसरे भाई को घर–गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों को समझाते हुए कहता है कि घर–गृहस्थी को भली भाति चलाने के लिए "पहले खेत जोतवाना चाहिये जोतवाकर बोवाना चाहिये। बोवाकर पानी भरना चाहिए, पानी भरकर निकालना चाहिए, निकाल कर सुखाना चाहिए, सुखवाकर कटवाना चाहिये, कटवाकर ऊपर लाना चाहिये ऊपर ला सीधा करवाना चाहिये, सीधा कर मर्दन करवाना (– मिसवाना) चाहिये, मिसवाकर पयाल हटाना चाहिये। पयाल को हटाकर भूसी हटानी चाहिये। भूसी हटाकर फटकवाना चाहिये। फटकवाकर जमा करना चाहिये। इसी प्रकार अगले वर्षो मे भी करना चाहिए। काम नाश नही होते, कामो का अन्त नही जान पडता।"[१] इन पक्तियो मे पूरी कृषि–प्रकिया का चित्रण सजीव हो उठा है।

सुत्त पिटक

सुत्त पिटक पॉच निकायो मे विभाजित है– १ दीघ निकाय २ मज्झिमनिकाय ३ सयुत्त निकाय ४ अगुत्तर निकाय ५ खुद्दक निकाय।

दीघ निकाय

परम्परा के अनुसार दीघ निकाय का नाम उसके अर्न्तगत सूत्रो के प्रमाणदैर्ध्य के कारण है।[२] दीघ निकाय मे कुल ३४ सुत्त है जो तीन वर्गो १ सीलक्खन्ध वग्ग, २ महावग्ग, ३

३– पाथिकवग्ग मे विभक्त है। सीलक्खन्ध वग्ग मे एक से तेरह सुत्त सग्रहित है। इसमे अधिकतर सुत्त गद्य मे है, केवल कुछ सुत्त–गाथाए पक्तियो मे निबद्ध है। इसमे शील, समाधि एव प्रज्ञा से सम्बन्धित बुद्धोपदेश के साथ–साथ छ तीर्थकरो पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोसाल,

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ७/१/१

२ डॉ० पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास पृ० २३१,

अजितकेश, कम्बल, प्रकुध कात्यायन, निगण्ठ, नाथपुत्त, सजय वेलट्ठिपुत्त के मत, जातिवाद, कर्मकाण्ड एव अहिसामय यज्ञ का खण्डन है। इस वग्ग मे तत्कालीन समाजिक एव आर्थिक जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण विवरण मिलता है। जीवकोपार्जन एव मनोरजन के विविध साधनो के विषय मे शीलक्खन्ध वग्ग मे अति महत्वपूवर्ण सूचनाये मिलती है।

'महावग्ग' मे १४ से २३ तक सुत्तो का सग्रह है। महावग्ग के महापरिनिब्बाण—सुत्त मे महात्मा बुद्ध की जीवन यात्रा के अन्तिम समय की घटनाओ का महत्वपूर्ण चित्रण मिलता है। इसी प्रकार इसमे ऐतिहासिक घटनाक्रम की दृष्टि से अनेक घटनाये वर्णित है। वज्जियो की विरुद्ध अजातशत्रु की शत्रुता, बुद्ध की अन्तिम यात्रा, पाटलिपुत्र का निर्माण, अम्बपाली गणिका का भोजन, निर्वाण की तैयारी, चुन्द के यहॉ अन्तिम भोजन, जीवन की अन्तिम घडियॉ, सुभद्र की प्रवज्या, अन्तिम उपदेश, निर्वाण, दाहक्रिया, स्तूपनिर्माण का बडा स्पष्ट चित्रण इसमे हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमे सार्थवाह, विभिन्न प्रकार के वस्त्र आदि आर्थिक इतिहोसोपयोगी घटनाये भी प्रसगवस आयी है।

'पाथिक—वग्ग' मे चौबीसवी सख्या से लेकर चौतीसवी सख्या तक सुत्त सकलित है। इसमे वर्णव्यवस्था का खण्डन, गृहस्थ बौद्धधर्म, जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के निर्वाण सम्बन्धी उल्लेख है। शोध विषय की दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण सूत्र इसमे हाथ लगते है। इससे ज्ञात होता है कि भारतवर्ष नगरीय सभ्यता की ओर तेजी से बढ रहा था एव आबादी की सघनता स्पष्ट हो रही थी। इसमे कहा गया है— "जम्बुद्वीप समृद्ध एव सम्पन्न होगा— ग्राम, निगम, जनपद और राजधानी कुक्कुट सम्पातिक (मुर्गी कुदान घरो वाली) रहेगे। नर्कट या सरकडे के वन की तरह जम्बुद्वीप मानो नरक तथा मनुष्यो की आबादी से भर जायेगा।"[1]

---

१ दीघ निकाय, ३/३

मज्झिम निकाय

मज्झिम निकाय मे मध्यम आकार के सुत्तो का सग्रह है। इसमे महत्व पर प्रकाश डालते हुए प० राहुल साकृत्यायन कहते है "त्रिपिटक वाड्मय मे मज्झिम निकाय का स्थान सर्वोच्च है। विद्वान लोग इसी के बारे मे कहते है, कि यदि सारा त्रिपिटक और बौद्ध साहित्य नष्ट हो जाये, सिर्फ मज्झिम निकाय ही बचा रहे, तो भी इसकी मदद से हमे बुद्ध की व्यक्ति, उनके दर्शन और अन्य शिक्षाओ के तत्व को समझने मे कठिनाई न होगी।"[१] यह निकाय तीन विभागो, पन्द्रह वर्गो एव एक सौ बावन सुत्तो मे विभक्त है। ये तीन वर्ग है। १ मूलपण्णासक, २ मज्झिमपण्णासक एव ३ उपरिपण्णसक। प्रथम दो पण्णसको मे ५०–५० सुत्त है और अन्तिम मे ५२। बौद्ध धर्म की दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ इसमे तत्कालीन धार्मिक, भौगोलिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एव आर्थिक जीवन भी सजीव रूप से विद्यमान है। फसल, पशुपालको के कर्तव्य एव गुण, शल्य चिकित्सा, विभिन्न प्रकार के उद्योग–धन्धे विशेषकर कुम्भकारी एव धातु सम्बन्धी शिल्पो, दासियो की स्थिति आदि की, हमे शोधोपयोगी महत्वपूर्ण सामाग्री प्राप्त होती है।

संयुत्त निकाय

'दीघ निकाय मे उन सूत्रो का सग्रह है जो आकार मे बडे है। उसी तरह मझोले आकार के सूत्रो का सग्रह मज्झिम निकाय मे एव सयुत्त निकाय मे छोटे–बडे सभी प्रकार के सूत्रो का 'सयुत्त' सग्रह है।'[१] इस निकाय के सूत्रो की कुल सख्या ७७६२ है। सयुत्त निकाय पॉच वर्गो

---

१ भिक्षु जगदीश काश्यप आमुख, सयुत्त निकाय

(खण्डो) एव छपपन सयुत्तो मे विभक्त है। ये पाच वर्ग इस प्रकार है। १ सगाथा वर्ग (१० सयुत्त), २ निदान वर्ग (१० सयुत्त), ३ खन्धक वर्ग (१३ सयुत्त), ४ सलायतन वर्ग (१० सयुत्त), ५ महावग्ग (१० सयुत्त)। बौद्ध धर्म एव दर्शन के दृष्टि से प्रतीत्यसमुत्पाद, स्कन्धवाद, सलायतनवाद, अष्टागिक मार्ग आदि महत्वपूर्ण व्याख्यान के साथ ऐतिहासिक दृष्टि से कोसलराज प्रसेनजित एव मगधनरेश अजातशत्रु के मध्ययुद्ध, भगवान बुद्ध द्वारा बुद्धत्व की प्राप्ति, धर्मचक्रप्रवर्तन, कौशाम्बी नरेश उदयन, लिच्छवी कोलिय आदि राजाओ के विषय मे महत्वपूर्ण जानकारी इस निकाय से प्राप्त होती है। शोध के विषय की दृष्टि से वृष्टि की महत्ता, बैलो का प्राणियो का सहायक होना, कृषि सम्बन्धी अन्य विवरण, धातु–उद्योग, वस्त्र–उद्योग नट आदि की तत्कालीन दशा का इस निकाय मे विस्तृत विवरण मिलता है।

अगुत्तर-निकाय

सख्याबद्ध शैली मे लिखा गया यह निकाय ग्यारह निपातो मे विभक्त है– यथा एककनिपात, दुक निपात, तिक निपात, चतुक्क निपात, पचक निपात, दक्क निपात, सत्तक निपात, अट्ठक निपात, नवक निपात, दसक निपात तथा एकादशक निपात। प्रत्येक निपात वर्गो मे विभक्त है, इस प्रकार कुल १६६ वर्ग है। प्रत्येक वर्ग मे अनेक सुत्त है, जिनकी कम से कम सख्या सात और अधिक से अधिक २६२ है। कुल मिलाकर अगुत्तर निकाय मे २३०८ सुत्त है। अन्य ग्रन्थो की भाति यह भी बौद्ध धर्म एव दर्शन का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके एकक निपात मे उन भिक्षु–भिक्षुणी, उपासक एव उपासिका की सूची मिलती है जिन्होने बौद्ध शिक्षा की किसी विशेष शाखा मे दक्षता प्राप्त की थी। भौगोलिक दृष्टि से अगुत्तर–निकाय मे प्रथम बार सोलह महाजनपदो का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। शोध प्रबन्ध की दृष्टि से बहेलिये की स्थिति, तटदर्शी पक्षी (नौका पर दिशा ज्ञान देने वाला), अच्छे खेत की पहचान, धातु सम्बन्धी विवरण आदि का उल्लेख मिलता है।

खुद्दक निकाय

खुद्दक निकाय पन्द्रह स्वतत्र ग्रन्थो का एक निकाय है। इनकी भाषा–शैली मे समरुपता नही दिखाई देती। कही इनमे पद्यात्मक शैली अपनायी गई है, कही गद्य–पद्य दोनो का मिश्रण है। काव्य, आख्यान, गीत यही खुद्दक–निकाय के विषय है।[1] इस निकाय मे निम्नलिखित पन्द्रह ग्रन्थो का गणना होती है।

१ खुद्दक पाठ	२ धम्मपद
३ उदान	४ इतिवुत्तक
५ सुत्तनिपात	६ विमानवत्थु
७ पेतवत्थु	८ थेरगाथा
६ थेरीगाथा	१० जातक
११ निद्देस	१२ पटिसम्भिदामग्ग
१३ अपदान (थेरदान तथा थेरीपदान)	१४ बुद्धवस
१५ चरियापिटक	

इन सभी ग्रन्थो मे भाषा एव विषय दोनो की दृष्टि से धम्मपद, सुत्तनिपात, उदान एव इतिवुत्तक प्राचीनतम युग के सूचक है।[2] खुद्दकपाठ नौ छोटे–छोटे सुत्तो का सग्रह है इसके प्राय सभी सुत्त अन्य पालि ग्रन्थो मे भी सकलित है। इसकी मुख्य विषयवस्तु बौद्ध धर्म की व्यवहारिक शिक्षा है। धम्मपद का का शाब्दिक अर्थ है धर्म सम्बन्धी पद या शब्द। धम्मपद मे

---

१ उपाध्याय भरतसिह, पालि साहित्य का इतिहास, पृ० २२०

२ वही, पृ० २२७, सांकृत्यायन, राहुल, पालि साहित्य का इतिहास, पृ० १२१;

कुल चार सौ तेईस (४२३) गाथाए है, जो छब्बीस वर्गो मे विभक्त है। पडित राहुल साकृत्यायन का मानना है कि 'सम्पूर्ण धम्मपद बुद्ध का सुभाषित रत्न है।'[1] इसके विषय मे डॉ० भरतसिह उपाध्याय का कहना है ''बुद्ध उपदेशो का धम्मपद से अच्छा सग्रह पालि साहित्य मे नही है। इसकी नैतिक दृष्टि जितनी गम्भीर है, उतना ही वह प्रसादगुणपूर्ण भी है।[2] शोध विषय की दृष्टि से कृषि, एव पशु आदि से सम्बन्धित प्रसग इसमे यत्र–तत्र विद्यमान है। उदान मे भगवान् बुद्ध द्वारा उच्चारित वचनो का सग्रह है। भगवान बुद्ध द्वारा उच्चारित ये वचन अधिकतर गाथाओ के रूप मे है और जिन अवसरो पर वे उच्चारित किये गये, उनका वर्णन गद्य मे है। उदान के आठ वर्ग है एव प्रत्येक वर्ग मे दस सुत्त है केवल सातवे वर्ग मे नौ सुत्त है। इतिवुत्तक ग्रथ के प्रत्येक सुत्त मे 'इतिवुत्त भगवता' (ऐसा भगवान ने कहा) यह पद बार बार आता है अतएव इसका नाम ही 'इतिवुत्तक' पड गया। इसमे एक सौ बारह सुत्त है जो चार वर्गो या निपातो मे विभक्त है। इतिवुत्तक गद्य एव पद्य दोनो मे है। बौद्ध साहित्य मे सुत्त–निपात अनेक दृष्टियो से अमूल्य ग्रन्थ है।

खुद्दक निकाय के ग्रन्थो मे इसकी प्राचीनता निर्विवाद है। इसके 'अट्ठकवग्ग' सोण कुटिकण्ण को भलीभाति कण्ठस्थ था एव उसने कुशलतापूर्वक इसका भगवान् के सम्मुख पाठ भी किया। अशोक के भाबू शिलालेख मे इसके तीन सुत्तो का उल्लेख आया है। भाषा–विज्ञान की दृष्टि से भी इसकी भाषा वैदिक (छन्दस) भाषा से मिलती जुलती है। सुत्त–निपात पॉच वर्गो एव बहत्तर (७२) सुत्तो मे विभाजित है। बौद्ध धर्म एव साधना की दृष्टि से महत्वपूर्ण होने

---

१ साकृत्यायन, राहुल, पालि साहित्य का इतिहास, पृ० १२२

२ उपाध्याय, भरतसिह, पालि साहित्य का इतिहास, पृ० २३८

के साथ–साथ इसमे हमारे शोध प्रबन्ध के लिए महत्वपूर्ण सूचनाये मिलती है। इसके धनिय सुत्त एव कसि–भारद्वाज सुत्त क्रमश तत्कालीन गोपालको एव कृषको के सुखी, सम्पन्न एव सश्रम जीवन का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते है। इसके पारायण वग्ग के वत्थु गाथा मे बुद्धकालीन प्रमुख व्यापारिक मार्गो का सुस्पष्ट वर्णन है। 'विमानवत्थु' एव 'पेतवत्थु' स्पष्ट ही परवर्ती ग्रन्थ है।[१] विमानवत्थु मे विमानो या देव–आवासो की कथाए है। इसमे ८५ देव आवासो का वर्णन है जो सात वर्गो मे विभक्त है। 'पेतवत्थु' मे ५० प्रेतो की कहानियाँ है, जो चार भागो मे विभक्त है। बौद्ध धर्म ने जनसाधारण के लिए जिस नीति–विधान का आदर्श रखा है, उसी को विमानवत्थु एव पेतवत्थु मे बताया गया है। थेरगाथा एव थेरीगाथा मे क्रमश भिक्षुओ एव भिक्षुणियो द्वारा निर्मित गाथाए सग्रहित है। थेरगाथा १२७६ (पालिश्लोक) गाथाएँ है जो २१ निपातो मे विभक्त है सुन्दर प्रकृति वर्णन, निर्लिप्त शान्त जीवन, काया मोह से मुक्ति थेरगाथा के वर्णनो की विशेषताए है। थेरीगाथा मे ५२२ गाथाए है इनमे ७३ (पृथक् पृथक् गणना करने पर सौ) भिक्षुणियो के उद्‌गार थेरीगाथा मे समाहित है। मुक्ति की शान्ति, व्यैक्तिक भावनाओ की प्रबलता इन थेरीगाथाओ का विशिष्टता है। बुद्धकालीन आर्थिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न वर्गो (यथा भगी, कुम्हारिन) कृषि कार्यो मे प्रयुक्त उपकरणो, आभूषणो आदि का वर्णन भी थेरगाथा एव थेरीगाथा मे प्राप्त है। 'जातक' खुद्‌दक निकाय का सबसे बडा प्रसिद्ध एव दसवॉ ग्रन्थ है। जातक भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ है। इन सभी पूर्व जन्मो मे बुद्ध की सज्ञा बोधिसत्व थी। बोधि का अर्थ है बुद्धत्व एव सत्व का अर्थ है प्राणी। 'बोधिसत्व' – बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी को कहा जाता है। इन पूर्व जन्मो मे बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील वोधिसत्व दान, शील आदि दस पारमिताओ का अभ्यास करते है। प्रत्येक जातक कथा के पॉच भाग है– १ पच्चुप्पनवत्थु का अर्थ है वर्तमान काल की घटना या कथा। बुद्ध के जीवन काल

---

१. डॉ० पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म का विकास का इतिहास, पृ० २३३

की घटना से इसका तात्पर्य है। २–अतीतवत्थु भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की कथा है। ३–गाथाएँ ही जातक का प्राचीनतम भाग है। वास्तव मे गाथाएँ ही स्वय जातक है। जातक के जो चार अन्य अवयव बताए गये है वे इन "गाथा" भाग की व्याख्या एव कालान्तर की रचना है। परन्तु केवल गाथाओ से काम नही चलता। वे अपने पूरे अर्थ की अभिव्यक्ति अपने व्याख्या अशो से मिल कर करती है। स्पष्ट है ५४७ जातक कथाओ के सग्रह को, जिन्हे हम 'जातक' कहते है 'जातकट्ठकथा' (जातक के अर्थ की व्याख्या) ही कहना चाहिए। गाथाओ के बाद प्रत्येक जातक मे वैय्याकरण या अत्थवण्णना आती है। इसमे गाथाओ की व्याख्या और इनका शब्दार्थ रहता है। समोधन सबसे अन्त मे आता है जिसमे बुद्ध बताते है कि उन्होने जो अतीत–वत्थु सुनाई उनके प्रधान पात्रो मे, कौन पात्र इन जन्म मे क्या है और वे स्वय कौन सी योनि मे उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार सम्पूर्ण जातक गद्य–पद्य मिश्रित रचना है जो २२ निपातो मे विभक्त है। हमारे शोध–विषय के दृष्टि से हमे इन 'जातको' से अमूल्य सूचनाये मिलती है। बुद्ध कालीन आर्थिक वातावरण हमने सजीव एव वृहद रूप मे विद्यमान है जिसका इनमे शोध–प्रबन्ध मे प्रयोग करने का पूरा प्रयास किया है।

'निद्देश' ग्रन्थ दो भागो मे विभक्त है चूलनिद्देस एव महानिद्देस। महानिद्देस सुत्त–निपात के अट्ठग–वग्ग की व्याख्या है एव चुल्लनिद्देस सुत्त–निपात के ही खग्गविसाण–सुत्त और पारायण–वग्ग (वत्थुगाथा को छोडकर) की व्याख्या है। महानिद्देस मे बहुत से देशो एव वन्दरगाहो, स्थल मार्गो एव जल मार्गो का विवरण मिलता है जिनसे भारत का व्यापार होता था। 'पटिसम्भिदामग्ग' मे अर्हत् के प्रतिसवित् सम्बन्धी ज्ञान का विवेचन है। इसकी शैली एव विषय अधिधम्म पिटक की है। 'अपदान' की विषयवस्तु ५४७ बौद्ध भिक्षुओ एव ४० भिक्षुणियो के पूर्व जन्म की कथाओ का चित्रण है जातक के समान इसकी भी कहानी के दो भाग हैं। एक अतीत से जन्म सम्बन्धी एव दूसरी वर्तमान से जन्म सम्बन्धी। अपदान दो

भागो मे विभक्त है। थेर–अपदान मे पचपन वर्ग है एव थेरी अपदान मे चार वर्ग है। 'बुद्धवस' २८ परिच्छेदो की पद्यात्मक कृति है। इसमे २५ पूर्ववर्ती बुद्धो एव एक स्वय गौतमबुद्ध की जीवन–गाथा विवृत्त है। 'चरियापिटक' खुद्दक निकाय का पन्द्रहवॉ ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे सात पारमिताओ दान, शील, नैष्क्रम्य, अधिष्ठान, सत्य, मैत्री एव उपेक्षा का वर्णन प्राप्त होता है जो बुद्ध के पूर्वजन्म की चर्य्याओ से सम्बन्धित है। इन पारमिताओ की पूर्णता के बाद ही 'भगवान बुद्ध' बुद्ध बन सके है। यह ग्रन्थ सात परिच्छेदो मे विभक्त है।

चारियापिटक के प्रत्येक चर्या किसी जातक कथा से मिलती जुलती (एक को छोडकर) है एव यह पद्यात्मक रूप मे है। इसमे सॅपेरा, कृषक, व्यापारी आदि कुछ आर्थिक तथ्यो का भी विवरण मिलता है।

अध्याय-२

भौगोलिक परिचय

भौगोलिक •रिचय

प्रारम्भिक पालि साहित्य से ज्ञात आर्थिक विवरण भारतवर्ष के किस क्षेत्र पर लागू होता है इसके लिए हमे प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य का भौगोलिक दृष्टि से अनुशीलन करना होगा। डॉ० भरत सिह उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'बुद्धकालीन भारतीय भूगोल' मे पालि त्रिपिटक एव उसकी अट्ठकथा के आधार पर भगवान बुद्ध की चारिकाओ का कालानुक्रम विवेचन किया गया है[१]। मोटे तौर पर यह क्षेत्र आधुनिक मध्यउत्तर प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी उत्तर प्रदेश और सारे बिहार प्रात मे फैला हुआ है। गौतम बुद्ध ने पश्चिम मे मथुरा के समीप के क्षेत्र से लेकर पूर्व मे वैशाली, राजगृह एव चम्पा के मध्य, लोगो को अपने सदुपदेशो से लाभान्वित किया। इस शोध प्रबन्ध मे उन क्षेत्रो का ही भौगोलिक परिचय दिया जा रहा जो विनयपिटक एव सुत्तपिटक मे चर्चित है, प्रसिद्ध है, जहाॅ बौद्ध धर्म सर्वाधिक प्रचारित हुआ। प्रारम्भिक पालि साहित्य मे समाहित इन क्षेत्रो का परिचय निम्न रूप मे दिया जा सकता है–

१ नदी एव जलाशय

२ वन एव उद्यान

३ महाजनपद एव नगर

४ ग्राम एव निगम

---

१ डॉ० भरतसिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, दूसरा परिच्छेद,

नदी और जलाशय

अचिरवती– बौद्ध साहित्य मे इसकी गणना पॉच महानदियो– गगा, यमुना, अचिरवती, मही, सरयू– मे की गई है।[१] सालित्त जातक,[२] कुरुधम्म जातक[३] एव सीलानिसस जातक से स्पष्ट है कि प्रसिद्ध कोसल राज्य की राजधानी इसी श्रावस्ती नदी के तट पर वसी थी। इसका समीकरण वर्तमान राप्ती नदी से किया गया है। अगुत्तर निकाय मे इस नदी के ग्रीष्म काल मे सूख जाने की सूचना मिलती है।

अनोमा-

अनोमा नदी के तट पर ही भगवान् बुद्ध ने राजकुमार की राजसी वेशभूषा का परित्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की।[४] इस नदी के समीकरण के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है।

---

१ सयुत्त–निकाय, पाचवॉ खण्ड हि० अ० पृष्ठ ८२३,

२ सालित्त जातक, जातक सख्या १०७,

३ करुधम्म जातक

४ जातक, हि० अ० पृष्ठ १३५,

कनिघम ने इसे वर्तमान औमा नदी माना[1] है यही मत भरतसिह उपाध्याय का भी है।[2] कारलायल ने इसे वस्ती जिले की वर्तमान कुडवा नदी बताया है।[3] भिक्षु जगदीश काश्यप एव त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित की दृष्टि मे देवरिया जिले की मझन नदी ही अनोमा नदी थी।[4]

बाहुका- बुद्ध–काल मे यह एक पवित्र नदी मानी जाती थी। सुन्दरिक भारद्वाज इस नदी के विषय मे भगवान् बुद्ध से कहता है "हे गौतम! बाहुकानदी लोकमान्य (=लोक–समत है), बाहुकानदी बहुत जनो द्वारा पवित्र (=पुण्य) मानी जाती है। बहुत से लोग बाहुकानदी मे (अपने) किये पापो को बहाते है।"[5]

बाहुमती- वर्तमान काल मे यह नदी वाग्मती कहलाती है। यह नेपाल से होते हुए बिहार राज्य मे आती है। मज्झिम निकाय मे एक पवित्र नदी के रूप मे इसका उल्लेख है।[6]

चम्पा-

चम्पेय जातक से स्पष्ट है कि यह नदी मगध और अग जनपदो की सीमा पर बहती थी।[7] अग जनपद इसके पूर्व मे था और मगध पश्चिम मे।

---

१ एन्शियन्ट ज्योग्राफी आव इण्डिया, पृष्ठ ४६६–४६१

२ बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ १३३,

३ आर्केलोजीकल सर्वे, भाग २२, पृष्ठ २२४

४ सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृष्ठ १०

५ मज्झिम–निकाय, १/१/७,

६ वही,

७ चम्पेय्य जातक

गगा - बौद्ध साहित्य मे इस नदी का अनेक बार उल्लेख आया है। सयुत्त–निकाय के अनेक सुत्तो मे पच–महानदियो गगा, यमुना, अचिरवती, सरयू एव मही– का उल्लेख एक साथ मिलता है।[१] तत्कालीन प्रसिद्ध नगर काशी[२], पाटलिपुत्र[३] एव प्रयाग[४] गगा नदी के किनारे वसे थे।' गगा नदी यात्रियो एव माल के परिवहन का एक प्रमुख साधन थी। गगा नदी के मुहाने से लेकर चम्पा, पाटलिपुत्र वाराणसी एव सहजाति तक माल का परिवहन होता था।[५] गगा हिमालय के गगोत्री हिमनद से निकल कर अनेक छोटी–बडी नदियो का सगम करती हुई, अन्त मे समुद्र मे विलीन हो जाती है।[६]

हिरण्यवती-

दीघनिकाय के महापरिर्निवाण सुत्त मे हिरण्यवती नदी के तट पर कुशीनारा के मल्लो के उपवत्तन नामक शालवन का उल्लेख है।[७]

पडित राहुल साकुत्यायन,[८] डॉ० भगतसिह उपाध्याय,[९] त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित[१०] के मतानुसार इनका आधुनिक नाम सोनरा नाला है परन्तु डॉ० राजबली पाण्डेय[११] एव डॉ० विमलचरण लाहा ने इसका समीकरण छोटी गण्डक से किया है।[१२]

---

१ सयुत्त–निकाय, पठम–सम्बेज्ज सुत्त दुतिय सम्बेज्ज सुत्त, समुछ–सुत्त,

२ तक्क जातक, चक्कवाक जातक, सिगाल–जातक

३ दीघ–निकाय, महापरिनिर्वाणसुत्त

४ जातक, छठा भाग, पृष्ठ ११८,

५ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ५४२,

६ महाउम्मग्ग जातक,

७ दीघ–निकाय, महापरिनिर्वाण सुत्त, २/३

८ बुद्धचर्या, पृष्ठ ५७२,

९ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ १३४,

१० सयुत्त–निकाय, प्रथम खण्ड हि० अ० पृष्ठ १०,

११ गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियो का इतिहास, पृष्ठ १०,

१२ प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल पृष्ठ ५३,

ककुत्था

दीघनिकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त मे उल्लेख आया है कि भगवान् बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण के पूर्व इस नदी का जल पीया था[६] एव 'उत्तम, सुदर, स्वच्छ जलवाली ककुत्था नदी पर जा, लोक मे अद्वितीय, शास्त्रा ने अक्लान्त हो स्नान किया।' 'भिक्षु धर्मरक्षित[१] कार्लाइल,[२] इसे घाघी नदी मानते है कि भरतसिह उपाध्याय[३] इसका समीकरण बरही नामक छोटी सी नदी से करते है, जो कसया से ८ मील नीचे छोटी गण्डक मे मिलती है।

मही-

धनिय सुत्त मे उल्लेख आया है कि विदेह राष्ट्र मे मही नदी के तट पर रहने वाले धनिय ग्वाले ने अपनी पत्नी के साथ प्रव्रज्या ली थी। आधुनिक बडी गडक से मही नदी का समीकरण किया जाता है।[४]

सयुत्त–निकाय के विभिन्न सुत्तो मे इसकी गणना पच–महानदियो मे की गई है और इसे पूर्व की ओर बहते दिखाया गया है।[५] डॉ० भरतसिह उपाध्याय[६], भिक्षु धर्मरक्षित[७] ने इसका समीकरण बडी गण्डक से किया है किन्तु विमलचरण लाहा ने इसे गण्डक की एक सहायक नदी बताया है।

---

१ दीघ–निकाय २/३,

२ सयुत्त–निकाय हि० अ० पृष्ठ १०,

३ ऐशियेट ज्याग्रफी, पृष्ठ ३६७,

४ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ १३४,

५ सुत्त–निपात, धनिय सुत्त १/२,

६ सयुत्त–निकाय

७ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ १३२,

८ सयुत्त–निकाय, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १०,

नेरजना-

महात्मा बुद्ध को अत्यन्त कठोर तपस्या, काया–क्लेश के बाद भी जब बुद्धत्व की प्राप्ति न हो सकी तो उन्होने इस मार्ग को असफल मान मध्यम मार्ग द्वारा ज्ञान–प्राप्ति का प्रयत्न किया। सुजाता नामक तरुणी की निर्जल–मधुर–खीर को इसी नेरजना नदी के तट पर ग्रहण किया।[1] कालान्तर मे भी भगवान् बुद्ध यहाँ अनेक बार आये।[2] नेरजना नदी का आधुनिक नाम नीलाजन नदी है, जो बुद्ध–गया के समीप हो कर बहती है।[3]

रोहिणी- शाक्यो का कपिलवस्तु एव कोलियो का कोलिय–नगर के मध्य से रोहिणी नदी बहती बहती थी। जिस पर एक ही बॉध निर्मित कर दोनो नगरवासी कृषि किया करते थे। एक बार जेठ माह के अन्त मे खेती के कुम्हला जाने पर दोनो नगर–वासियो मे भीषण सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी परन्तु भगवान् बुद्ध के हस्ताक्षेप से किसी प्रकार सघर्ष टाला जा सका।[4] वर्तमान समय मे भी इसे रोहिणी कहते है यह गोरखपुर के पास राप्ती नदी मे गिरती है।[5]

सरयू-

सरयू नदी के तट पर साकेत के अञ्जन वन मे भगवान् बुद्ध के साथ विहार करते हुए स्थविर गवम्पति ने नदी मे अकस्मात् बाढ आ जाने पर अपने प्रताप से नदी के जल को आगे बढने से रोक दिया था।[6] स्पष्ट है कि साकेत नगरी इसके तट पर स्थित थी। प्रारम्भिक पालि साहित्य के अनेक ग्रन्थे मे पच महानदियो के साथ इसकी गणना की गई है।[7] यह हिमालय से निकल कर बिहार प्रान्त मे गगा से मिलती है। इसे घाघरा, देहवा आदि नामो से भी सम्बोधित किया जाता है।

---

१ जातक, प्रथम, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १४०–१४१,

२ विनयपिटक, महावग्ग १/१/१, मज्झिम निकाय १/३/६,
मज्झिम निकाय, १/४/६, मज्झिम निकाय २/४/५

३ भिक्षु धर्मरक्षित, सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृष्ठ १०, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ १३५,

४ कुणाल जातक, जातक सख्या ५३६,

५ सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृष्ठ १०,

६ थेरगाथा, गाथा ३८,

७ सयुत्त–निकाय

सप्पिनी-

सयुत्त–निकाय के सनकुमार सुत्त से स्पष्ट है कि यह नदी राजगृह से होकर बहती थी एव भगवान इस नदी के तीर पर विहार कर रहे थे।[१]

बुद्ध के समय इसके तट पर परिव्राजकाराम था।[२] सप्पिनी नदी का समीकरण वर्तमान पचान नदी से किया जाता है।

वैतरणी-

सयुत्त–निकाय मे कहा गया है 'जो धर्मानुकूल, उत्साह–पूर्वक परिश्रम कर अर्जित कर दान देना देता है वह यम की वैतरणी को लॉघ, दिव्य स्थानो को प्राप्त होता है।[३] जातको मे इसका प्रसग आता है। इस सम्बन्ध भरतसिह उपाध्याय का कथन ही सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि "हम पालि की– यम की वैतरणी– को भूलोक मे ढूँढना पसन्द नही करते।"[४]

सुन्दरिका-

कोशल राज्य मे बहने वाली इस नदी के तट पर सुन्दरिक–भारद्वाज ब्राह्मण अग्नि हवन कर हुतावशेष की परिचर्य्या करने का उल्लेख सुन्दरिक सुत्त मे आता है।[५] मज्झिम–निकाय के वत्थ–सुत्तन्त मे पवित्र नदियो मे इसका भी नामोल्लेख है।[६]

---

१ सयुत्त–निकाय, सनकुमार सुत्त

२ अगुत्तर–निकाय, भाग दो, पृष्ठ १७६, पृष्ठ २१,

३ सयुत्त–निकाय, हिन्दी अनुवाद, पुष्ठ २२,

४ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ १३६,

५ सयुत्त–निकाय, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १३४,

६ मज्झिम–निकाय १/१/७,

यमुना-

अगुत्तर निकाय मे पचमहानदियो मे इसकी गणना की गई है। मथुरा एव कौशाम्बी के प्रसिद्ध नगर इसके तट पर वसे थे।

गग्गरा पुण्करिणी-

चम्पा नगर मे यह स्थिति थी। भगवान् बुद्ध ने दीघ–निकाय के सोणदण्ड–सुत्त का उपदेश इसी के तट पर दिया था।[1] मज्झिम–निकाय के कन्दरक[2] सुत्तन्त एव अगुत्तर निकाय के कई सुत्तो का उपदेश इस पुण्करिणी के तट पर दिया था।

सुमागधा-

गिरिव्रज (प्राचीन राजगृह) को घेरने वाली पॉच पहाडियो मे से एक गृध्रकूट पर्वत के नीचे 'सुमागधा' पुष्करिणी थी। सुमागधा पुष्करिणी से कुछ ही दूरी पर न्यग्रोध नामक परिव्राजक तीन हजार परिव्राजको की बडी मण्डली के साथ उदुम्बरिका परिव्राजकाराम मे वास करता था जहॉ भगवान् बुद्ध ने उदुम्बरिकसीहनाद–सुत्त का उपदेश दिया था। इसी सुत्त मे इस पुष्करिणी के तट पर मोरनिवाप का उल्लेख भी मिलता है।[3]

देवदह ु ष्करिणी-

कोलियो के देवदह जनपद मे यह पुष्करिणी स्थित थी।

---

१ दीघ–निकाय १/४

२ मज्झिम–निकाय, कन्दकर सुत्तन्त, २/१/१,

३ दीघ–निकाय, ३/२,

वन एवं उद्यान

अञ्जनवन-

साकेत नगर मे यह वाटिका स्थित थी। इसे अञ्जनवन मुगदाव भी कहा जाता था[1] क्योकि यहाँ मृगस्वच्छदता से भ्रमण करते थे। उन्हे अभय दिया गया था। भगवान् बुद्ध यहाँ अनेक बार आये। सयुत्त–निकाय के अनेक सुत्तो का यहाँ उपदेश दिया था।[2] साकेत जातक को भी भगवान ने यही उपदिष्ट किया था।

आम्रवन-

प्रारम्भिक पालि साहित्य मे विभिन्न स्थानो पर विद्यमान आम्रवन की चर्चा आयी है जिसमे प्रमुख आम्रवन निम्न है–

जीवकाम्रवन-

मगधराज्य के सुप्रसिद्ध वैद्य जीवक ने राजगृह के इस वन को बुद्ध प्रमुख भिक्षु–सघ को समर्पित किया था। साढे वाहर सौ भिक्षुओ के महाभिक्षुसघ के साथ विहार करते हुए भगवान बुद्ध ने यही सामञ्जफल–सुत्त का उपदेश दिया था।[3]

आम्रपाली का आम्रवन-

दीघ–निकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त से स्पष्ट है कि वैशाली की गणिका आम्रपाली ने इस आम्रवन को बुद्ध प्रमुख भिक्षु–सघ को दान दिया था।[4]

---

१ सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृष्ठ ५६,

२ सयुत्त–निकाय, ककुधसुत्त, कुण्डलि सुत्त, साकेत सुत्त,

३ दीघ निकाय १/२,

४. दीघ–निकाय, २/३,

उपवत्तन शालवन-

हिरण्यवती नदी के तट पर, कुसीनारा के मल्लो का 'उपक्तन' नामक शालवन था। इस वन मे शाल वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ था।[1]

सिसपावन- बौद्धसाहित्य मे कई सिसवा–वनो का उल्लेख आता है। कोसल राज्य मे सेतव्या नगर के उत्तर मे सिसपा (शीशम का) वन था। भगवान बुद्ध ने दीघ–निकाय के पायासिराजञ्ञ–सुत्त का उपदेश इसी वन मे दिया था।[2]

सुभगवन-

दीघ–निकाय के महापदान–सुत्त मे कोशल देश के ग्राम उक्कट्ठा के पास भगवान बुद्ध के 'सुभगवन' के सालवृक्ष के नीचे विहार करने का उल्लेख मिलता है।[3] मज्झिम–निकाय के मूलपरियाय सुत्तन्त का उपदेश भगवान् ने सुभगवन मे ही दिया।[4] इसी निकाय के बह्मनिमन्तनिक सुत्तन्त मे भी इस वन का उल्लेख आया है।[5]

महावन-

महावन उस बडे वन को कहते थे, जो कपिलवस्तु से वैशाली तक फैला था।[1] महावन के उस हिस्से मे जो कपिलवस्तु के समीप स्थित था भगवान बुद्ध ने कई बार बिहार किया।[2]

वैशाली मे इस महावन के समीप एक कूटागारशाला थी जिसे महावन कूटागारशाला कहा जाता था। भगवान् बुद्ध यहॉ पर अनेक बार आये और अनेक सुत्तो को उपदिष्ट किया। वैशाली की महावन स्थिति कूटागारशाला बौद्ध धर्म के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यही पर गौतम बुद्ध की क्षीरदायिका मौसी महाप्रजापति गौतमी को प्रवज्या की अनुमति मिली थी जिससे स्त्रियो के लिए भी बुद्ध–सघ का द्वारा खुला।[3]

---

१ दीघ–निकाय, २/३,

२ दीघ निकाय, २/१०,

३ दीघ निकाय २/१

४ मज्झिम –निकाय, १/१/१,

५ वही, १/५/६,

६ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ– २६३,

७ मज्झिम–निकाय, मधुपिण्डिकसुत्त
सयुत्त निकाय समय सुत्त

८ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/१/१,

जातियावन-

यह वन अग राज्य के भद्दिय नगर मे स्थित था। भिक्षुओ को पादुकाओ सम्बन्धी विभिन्न निर्देश यही दिये गये थे।[1] मेडक गृहपति ने यही भगवान् बुद्ध के दर्शन किये थे।[2] समन्तपासादिका मे कहा गया है इस वन का जातियावन नाम पडने का कारण था, क्योकि यहाँ जाति या जायफल वृक्षो की बहुलता थी।[3]

ऋषिपतन मृगदाव-

यह बौद्ध–धर्म का अत्यन्त महत्वपूर्ण तीर्थस्थान है। ज्ञान प्राप्ति के बाद पचवर्गीय भिक्षुओ को अपना प्रथम धर्मोपदेश भगवान ने यही दिया था जिसे धर्मचक्रप्रवर्तन कहा जाता है।[4] दीघ–निकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त मे चार प्रमुख दर्शनीय एव वैराग्यप्रद स्थानो मे इसकी गणना की गई है।[5] भगवान बुद्ध इसके बाद भी यहाँ कई बार आये और उपदेश दिये।[6]

सीतवन-

यह राजगृह मे सीतवन अर्थात् शवस्थान कुज था।[7] सोण नामक श्रेष्ठिपुत्र को भगवान ने यही "अत्यधिक उद्योग–परायणता औद्धत्य को उत्पन्न करती, अत्यन्त शिषिलता कौसीद्य (=शारीरिक आलस्य) उत्पन्न करती है" इसलिए समता को (मध्य मार्ग को) ग्रहण करना

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/११,

२ वही, ६/६/३,

३ समन्तपासादिका, भाग एक, पृष्ठ २८०,

४ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/६,

५ दीघ–निकाय २/३,

६ संयुत्त निकाय, पास सुत्त, पच वग्गिय सुत्त, धम्मदिन्न सुत्त,

७. प्राचीन भारत का ऐतिहासकि भूगोल, पृ० ४३६,

चाहिए, का उपदेश दिया था।[1] श्रावस्ती के प्रसिद्ध श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने भगवान् के प्रथम दर्शन राजगृह के सीतवन मे ही किये थे।[2]

जेतवन-

श्रावस्ती के श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने श्रावस्ती मे चारो ओर छानवीन कर"भगवान कहॉ निवास करेगे? (ऐसी जगह) जो कि गॉव से न बहुत दूर हो न बहुत समीप, चाहनेवालो के आने–जाने योग्य हो, इच्छुक मनुष्यो के पहुॅचने लायक हो, दिन को कम भीड रात को अल्प–शब्द, वि–जन–वात (=आदमियो की हवा से रहित) मनुष्यो से एकान्त, ध्यान के लायक हो" उपरोक्त गुणो से युक्त जेतराजकुमार के उद्यान का चुनाव किया। गाडियो पर हिरण्य लदवाकर पूरी जेतवन उद्यान की भूमि पर बिछा कर उसे, जेतराजकुमार से खरीदा। यहॉ अनाथपिण्डिक ने विभिन्न सुविधाओ से युक्त विहार (=भिक्षु विश्राम स्थान) वनवाया।[3] सबसे अधिक सुत्त भगवान द्वारा यही उपदिष्ट हुए।

लट्ठिवन-

राजगृह के समीप स्थित इस वन मे वॉस वृक्ष की अधिकता के कारण उसका यह नाम पडा।[4] मगध नरेश बिम्बसार ने इसी वन मे भगवान् का दर्शन कर भिक्षुसघ सहित भोज के लिए निमत्रण दिया।[5]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/२,

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/३/१,

३ वही,

४. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ–१६६,

५ विनयपिटक, महावग्ग १/१/१७,

वेणुवन कलन्दक निवाष-

एकान्तवास के योग्य मगध का यह स्थान मगध नरेश बिम्बसार द्वारा बुद्ध—सहित भिक्षुसघ को समर्पित किया गया था।[1] इस वन मे गिलहरियो (कलन्दक) को नियमित रूप से चारा (निवाप) दिये जाने के कारण यह स्थन कलन्दक निवाप कहा जाता था।[2] यहाँ भगवान् ने अनेक बार निवास किया एव अनेक विनय—नियमो को उपदिष्ट किया। पूर्व मे सजय नामक परिव्राजक के शिष्य, सारिपुत्र एव मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या यही सम्पन्न हुई।[3]

अन्धवन-

यह श्रावस्ती के समीप स्थित था। सयुत्त—निकाय के राहुल सुत्त एव मज्झिम—निकाय के चूल—राहुलोवाद—सुतन्त का उपदेश भगवान ने यही दिया था। यहाँ अनेक भिक्षु—भिक्षुणियो ने ध्यान लगाया।

---

१ वही,

२ समन्तपासादिका भाग तीन, पृष्ठ ५७५,
पपचसूचनी, भाग २, पृष्ठ १३४,

३ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/१८,

महाजनपद एवं नगर

काशी-

बुद्ध–पूर्व युग मे यह एक अत्यन्त शक्तिशाली एव समृद्ध महाजनपद था। विनयपिटक मे भिक्षुओ को सम्बोधित करते हुए भगवान बुद्ध स्वय कहते है – "भिक्षुओ! भूतकाल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त नामक काशिराज था। वह आढय, महाधनी, महाभोगवान्, महासैन्ययुक्त, महावाहन युक्त, महाराज्य युक्त, भरे कोष्ठागार वाला था।"[1] प्रारम्भिक पालि साहित्य एव विशेषकर जातक कथाओ मे अनेक काशी नरेशो उदय, धनजय, धृतराष्ट्र, अग, उग्रसेन आदि के नाम आते है। परन्तु एक नाम जो सहज ही सर्वत्र काशी नरेशो के लिए सर्वत्र मिलता है वह है 'ब्रह्मदत्त'। इसका कारण है कि यह काशी के राजाओ का कुल–नाम या उपाधि नाम था।[2]

काशी जनपद के पूर्व मे मगध, पश्चिम मे वश तथा उत्तर मे कोसल जनपद स्थित थे। इन तीनो जनपदो एव अन्य पडोसी राज्यो के साथ काशी का निरतर सघर्ष चला करता था। एक स्थल पर कहा गया है कि कोई ऐसा राजा नही था जो वाराणसी के राज्य की इच्छा न करता हो।[3] अगुत्तर निकाय मे कहा गया है कि यहॉ सात रत्नो की अधिकता होने के कारण चारो ओर के सात राज्यो के राजा उस पर अधिकार करने के लिए गिद्धदृष्टि लगाये रहते थे।[4] परन्तु कालान्तर मे इसकी शक्ति क्षीण हो गयी और काशी राज्य कोसल का एक अग मात्र (छठी शती ई० पू० मे) हो गया।

काशी अपने वस्त्र एव चन्दन के लिए सुविख्यात थी। इसकी राजधानी वाराणसी की गणना बुद्धकालीन भारत के ६ महानगरो मे की गई है।[5]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, १०/१/७,

२ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पुष्ठ ३६५,

३ भोजाजानीय जातक, जातक सख्या २३,

४ अगुत्तर–निकाय, भाग प्रथम, पृष्ठ २१३, भाग चौथा पृष्ठ २५२ २५६, २६०,

५ दीघ–निकाय, २/३, २/४;

कोशल -

यह भी एक प्रसिद्ध महाजनपद था। कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी जहॉ बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् भगवान् बुद्ध का अधिकाश समय व्यतीत हुआ। कोसल ने अपनी शक्ति बढाकर काशी जनपद को अपने अधिकार मे कर लिया था।[१] कोशल नरेश महाकोशल ने अपनी पुत्री कोसला देवी का विवाह मगध नरेश बिम्बसार से किया था एव काशी गॉव की आय उसके स्नान चूर्ण के व्यय के लिए दे दी गयी थी। आगे चलकर इसी काशी के प्रश्न पर कोसल नरेश प्रसेनजित् एव मगधनरेश बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु के मध्य भयकर युद्ध भी हुआ था परन्तु अतत दोनो पक्षो मे समझौता हो गया एव प्रसेनजित् की पुत्री वजिरा का विवाह मगध नरेश अजातशत्रु के साथ होना प्रतीत होता है। आन्तरिक मामलो मे स्वतत्र होते हुए शाक्य भी कोसल राज्य की अधीनता स्वीकार करते थे।[२] दीघ–निकाय के अग्गञ्ञ–सुत्त कहा गया है कि शाक्य लोग कोसलराज प्रसेनजित् को नमन, अभिवादन, प्रत्युथान, हाथ जोडना एव सत्कार करते है।[३]

कोसल राज्य के दक्षिण पूर्व मे मगध और पश्चिम मे पचाल एव कुरू जनपद था। इसके उत्तर–पूर्व मे मल्ल और वज्जि राष्ट्र थे और दक्षिण मे चेदि एव वस राष्ट्र। इनमे दो पडोसी मगध एव वज्जि–सघ शक्तिशाली राज्य थे। कोसल राज प्रसेनजित् के राज्य मे डाकू अगुलिमाल ने बडा उपद्रव मचा रखा था। उसी का दमन करने जब प्रसेनजित् जा रहे थे तो भगवान् ने उनसे पूछा "महाराज! क्या तुम पर राजा मागध श्रेणिक बिम्बसार बिगडा है या वैशालिक लिच्छवि, या दूसरे विरोधी राजा?"[४]

कोसल के दो नगरो श्रावस्ती एव साकेत की गणना तत्कालीन महानगरो मे की जाती थी। श्रावस्ती बुद्ध के जीवन काल मे बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार का महत्वपूर्ण केन्द्र था जहॉ भगवान बुद्ध ने अधिकाश समय जेतवनाराम मे बिताया था या मृगारमाता के पूर्वाराम बिहार मे।

---

१ दीघ–निकाय, १/१२,

२ सुत्त–निकाय, ३/१,

३ दीघ–निकाय, ३/४

४ मज्झिम–निकाय, अगुलिमाल सुत्तन्त, २/४/६,

अग-

अगुत्तर–निकाय के सोलह महाजनपदो मे एक अग भी था।[1] कर्निघम महोदय के अनुसार अग जनपद का विस्तार वर्तमान विहार के भागलपुर एव मुगेर जिलो मे प्राय था।[2] अग जनपद के पश्चिम मे मगध एव पूर्व मे राजमहल की पहाडी थी। चम्पा नदी मगध एव अग की विभाजक रेखा थी। इसी चम्पा नदी के तट पर अग जनपद की राजधानी चम्पा नगरी स्थित थी।

अग एव मगध मे निरन्तर चली आ रही शत्रुता का उल्लेख पालि साहित्य मे मिलता है।[3] जिसमे सफलता अनिश्चित रही परन्तु बुद्ध काल तक मगध राज्य मे अग राज्य समाहित हो चुका था। राजगृह (मगध की राजधानी) को अग एव मगध देशो की आमदनी का मुख कहा गया है। दीघ निकाय के सोणदण्ड सुत्त मे सोणदण्ड ब्राह्मण को मगधराज श्रेणिक बिम्बसार द्वारा दत्त, जनाकीर्ण, तृण–काष्ठ–उदक–धान्य सहित राज–भोग्य राज–दाय, वह्मदेय चम्पा का स्वामी कहा गया है।[4] अग देश के चार मुख्य नगर–चम्पा, भद्दिय, अस्सपुर एव आपण – थे। यहॉ बुद्ध कई बार आये।

मगध-

बुद्ध–पूर्व काल मे मगध एक साधारण राज्य था परन्तु बुद्ध–युग मे यह एक अत्यन्त शक्तिशाली जनपद बन गया। इस युग मे बिम्बसार एव अजातशत्रु मगध के दो शक्ति–सम्पन्न शासक हुए। जब भगवान राजगृह के लट्ठिवन मे ठहरे हुए थे तो मगध नरेश बिम्बसार उनके दर्शन करने आया और बोला "भन्ते। पहिले कुमार अवस्था मे मेरी पॉच अभिलाषाये थी जो अब पूरी हो गयी।

---

१ अगुत्तर–निकाय

२ एन्शियन्ट ज्योग्रेफी आफ इण्डिया पृष्ठ ५४६,

३ चम्पेय्य जातक, जातक सख्या ५०६,
विधुर पण्डित जतक,

४ दीघ–निकाय १/४,

१– यदि मुझे राज्य का अभिषेक मिलता।

२– मेरे राज्य मे अहर्त यथार्थ बुद्ध आते

३– उन भगवान् की मै सेवा करता

४– वह भगवान् मुझे धर्म–उपदेश करते

५– उन भगवान को मै जानता"[1] अब मेरी सभी अभिलाषाये पूर्ण हो गयी है। भिक्षु सघ सहित भगवान बुद्ध का उत्तम खाद्य पदार्थ से स्वागत कर उसने वेणुवन उद्यान का दान दिया। दीघ–निकाय कूटदन्त–सुत्त एव जनवसभ सुत्त तथा विनयपिटक के चर्म–स्कधक आदि से स्पष्ट है कि बिम्बसार के भगवान बुद्ध मे अपार श्रद्धा थी।[2] बिम्बसार कै पुत्र अजातशत्रु ने पिता की हत्या कर राज्य हस्तगत किया था प्रारम्भ मे वह गौतम बुद्ध के घोर विरोधी देवदत्त के प्रभाव मे था किन्तु कालान्तर मे वह भी बुद्ध–भक्त हो गया। भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण होने पर उसने कुसीनारा के मल्लो के पास दूत भेजा – 'भगवान भी क्षत्रिय थे मै भी क्षत्रिय हूँ, भगवान् के शरीरो (= अस्थियो) मे मेरा भाग भी वाजिब है।' राजगृह मे उसने भगवान् के अस्थि–अवशेषो पर स्तूप बनवाया एव पूजा की।[3]

मगध की प्राचीन राजधानी गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह थी। यह पॉच पहाडियो से घिरा नगर था। मज्झिम निकाय के इसिगिलि–सुत्तन्त मे इन पॉच पहाडियो का नाम, इसिगिलि, वेभार, पण्डव, वेपुल्ल एव गिज्झकूट है।[4] यहॉ भगवान बुद्ध अनेक बार आये।

बुद्ध काल मे अग राज्य मगध का एक हिस्सा बन गया। इसी प्रकार कोसल राज्य का काशी प्रदेश भी मगध के अधिकार मे था। (विस्तृत वर्णन अग एव कोसल जनपदो के प्रसग मे किया गया है।) इस प्रकार मगध की शक्ति एव सीमा इस काल मे काफी बढ गई थी। विनयपिटक मे मगधराज सेनिय बिम्बसार को अस्सी हजार गॉवो का स्वामी कहा गया है।[5]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/१७,

२ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/१
दीघ–निकाय, १/५,
दीघ–निकाय, २/५,

३ दीघ–निकाय २/३,

४ मज्झिम–निकाय, इसिगिलि सुत्तन्त, ३/२/६,

५. विनयपिंटक, महावग्ग, ५/१/१,

वस -

इसके उत्तर मे कोसल राज्य, दक्षिण मे चेदि, पश्चिम एव उत्तर–पश्चिम मे क्रमश सूरसेन एव पचाल जनपद एव पूर्व मे काशी जनपद था। महात्मा बुद्ध के समय का वहॉ का शासक उदयन था। उसने पडोसी देशोसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति को सुदृढ करने का प्रयत्न किया। उसने अवन्ती नरेश चण्ड प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता से विवाह किया। पालि साहित्य से स्पष्ट है कि प्रारम्भ मे उसने बौद्धधर्मानुयायियो के प्रति अच्छा व्यवहार नही किया था परन्तु कालान्तर मे सम्भवत वह इसमे कुछ श्रद्धा रखने लगा था।[१] परन्तु उदयन का पुत्र बोधि राजकुमार बौद्ध धर्म के प्रति अनुरक्त था। बोधिराजकुमार ने सुसुमारगिरि मे कोकनद नामक प्रासाद का निर्माण कराया एव उसमे सफेद धुस्सो को सीढे के नीचे तक बिछवा कर, भगवान से उस पर चलने की याचना की।[२] अन्य बौद्ध ग्रन्थो विनयपिटक,[३] धोनसाख जातक एव अगुत्तर– निकाय मे भी इसका वर्णन आता है।

वश देश की राजधानी की कौशाम्बी थी जो यमुना के तट पर स्थित थी।[४] इसकी गणना बुद्धकालीन ६ महानगरो मे की गई थी।[५]

वज्जि सघ -

बुद्ध काल मे यह एक शक्तिशाली गणतन्त्र राज्य था। यह राज्य गगा के उत्तर मे नेपाल की तराई तक फैला था। वज्जिसघ मे आठ गणतत्र राज्य सम्मिलित माने जाते थे जिनमे वज्जि, लिच्छवि, विदेह एव ज्ञात्रिक प्रमुख थे। इन आठ गणतन्त्र राज्यो मे विदेह वज्जि एव लिच्छवि के सम्बन्ध मे कुछ सूचनाये मिलती है।

---

१ मातग जातक

सयुत्त निकाय, भरद्वाज सुत्त,

२ मज्झिम निकाय, बोधिराजकुमार सुत्तन्त, हि० अ० पृ० ३४४

३ विनयपिटक

४ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २६८

५ दीघ–निकाय २/३, २/४

लिच्छवि एव वज्जि गणतत्रो के विषय मे पृथक रूप से अत्यल्प सूचनाए मिलती है। प्राय दोनो की अभिन्नता ही पॉलि साहित्य मे वर्णित की गई है। वैशाली न केवल लिच्छवियो की राजधानी थी वरन् यह सम्पूर्ण वज्जि सघ की राजधानी थी जिसका समीकरण विहार के मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ से किया जाता है।

दीघ–निकाय के महापरिनिर्वाण–सुत्त मे वज्जियो के कानून–नियमो की प्रशसा करते हुए भगवान बुद्ध कहते है कि "जब तक ब्राह्मण (वर्षकार)! यह सात अपरि–हाणीय धर्म वज्जियो मे रहेगे, इन सात अपरिहारणीय– धर्मो मे वज्जी दिखलाई पडेगे, (तब तक) ब्राह्मण! वज्जियो की वृद्धि ही समझना, हानि नही।"[१] वज्जियो का अपने शक्तिशाली पडोसी मगध के साथ कटुतापूर्ण सम्बन्ध थे। वज्जियो के उद्योग पूर्ण सयमी जीवन पर भगवान् बुद्ध को बडा भरोसा था परन्तु उनकी जीवन शैली जिसे दिशा मे जाती दिखायी पड रही थी उससे उनमे विनाश के बीज भी उन्हे दिखाई दे रहे थे।[२]

मल्ल-

बुद्धकालीन गणतन्त्रो मे मल्लो की महत्वपूर्ण स्थिति थी। मल्ल के पूर्व या दक्षिण पूर्व मे वज्जि गणराज्य था। पश्चिमोत्तर मे शाक्य जनपद, दक्षिण मे मगध एव पश्चिम मे कोसल राज्य था।[३] मल्लो की दो शाखाये थी (१) कुसीनारा की मल्ल शाखा (२) पावा की मल्ल शाखा भगवान बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा मे दोनो मल्ल राज्यो मे गये एव कुसिनारा मे उनका महापरिनिर्वाण हुआ था।

---

१ दीघ निकाय, २/३,

२ सयुत्त निकाय हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ३०८,

३. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ३१६,

कुसिनारा -

मल्ल गणतन्त्र की एक शाखा की राजधानी कुसिनारा थी। कर्निघम ने इसकी पहचान वर्तमान गोरखपुर के कसया नामक स्थान से की है।[1] कसया गोरखपुर से बत्तीस मील उत्तर मे स्थित है। भगवान् बुद्ध ने इस नगर को अपने महापरिनिर्वाण के लिए चुना था। इस पर आनन्द ने आपत्ति दिखाते हुए कहा था कि "भन्ते! मत इस क्षुद्र नगले (= नगरक) मे, जगली नगले मे, शाखा—नगरक मे परिनिर्वाण को प्राप्त होवे।" इस पर भगवान् बुद्ध ने कुसिनारा की पूर्व समृद्धि को याद दिलाते हुए कहा था "आनन्द! यह कुसीनारा राजा महासुदर्शन की कुशावती नामक राजधानी थी। कुशावती राजधानी समृद्धि, स्फीत, बहुजना, जनाकीर्ण तथा सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द! देवताओ की आलकमदा नामक राजधानी समृद्ध, स्फीत, बहुजना, यक्ष—आकीर्ण और सुभिक्ष है, इसी प्रकार आनन्द कुशावती राजधानी दिन—रात, हस्ति—शब्द, अश्व—शब्द, रक्ष—शब्द, भेरी—शब्द, मृदग—शब्द, वीणा—शब्द, गीत—शब्द, शख—शब्द, ताल—शब्द, खाइये—पीजिए— इन दस शब्दो से शून्य न होती थी।"[2] भगवान् ने यहॉ कई बार यात्रा की। यहॉ के मल्ल भगवान् बुद्ध के प्रति बडी श्रद्धा रखते थे अपने नगर मे भगवान् का आगमन सुनकर उन्होने नियम निर्धारित किया — "जो भगवान् की आगवानी को नही जाये उसको पॉच सौ दण्ड।"[3]

हिरण्यवती नदी के तट पर, मल्लो के उपवत्तन नामक शालवन मे भगवान् महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इस कारण यह स्थल बौद्धो के लिए एक तीर्थ बन गया।[4] मल्लो ने भगवान् का दाह सस्कार मुकुट—वधन[5] नामक चैत्य (= देवस्थान) पर किया।

---

१ आर्केलोजिकल सर्वे इण्डिया, १८६६—६२, पृष्ठ ६६—८३

२ दीघ—निकाय, २/३,

३ विनयपिटक, महावग्ग, ६/६७,

४ दीघ—निकाय, २/३,

५ वर्तमान रामाभार, कसया, जिला गोरखपुर।

पावा -

यह मल्लो की दूसरी शाखा की राजधानी थी। इसका समीकरण कर्निघम ने गोरखपुर के पडरौना गॉव से किया है। विमल चरण लाहा एव भरत सिह उपाध्याय भी इस मत से सहमत है।[1] कुछ विद्वानो ने पावा का समीकरण कसया से प्राय दक्षिण–पूर्व मे स्थित फाजिलनगर (फाजिलपुर) के टीलो से, विशेषत सठियॉव डीह से पावा को मिलाया।[2] परन्तु ये मत प्राय अस्वीकृत है। उदान से पता लगता है कि भगवान बुद्ध पावा गये और वहॉ अजकलापक या अजकपालिय चैत्य मे निवास किया।[3] अपने महापरिनिर्वाण के पूर्व भी भगवान् पावा आये। जहॉ चुन्द कुर्मारपुत्र (सोनार) ने उत्तर खाद्य पदार्थ एव शूकर मार्दव (= सूकर–मद्दव) से भगवान् सहित भिक्षु सघ का स्वागत किया। ये भगवान का अन्तिम भोजन था। इसके वाद भगवान को बडी पीडादायक, कडी बीमारी उत्पन्न हो गयी। इसी अवस्था मे वे कुसिनारा की ओर चल पडे। आलारकलाम, कलाम का शिष्य पुक्कुस मल्लपुत्र ने भगवान बुद्ध एव आनन्द को मार्ग मे, इगुर वर्ण चमकते हुए दुशाले को भेट किया।[4]

रामग्राम-

कोलिय गणराज्य की राजधानी रामगाम थी। वस्तुत कोलियो की दो शाखाये प्रतीत होती है। प्रथम देवदह के कोलिय एव द्वितीय रामगाम के कोलिय। परन्तु देवदह कोलिय शाक्यो को अधीन थी। कोलिय क्षत्रिय जाति के ये इसी आधार पर रामगाम के कोलियो ने भगवान के अस्थि–अवशेषो की मॉग की और उस पर स्तूप निर्माण किया।[5]

सुमगलविलासिनी से स्पष्ट होता है कि ये शाक्यो के रक्त–सम्बन्धी थे एव दोनो मे वैवाहिक सम्बन्ध थे। ये शाक्यो के पडोसी थे एव रोहिणी नदी दोनो गणतन्त्रो की विभाजक

---

१ प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृष्ठ ८२, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पुष्ठ ३२२,

२ भिक्षु धर्मरक्षित, सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृष्ठ ४,

३ उदान, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ८,

४ दीघ–निकाय, २/३,

५ दीघ–निकाय, २/३,

रेखा थी। कुणाल जातक से स्पष्ट है दोनो गणतन्त्र इन नदी के जल को प्रयोग सिचाई के लिए करते थे। एक बार पानी को लेकर दोनो पक्षो मे भीषण युद्ध होने वाला था, परन्तु महात्मा बुद्ध के हस्तक्षेप से किसी प्रकार सघर्ष टल गया।[1] रामगाम की पहचान सन्देहास्पद है कर्निघम ने कपिलवस्तु एव कुशीनगर के बीच स्थित आधुनिक देवकाली गॉव से मिलाया है।[2]

विमल चरण लाहा एव कारलायल ने वर्तमान रामपुर देवरिया से रामग्राम को स्वीकृत किया है।[3] डॉ० राजबली पाण्डेय गोरखपुर के रामगढ ताल को रामग्राम से समीकृत करते है।[4]

पिप्फलिवन-

यह एक गणतन्त्र राज्य था। मोरियो की राजधानी पिप्फलिवन थी। दीघ–निकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त मे उल्लेख है कि पिप्फलिवन के मोरियो न जब सुना कि भगवान् बुद्ध का कुसीनारा मे परिनिर्वाण हो गया है तो ये कुसीनारा पहुँचे और कहा 'हम भी क्षत्रिय है एव भगवान भी क्षत्रिय है। इसलिए भगवान् के शरीरो (=अस्थियो) मे मेरा भी हक है' परन्तु इनके पहुँचने के पूर्व ही भगवान् के अस्थि–अवशेष बॉटे जा चुके थे। अत वे वहॉ से कोयला (= अगार) ही प्राप्त कर सके एव उन्होने उन अगारो पर स्तूप की रचना की।[5]

मोरियो की राजधानी पिप्फलिवन की पहचान के विषय मे विद्वान एक मत नही है। कर्लायल ने पिप्फलिवन की पहचान गोरखपुर जिले के राजधानी या उपधौलिया के डीह से की है जो गुर्रा नदी के तट पर स्थित है। भरतसिह उपाध्याय वर्तमान पिपरहवॉ गॉव को बुद्धकालीन पिप्फलिवन मानते है जो अम्मिनदेई से १२ मील दक्षिण–पश्चिम एव तिलौराकोट से १० मील दक्षिण–पूर्व मे है।[6]

---

१ कुणाल जातक,

२ ऐन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृ०४८२–४८५,

३ हिस्टारिकल ज्योग्रेफी आफ एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ११६,
आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इन्डिया, भाग २२, वर्ष १६७५,

४ गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियो का इतिहास, पृष्ठ ७०,

५ दीघ–निकाय, २/३,

६ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ३१५,

मोरियो के विषय मे अधिकतर सूचनाये उत्तर कालीन साक्ष्यो से ही मिलती है। महावश टीका से पता चलता है कि विडूडभ जब शाक्यो का नाश कर रहा था तो भयभीत होकर शाक्यो ने हिमालय प्रदेश की शरण ली। यहाँ पीपल वृक्षो के एक वन मे नगर वसा कर रहने लगे। इसी पीपल वृक्षो की अधिकता के कारण उनके प्रदेश का नाम "पिप्फलिवन" पडा। इस प्रसगानुसार मोरिय, कपिलवस्तु के शाक्यो की ही एक शाखा हुए। मोरिय नामा के सम्बन्ध मे भी अनुश्रुतिया मिलती है उनमे एक है जिस प्रदेश मे "मोरिय" लोग रहते थे, वहाँ मोरो की अधिकता थी इसलिए उनका यह नाम पडा दूसरी अनुश्रुति यह है कि "मोरियो" के मकान मोर की गर्दन के समान नीले रग के पत्थरो से बने थे इसलिए उनका यह नाम पडा।

अल्लकप्प -

अल्लकप्प प्रदेश बुलियो के गणतन्त्र राज्य की राजधानी थी। ये क्षत्रिय कुल के थे एव बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् इसी आधार पर उन्होने अस्थि–अवशेषो पर दावा किया एव उसे प्राप्त कर, उस (अस्थि–अवशेष) पर स्तूप का निर्माण किया।[1] धम्मपदट्ठकथा से हमे पता चलता है कि अल्लकप्प प्रदेश का विस्तार केवल दस योजन तक ही था।[2]

सुसुमारगिरि-

भग्ग लोगो का गणराज्य की राजधानी सुसुमारगिरि थी। अभिधानप्पदीपिका मे इसकी गणना बुद्धकालीन भारत के २० नगरो मे की गई है। सुसुमारगिरि भेसकलावन नामक मृगोद्यान था यहाँ भी ऋषिपतन मृगदाव की भाँति मृगो को अभय दिया गया था।[3] यहाँ भगवान बुद्ध कई बार आये। सयुक्त–निकाय मे नकुलपिता सुत्त को उपदेश यही दिया गया था।[4]

बोधिराजकुमार ने सुसुमागिरि कोकनद प्रसाद का निर्माण कराया था। इस प्रसाद मे सफेद धुस्सो को ऊपर से नीचे, सीढ पर, विछवा कर भगवान बुद्ध को उस पर चलने का आग्रह

---

१ दीघ–निकाय, २/३,

२ भाग एक, पृष्ठ १६१,

३ समन्तपासादिका, भाग चार, पृष्ठ ८६७, दिव्यादान, पृष्ठ ८६७, दिव्यादान, पृष्ठ १८२,

४ सयुत्त–निकाय हि० अ० पृष्ठ ३२१,

किया परन्तु भगवान के अस्वीकार करने पर उसे उठवा लिया एव बुद्धसहित भिक्षुसघ को उत्तम भोज्य पदार्थ से सतर्पित किया, सन्तुष्ट किया।[1]

डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भर्ग राज्य को विन्ध्य प्रदेश मे यमुना और शोण नदियो के बीच स्थित बताया है।[2] डॉ० भरतसिह उपाध्याय का कहना है कि सुसुमारगिरि को आधुनिक चुनार एव उसके आसपास की पहाडियो से समीकृत करना चाहिए।[3]

केसपुत्त-

केसपुत्त कलामो की राजधानी थी। इसके बारे मे अत्यल्प सूचना मिलती है। अगुत्तर निकाय के भरण्डु सुत्त से ज्ञात होता है कि जब भगवान् कपिलवस्तु गये तो वो वहॉ भरण्डु कलाम के आश्रम मे रुके थे। भगवान् केसपुत्त भी गये थे जहॉ उन्होने अगुत्तर निकाय के केसपुत्तिय सुत्त का उपदेश दिया था। भगवान् के पूर्व गुरू आलार कालाम, कालाम जाति के ही थे।[4]

कपिलवस्तु

शाक्य गणतन्त्र की राजधानी कपिलवस्तु थी। प्रारम्भिक पालि साहित्य मे शाक्य सूर्यवशी क्षत्रिय तथा इक्ष्वाकु—कुल के कहे गये है। भगवान् बुद्ध एक बार राजगृह के पाण्डव पर्वत पर बिहार कर रहे थे। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मगध नरेश बिम्बसार उनके दर्शन के लिए आया एव उनसे उनकी जाति पूछने पर भगवान् ने उत्तर दिया "हिमालय की तराई के एक जनपद मे कोसल देसवासी धन तथा पराक्रम से युक्त एक ऋजु राजा है। वे गोत्र के सूर्यवशी है और शाक्य जाति के है।"[5]

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/२/७, मज्झिम निकाय,
अगुत्तर निकाय निकाय, भाग २, पृष्ठ ६१,
अगुत्तर निकाय, निकाय, भाग ६, पृष्ठ ८५,

२ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १६३

३ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ३३६,

४ मज्झिम—निकाय, १/३/६ हि० अ० पृष्ठ १०४,

५ उजु जनपदो राजा, हितवन्तस्सपस्सतो। धनविरियेन [illegible] कोसलेसु निकेतिनो।।
आदिच्चा नाम गोत्तेन, साकिया नाम जातिया। तम्हा कुला पब्बजितो' म्हि (राज) न कामे अभिपत्थय।।

अन्यत्र भी भगवान् बुद्ध 'आदित्य बन्धु (= सूर्यवशी) कहे गये है।[1] सुत्त–निपात की वत्थुगाथा[2] एव दीघ निकाय अम्बट्ठ सुत्त[3] मे इक्ष्वाकु को शाक्यो का पूर्वज कहा गया है। सुमगल विलासीनी एव महावस्तु से भी इसकी पुष्टि होती है। इक्ष्वाकु वशजो द्वारा कपिल ऋषि के आश्रम के समीप ही नगर वसाने के कारण उनका नगर "कपिलवत्थु" (= कपिलवस्तु) कहलाया।

भगवान् बुद्ध का वाल्यकाल तो कपिलवस्तु मे बीता ही था। ज्ञान प्राप्ति के वाद भी वे कई बार यहाँ आये। न्यग्रोध नामक शाक्य ने एक बिहार बुद्ध सघ को समर्पित किया था जिसे 'न्यग्रोधाराम' कहा जाता था। इसी समय नन्द एव राहुल की प्रव्रज्या हुई थी। भगवान् बुद्ध के ज्ञान के पॉचवे वर्ष राजा शुद्धोदन की मृत्यु हो गयी। इसी समय शाक्यो एव कोलियो मे रोहणी नदी के जल को लेकर विवाद हुआ। भगवान् की मध्यस्थता से युद्ध टल गया। यह बुद्धत्व प्राप्ति के वाद भगवान् की दूसरी कपिलवस्तु यात्रा थी।[4] इसके बाद भी भगवान् कपिलवस्तु आये।

कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम मे भगवान् ने अनेक सुत्तो का उपदेश दिया। मज्झिम निकाय चूलदुक्खक्खन्ध–सुत्तन्त, मधुपिण्डिक–सुत्तन्त, सेख सुत्तन्त, महा सुञ्ञता–सुत्तन्त एव सयुत्त–निकाय के अनेक सुत्त आदि का उपदेश इसी न्यग्रोधाराम बिहार मे दिया गया।

कपिलवस्तु महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग पर स्थित थी। यह श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले मार्ग मे पडती थी। भिक्षुणी महाप्रजापति गौतमी, तिस्सा, मित्ता, अभिरूपा, नन्दा तथा भिक्षु अनुरूद्ध, भद्दिय, राहुल, काल उदायि, नन्द, महानाम आदि कपिलवस्तु से ही सम्बन्धित थे। कपिलवस्तु की पहचान सन्देहास्पद रही है परन्तु भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के डा० के० एम० लाल द्वारा किये गये आधुनिक कार्यो से स्पष्ट है कि इसकी पहचान आधुनिक पिपरहवा

---

१ सुत्तनिपात, १/३,३/६ दीघ–निकाय, २/८,

२ सुत्त निपात, ५/१,

३ दीघ–निकाय, १/३,

६ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० २६१।

से करनी चाहिए जो उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर जिले के उत्तर (मे २२ किलोमीटर की दूरी पर) स्थित है। यहाँ दो प्रकार की मुहरे प्राप्त हुई है। प्रथम प्रकार मुहर पर 'देवपुत्रबिहारे कपिलवस्तुस, भिक्खु–सघस' तथा दूसरे प्रकार मे 'महाकपिलवस्तु–भिक्खुसघान' लेख प्राप्त होते है।[1]

साकेत-

साकेत कोसल राज्य का श्रावस्ती के बाद दूसरा प्रधान नगर था। कही–कही पालि ग्रन्थो मे ऐसे विवरण प्राप्त होते है जिनसे स्पष्ट होता है कि साकेत एक अति प्राचीन नगर था। बौद्ध सस्कृत ग्रन्थ महावस्तु मे साकेत से निर्वासित शाक्यो के पूर्वजो द्वारा कपिल ऋषि के आश्रम के समीप कपिलवस्तु की स्थापना की बात कही गयी है। इसी प्रकार एक जातक कथा मे साकेत को कोसल राज्य की राजधानी कहा गया है।[2] परन्तु दूसरी ओर धम्मपदट्ठकथा से स्पष्ट होाता है कि यह अपेक्षाकृत कालान्तर मे बसायी गयी थी। कोसल राज्य मे कोई बडा श्रेष्ठि नही था। कोसल नरेश प्रसेनजित के कहने पर मगध नरेश बिम्बसार ने अपने राज्य के धनजय श्रेष्ठी को कोसल भेजने का निश्चय किया। सपरिवार आते हुए श्रेष्ठी ने सायकाल इसी राज्य की सीमा पर पडाव डाला, एव उस स्थान की दूरी श्रावस्ती से सात योजन थी। यही स्थान 'साकेत' कहलाया। मज्झिम निकाय के रथविनीत सुतन्त से स्पष्ट है कि सात घोडो के परिवर्तन से श्रावस्ती पहुँचा जाता था।[3] विनयपिटक के महावग्ग मे श्रावस्ती से साकेत की दूरी छ योजन बतायी गयी है।[4]

दीघ–निकाय मे आनन्द भगवान् से कहते है। "भन्ते! – – – – – – – – और भी महानगर है, जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी। वहाँ भगवान् परिनिर्वाण करे जहाँ बहुत से क्षत्रिय महाशाल (= महाधनी), ब्राह्मण–महाशाल गृहपति–महाशाल तथागत के भक्त है, वह तथागत के शरीर की पूजा करगे।"[5] स्पष्ट है कि यह एक समृद्ध महानगरी थी।

---

१ प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, पृष्ठ–१४४,

२ नन्दियमिगराज जातक, जातक सख्या ३८५,

३ मज्झिम निकाय, रथ विनीत सुतन्त,

४ विनयपिटक, महावग्ग ७/१/१,

५ दीघ निकाय, २/३, २/४,

प्रतीत होता है साकेत से श्रावस्ती जाने वाले मार्ग पर चोर–डाकुओ का सक्रमण रहता था। जिन्होने इस मार्ग से जाने वाले भिक्षु एव भिक्षुणियो को लूटा एव मार डाला।[1] राजगृह का सुप्रसिद्ध वैद्य जीवन विद्याध्ययन के बाद तक्षशिला से वापस राजगृह लौटते हुए साकेत की श्रेष्ठि–भार्या के सात वर्ष पुराने सिर दर्द को ठीक कर दिया। इस प्रथम चिकित्सा कार्य के बदले उसे सोलह हजार (कार्षापण), दास, दासी एव एक अश्वरथ प्राप्त हुआ।[2] साकेत उस महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग का भी हिस्सा था जो राजगृह से दक्षिण को प्रतिष्ठान तक जाता था।[3]

साकेत के वन अजनवन मृगदाव मे भगवान् कई बार आये एव उपदेश दिया। (वनो के विवरण मे विशेष वर्णन किया गया है)

बुद्धकालीन साकेत की पहचान के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। डा० मललसेकर[4] एव डॉ० नलिनाक्ष दत्त एव श्री कृष्णदत्त वाजपेयी[5] ने साकेत को सुजानकोट के खण्डहरो से, जो सई नदी के किनारे उन्नाव जिले मे स्थित है, से समीकृत किया है। राइस डेविड्स महोदय अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट इण्डिया' मे कहते है "बहुधा साकेत एव अयोध्या एक ही समझा जाता है। सम्भवत ये दोनो नगर एक दूसरे से उसी तरह लगे रहे हो जिस प्रकार लन्दन और वेस्टमिन्स्टर।"[6] कर्निघम[7] एव डॉ० भरतसिह उपध्याय "आधुनिक अयोध्या का तादाम्य प्राचीन साकेत से करते है।[8]

गया-

मज्झिम–निकाय मे एक तीर्थ स्थन के रूप मे इसका उल्लेख हुआ है। बोधि वृक्ष से गया तीर्थ तीन गावुत (करीब ६ मील) की दूरी पर था एव वाराणसी से इसकी दूरी १५ योजन

---

१ विनयपिटक, महावग्ग १/३/१४,

२ वही, ८/१/१,

३ सुत्त–निपात ५/१,

४ डिक्शनरी ऑफ पालि प्रॉपर नेम्स, भाग२, पृष्ठ १०८६,

५ उत्तर प्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ७, १२, पद सकेत ६,

६ बौद्ध भारत, हि० अ०, ध्रुवनाथ चतुर्वेद, पृष्ठ ३२,

७ ऐन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑफ इन्डिया, पृष्ठ ४६१,

८ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २५२,

बतायी गयी है।[1] ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान् ने जब अपने पहले के मित्रो (पच्चवर्गीय भिक्षुओ) को धर्मोपदेश देनेका निर्णय किया तो वे वनारस की ओर चल पडे। सशयग्रस्त उपक आजीवक भगवान् से बोधगया (= बोधि) और गया के मध्य इसी मार्ग मे जाते हुए मिला।[2] विनयपिटक के आदीप्त पर्याय का उपदेश गया के गयासीस पर्वत पर दिया था।[3]

लुम्बिनी-

बुद्ध काल मे एक जनपद के रूप मे इसकी ख्याति थी। यही एक शाल वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ।[4] इसलिए बौद्ध धर्म के श्रद्धालुओ के लिए यह एक महत्वपूर्ण तीर्थ–स्थान है।[5] इस स्थान का वर्तमान समीकरण पूर्वोत्तर रेलवे के नौतनवा स्टेशन से करीब २० मील पश्चिम मे, सम्मनदेई नामक स्थान से किया गया है। यहॉ अशोक का एक स्तम्भ लेख प्राप्त हुआ है जिसमे स्पष्ट रूप से लिखा है यहॉ भगवान उत्पन्न हुए थे, इसलिए लुम्बिनी ग्राम का आठवॉ भाग, जो शुल्क (बलि) के रूप मे लिया जाता था, उसे छोड दिया गया"।

उरुबेला-

यह मगध राज्य मे नेरजवा नदी के तट पर स्थित था। भगवान् ने यही कठोर तपस्या की थी। उरुबेला स्थित बोधि–वृक्ष के नीचे भी उन्हे बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी। मज्झिम निकाय मे तपस्या के लिए इस स्थान को उपयुक्त बताते हुए भगवान् बुद्ध कहते है "सो मै भिक्षुओ! किकुशल–गवेषी शाति के श्रेष्ठ पद को खोजते, मगध मे क्रमश चारिका (= रामत) करते जहॉ उरुबेला (का एक निगम) सेनानी निगम था वहॉ पहुँचा। वहॉ मैने एक रमणीय = प्रासादिक भूमि भाग मे, बन खड मे एक नदी को बहते देखा जिसका घाट, रमणीय और श्वेत था। चारो ओर फिरने के लिए गॉव थे। – – – – परमार्थ उद्योगी कुलपुत्र के लिये ध्यान–रत होने के

---

१ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २१८,

२ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/६,

३. विनयपिटक, महावग्ग, १/१/६,

४ जातक प्रथम खण्ड, हि० अ० पृष्ठ १२०,

५ दीघ–निकाय, २/३;

बतायी गयी है।[1] ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान् ने जब अपने पहले के मित्रो (पच्चवर्गीय भिक्षुओ) को धर्मोपदेश देनेका निर्णय किया तो वे वनारस की ओर चल पडे। सशयग्रस्त उपक आजीवक भगवान् से बोधगया (= बोधि) और गया के मध्य इसी मार्ग मे जाते हुए मिला।[2] विनयपिटक के आदीप्त पर्याय का उपदेश गया के गयासीस पर्वत पर दिया था।[3]

लुम्बिनी-

बुद्ध काल मे एक जनपद के रूप मे इसकी ख्याति थी। यही एक शाल वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ।[4] इसलिए बौद्ध धर्म के श्रद्धालुओ के लिए यह एक महत्वपूर्ण तीर्थ–स्थान है।[5] इस स्थान का वर्तमान समीकरण पूर्वोत्तर रेलवे के नौतनवा स्टेशन से करीब २० मील पश्चिम मे, सम्मनदेई नामक स्थान से किया गया है। यहॉ अशोक का एक स्तम्भ लेख प्राप्त हुआ है जिसमे स्पष्ट रूप से लिखा है यहॉ भगवान उत्पन्न हुए थे, इसलिए लुम्बिनी ग्राम का आठवॉ भाग, जो शुल्क (बलि) के रूप मे लिया जाता था, उसे छोड दिया गया"।

उरुबेला-

यह मगध राज्य मे नेरजवा नदी के तट पर स्थित था। भगवान् ने यही कठोर तपस्या की थी। उरुबेला स्थित बोधि–वृक्ष के नीचे भी उन्हे बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी। मज्झिम निकाय मे तपस्या के लिए इस स्थान को उपयुक्त बताते हुए भगवान् बुद्ध कहते है "सो मै भिक्षुओ! किकुशल–गवेषी शाति के श्रेष्ठ पद को खोजते, मगध मे क्रमश चारिका (= रामत) करते जहॉ उरुबेला (का एक निगम) सेनानी निगम था वहॉ पहुँचा। वहॉ मैने एक रमणीय = प्रासादिक भूमि भाग मे, बन खड मे एक नदी को बहते देखा जिसका घाट, रमणीय और श्वेत था। चारो ओर फिरने के लिए गॉव थे। – – – – परमार्थ उद्योगी कुलपुत्र के लिये ध्यान–रत होने के

---

१. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २१८,

२ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/६,

३ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/६,

४ जातक, प्रथम खण्ड, हि० अ० पृष्ठ १२०,

५ दीघ–निकाय, २/३,

वास्ते यह बहुत उपयोगी है तब मै भिक्षुओ यही ध्यान योग्य स्थान है (सोच) वहॉ बैठ गया।"[1] उरुबेला मे जिस वोधि–वृक्ष के नीचे भगवान् को ज्ञान की प्राप्ति हुई, वह आज भी बुद्ध–गया मे १०० फुट ऊँचे बोधि वृक्ष के रूप मे विद्यमान है।[2] उरुबेला आधुनिक गया नगर के ६ मील दक्षिण मे स्थिति है।

कौशाम्बी-

वस देश की राजधानी कौशाम्बी थी जो यमुना नदी के वाये तट पर स्थित थी। जिसका समीकरण इलाहाबाद के समीप स्थिति आधुनिक कोसम गॉव से किया जाता है।[3] कौशाम्बी तत्कालीन प्रमुख व्यापारिक नगरी थी एव बुद्ध कालीन ६ महानगरो मे इसकी गणना की गई है।[4] यहॉ से विभिन्न दिशाओ को थलीय एव जलीय मार्ग जाते थे। कौशाम्बी श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले दक्षिणापथ मार्ग मे स्थित थी। उत्तर की ओर कौशाम्बी साकेत एव श्रावस्ती से सडक द्वारा जुडी हुई थी।[5]

कौशाम्बी राजगृह से भी एक व्यापारिक मार्ग द्वारा जुडी हुई थी। सुप्रसिद्ध वैद्य जीवक को उज्जयिनी से राजगृह लौटते हुए हम मार्ग मे कौशाम्बी मे कलेवा करते देखते है।[6] कौशाम्बी से यमुना नदी के द्वारा प्रयाग प्रतिष्ठान तक और गगा नदी द्वारा वाराणसी, पाटिलपुत्र एव ताम्रलिप्ति तक आवागमन होता था।

---

१ मज्झिम निकाय १/३/६,

वही – १/४/६

वही – २/४/५

जातक, प्रथम खण्ड, हि० अ० पृष्ठ १४८ और आगे।

२ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २११,

३ प्राचीन भारत का ऐतिहासकि भूगोल, पृष्ठ ८३,

बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २७४,

४ दीघ–निकाय, २/३, २/४,

५ सुत्त–निपात ५/१

६. विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१,

बुद्ध के जीवन–काल मे एव उसके पश्चात् भी यह बौद्ध धर्म से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रही है। यहॉ तीन प्रसिद्ध सेठ घोषित, कुक्कट एव पावारिक ने कमश घोषिताराम, कुक्कुटाराम एव पावारिकम्बन बनवाकर भिक्षु सघ को दान दिया था। भगवान बुद्ध अनेकानेक वार इस नगरी मे आये। यहॉ निवास करते हुए भिक्षुओ के कलह को शान्त करने हेतु कोसम्बिय–सुतन्त का उपदेश दिया था। विनयपिटक के उत्क्षेवणीय कर्म सम्बन्धी नियमो का विधान यही पर किया गया।[1]

अन्य अनेक अवसरो पर भी हम भगवान को कौशाम्बी मे वास करते हुए देखते है।

चम्पा-

चम्पा नदी के तट पर बसी हुई यह नगरी अग जनपद की राजधानी थी जिसकी गणना बुद्धकालीन छ महानगरो मे की जाती थी। दीघ–निकाय के अनुसार रेणु नामक राजा के योग्य मन्त्री महागोविन्द ने इसकी स्थापना की थी।[2] कर्निघम महोदय ने चम्पा नगरी की पहचान आधुनिक चम्पापुर एव चम्पानगर नामक दो गॉवो से की है, जो भागलपुर के २४ मील पूर्व मे स्थित है।[3] व्यापारिक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण नगरी थी। जातको से पता लगता है कि चम्पा के व्यापारी सुवर्णभूमि तक व्यापार के लिए जाते थे।[4] चम्पा के निवासियो ने ही दक्षिण–पूर्वी एशिया मे चम्पा नामक हिन्दु राज्य की स्थापना की थी।[5] इसे चपा नगर, चपामालिनी, चपावती, चपापुरी और चपा आदि विविध नामो से पुकारा जाता था।[6] महाजनक जातक मे इसको काल चम्पा भी कहा गया है।[7]

भगवान बुद्ध एव उनके भिक्षु–भिक्षुणियो से इस नगरी का घनिष्ट सम्बद्ध रहा है। यहॉ विद्यमान गग्गरा पुष्करिणी ध्यान–मनन योग्य एक उपयुक्त स्थान थी। इसके तट पर चम्पा वृक्षो का विशाल उद्यान था जिसकी महक से वातावरण सुगन्धित रहता था।[8] इसके तट पर भगवान बुद्ध ने दीघ–निकाय के सोणदण्ड–सुत्त, मज्झिम निकाय के कन्दरक–सुत्तन्त एव

---

१ विनयपिटक महावग्ग, १०/१/१,

२ दीघ–निकाय २/६,

३ ऐन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ ५४७,

४ जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ६४,

५ बुद्धिष्ट इण्डिया, पृष्ठ २५,

६ प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृष्ठ ३६१,

७ महाजनक जातक,

८ सुमगलविलासिनी, भाग एक, पृष्ठ २७६,

अगुत्तर–निकाय के कई सुत्तो आदि का उपदेश दिया। विनय पिटक के चापेय–स्कधक के विधान इसी पुष्करिणी के तीर पर उपदिष्ट किये गये थे।[१] भगवान बुद्ध के कुछ शिष्यो सोण कोटिविश, जम्बगामक, नन्दक एव भरत की जन्मभूमि चम्पा ही थी।[२]

श्रावस्ती-

कोसल की राजधनी श्रावस्ती की गणना तत्कालीन छे प्रमुख महानगरो मे की गई है।[३] कर्निघम महोदय ने श्रावस्ती की पहचान आधुनिक सहेट–महेट के रूप मे की है जिनमे से सहेट गोडा मे एव महेट वहराइच जिले मे है महेट के क्षेत्र को बुद्धकालीन श्रावस्ती और सहेट के क्षेत्र को जेतवन माना गया है।[४]

भगवान बुद्ध के जीवन काल एव श्रावस्ती मे अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। यहॉ अनेक प्रसिद्ध आराम थे जहॉ भगवान् ने २१ से ४५वे वर्षावास व्यतीत किये एव प्रथम चार निकायो के ८७१ सुत्तो का उपदेश श्रावस्ती मे ही दिया।[५] यहॉ का जेतवनाराम एव मिगारमाता पूर्वाराम अधिक महत्वपूर्ण थे। इनमे जेतवनाराम का परिचय वनो के प्रसग मे दिया जायेगा। मिगारमाता पूर्वाराम का निर्माण नगर के धनिक सेठ मिगार (मृगधर) की पुत्रवधू विशाखा ने कराया था। मिगार पहले आजीवको का भक्त था पर कालान्तर मे विशाखा के प्रभाव के कारण बौद्ध धर्म मे उसकी भी आस्था उत्पन्न हो गई।[६]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, १

२ बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल पृष्ठ, ३५३,

३ दीघ–निकाय, २/३, २/४,

४ ऐन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑफ इण्डिया पृष्ठ ४६६–४७४,

५ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २३७,

६ प्राचीन भारत मे नगर एव नगर जीवन, पृष्ठ ११६,

इन दो बिहारो के अतिरिक्त श्रावस्ती मे अन्य बिहारो राजकाराम (केवल भिक्षुणियो के लिए), रम्भकाराम, मल्लिकाराम आदि विहार विद्यमान थे।

श्रावस्ती तत्कालीन एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थी। श्रावस्ती से राजगृह जाने वाला मार्ग एक प्रमुख व्यापारिक मार्ग था। यह मार्ग उत्तर से दक्षिणपूर्व को जाने वाला मार्ग कहलाता है। इस मार्ग मे पडने वाले प्रमुख स्थान श्रावस्ती सेतया, कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, भोगनगर, जम्बगाम, अम्बगाम, हत्थिगाम, भण्डगाम, वैशाली, नदिका, कोटिगाम, पाटलिपुत्र, नालन्दा एव राजगृह थे। प्रसिद्ध दक्षिणापथ मार्ग श्रावस्ती से प्रारम्भ होकर साकेत कौशाम्बी, वनसव्हय (वनसाह्वय) विदिशा, गोनद्ध, उज्जैनी, माहिष्मती, प्रतिष्ठान तक जाता था।

वाराणसी-

वाराणसी तत्कालीन भारत की एक सुप्रसिद्ध नगरी थी जो काशी महाजनपद की राजधानी थी। जातको मे इसे सुरुद्धन,[1] सुदस्सन,[2] बह्मवऽढन,[3] पुप्फवती,[4] रम्मनगर[5] एव मोलनी[6] आदि नामो से भी सम्बोधित किया गया है। मद्दसाल जातक एव धोनसाख जातक से स्पष्ट है यहाँ के राजा अन्य राजाओ से अग्रणी समझे जाते थे। वरुणा तथा अस्सी नदियो के मध्य स्थित होने के कारण यह नगर वाराणसी कहा जाता है।[7]

१ जातक, छठा पृष्ठ १०७,

२ जातक, पाँचवा, पृष्ठ १७७,

३ जातक, चौथा, पृष्ठ ११६,

४ जातक, छठी, पृष्ठ १३१,

५ जातक, चौथा, पृष्ठ ११६,

६ जातक, चौथा पृष्ठ १५,

७ ऐशेण्ट ज्याग्रफी, पृष्ठ ५०१

बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से वाराणसी नगरी का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भगवान् बुद्ध ने इस नगर के ऋषिपतन मृगदाव मे अपने पहले के साथी पच्चवर्गीय भिक्षुओ को उपदेश दिया था। उनका यह प्रथम धर्मोपदेश धर्मचक्र प्रर्वतन (धर्म का चक्का घुमाना) के नाम से जाना जाता है।[1] इसी कारण महापरिनिर्वाण सुत्त मे इसकी गणना बौद्ध धर्म के चार तीर्थ स्थानो मे की गई है।[2] इसके पश्चात् क्रमश वाराणसी का श्रेष्ठी पुत्र यश, यश के चार गृहीमित्र–विमल, सुवाहु, पूर्णजित, गवापति, पुन प्रचास अन्य गृहीमित्रो ने उपसम्पदा पायी। इस प्रकार बनारस की इस यात्रा मे कुल इकसठ अर्हत् लोक मे विद्यमान थे जिन्हे धर्मप्रचार का प्रारम्भिक कार्य, सौपते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा "भिक्षुओ! बहुत जनो के हित के लिये, बहुत जनो के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओ और मनुष्यो के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। हे भिक्षुओ! आदि मे कल्याण (–कारक) मध्य मे कल्याण (–कारक) अन्त मे कल्याण (–कारक) इस धर्म का उपदेश करो।"[3] इस धर्म–प्रचार की प्रथम यात्रा के बाद भी भगवान् बुद्ध यहाँ अनेक बार आये और मज्झिम निकाय के घटिकार सुतन्त, सच्चविभग सुतन्त, सयुत्त निकाय के पचवग्गिय सुत्त, सील सुत्त आदि को उपदिष्ट किया।

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य विशेषकर जातको मे सबसे ज्यादा काशी जनपद एव वाराणसी का ही उल्लेख आता है। काशी विशेषत वनारस अपने वस्त्र एव चन्दन के लिए सुविख्यात था। यहाँ के कपडो के लिए वाराणसेय्यक, काशिक, काशीकुत्तम, काशीय आदि शब्दो का प्रयोग

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/६,

२ दीघ निकाय, २/३,

३ विनयपिटक महावग्ग, १/१/१०,

मिलता है।[1] काशी के वस्त्रो का विशेष वर्णन आगे वस्त्र निर्माण उद्योग के प्रसग मे किया जायेगा। यहॉ हाथीदॉत[2] एव लकडी का कारोबार भी उन्नत अवस्था मे था।

वाराणसी तत्कालीन प्रमुख व्यापारिक केन्द्रो से विभिन्न मार्गो द्वारा सम्बद्ध था। राजगृह के तक्षशिला तक जाने वाले सुप्रसिद्ध उत्तरापथ मार्ग का वाराणसी एक पडाव था। अत स्वाभाविक तौर से वाराणसी तक्षशिला एव राजगृह से राजमार्ग द्वारा सयुक्त था। वाराणसी से श्रावस्ती तक भी एक मार्ग जाता था। इसी प्रकार नदी मार्गो द्वारा वाराणसी से पाटलिपुत्र, प्रयाग तक नावो का आवागमन होता था।[3]

वैशाली-

वज्जियो की राजधानी वैशाली बुद्ध युग का एक प्रमुख नगर था। जिसका समीकरण कर्निघम ने विहार राज्य के मुजफ्फरपुर जिले के आधुनिक बसाढ गॉव से किया है।[4] विनयपिटक मे इसके बारे मे कहा गया है कि "उस समय वैशाली ऋद्ध, स्फीत, बहुत जनो से मनुष्यो से आकीर्ण, सुभिक्षा (=अन्नपान–सपन्न) थी। उसमे ६६६६ प्रासाद, ६६६६ कूटागार, ६६६६ आराम, ६६६६ पुष्करिणियॉ थी।"[5]

वैशाली मे विभिन्न विहार, चैत्य विद्यमान थे। दीघ–निकाय के महापरिनिर्वाण–सुत्त मे स्वय भगवान् बुद्ध कहते है कि मैने वैशाली के उदयन चैत्य, गौतमक चैत्य, सप्ताम्र चैत्य, वहुपुत्रक चैत्य, सारन्दद चैत्य मे विहार किया।[3] महात्मा बुद्ध के जीवन काल मे बौद्ध–धर्म के प्रचार की

---

१ प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, पृष्ठ १२५,

२ जातक सख्या २२१,

३ आगे व्यापारिक मार्गो के प्रसंग मे विस्तृत विवरण दिया गया है।

४ आर्केलाजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, भाग सोलहवॉं, पृष्ठ ६,

५ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१,

दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण स्थान महावन की कूटागारशाला थी। सयुत्त निकाय एव मज्झिम निकाय के विभिन्न सुत्तो का उपदेश भगवान् ने इस महावन की कूटागारशाला मे दिया था। भगवान् को क्षीर–दायिका, मौसी महाप्रजापति गौतमी ने आनन्द के विशेष अनुरोध पर इसी कूटागारशाला मे प्रव्रज्या की अनुमति पायी थी।[४]

गणिका आम्रपाली का आम्रवन (जिसका वर्णन वनो के सन्दर्भ किया जायेगा), बालकाराम विहार (जहाँ द्वितीय धर्म–सगीति की कार्यवाही हुई) भी बौद्ध धर्म की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान थे।

यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगरी थी राजगृह से श्रावस्ती के मार्ग के मध्य स्थित थी। यहाँ से गगा नदी द्वारा वाराणसी से व्यापार होता था।

राजगृह

यह मगध राज्य की प्राचीन राजधानी थी। बिम्बसार (यूआन चुआङ् के अनुसार) अथवा अजातशत्रु (फा–ह्यान के अनुसार) के द्वारा इसके वसाये जाने का उल्लेख चीनी यात्रियो ने किया है। शक्तिशाली मगध राज्य की राजधानी तत्कालीन छे महानगरो मे महत्वपूर्ण स्थान रखती थी।[३] महात्मा बुद्ध से पूर्व मगध राज्य की राजधानी प्राचीन राजगृह (गिरिव्रज) थी। यह प्राचीन राजगृह पॉच पहाडियो जिनके नाम मज्झिम–निकाय के इसिगिल–सुत्तन्त मे इसिगिलि,

–

१ दीघ निकाय २/३

२ विनयपिटक चुल्लवग्ग, १०/१/१,

३ दीघ निकाय, २/३,

वेभार, पण्डव, वेपुल्ल एव गिज्झकूट कहे गये है।[1] इन पर्वतो मे गिज्झकूट पर्वत सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। प्रारम्भिक पालि साहित्य से स्पष्ट है कि भगवान यहॉं अनेक बार आये। विभिन्न निकायो के अनेक सुत्त जैसे मज्झिम निकाय के चूल–दुक्खक्खन्ध सुतन्त, इसिगिलि सुतन्त, दीघ निकाय के महागोविन्द–सुत्त, उदुम्बरिक–सीहनाद–सुत्त, सयुक्त निकाय के अभयसुत्त आदि को यही उपदिष्ट किया।

महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् राजगृह मे ही प्रथम बौद्ध सगीति का आयोजन किया गया।[2] यह नगर सडक मार्ग द्वारा उत्तर पश्चिम मे तक्षशिला से लेकर दक्षिण मे प्रतिष्ठान तक जुडा हुआ था। बावरी व्राह्मण के सोलह शिष्य प्रतिष्ठान, माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनद्ध, विदिशा, वन नगर, कौशाम्बी, साकेत, श्रावस्ती, सेतव्य, कपिलवस्तु, कुसीनारा, पावा, भोगनगर, वैशाली, होते हुए राजगृह पहुँचे थे।[3]

सेतव्या - यह कोसल देश का एक नगर था। कोसलराज प्रसेनजित् ने पायासी राजन्य (=राजञ्ञ, माण्डलिकराजा) को यहॉं का स्वामी बनाया था।[4] कुमार कस्सप एक बार सेतव्या नगर के उत्तर मे सिंसपावन मे गये वहॉं उनका पायासी राजन्य से वार्तालाप हुआ।[5] यह नगर एक महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग मे स्थित था। उत्तर से दक्षिण पूर्व जाने वाले मार्ग अर्थात् राजगृह

---

१ मज्झिम निकाय, ३/२/६,

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ११/१/२

३ सुत्त–निपात, ५/१,

४ दीघ–निकाय, २/१०,

५ वही,

से श्रावस्ती जाने वाले बुद्ध कालीन प्रसिद्ध मार्ग पर यह नगरी स्थित था। बावरी ब्राह्मण के सोलह ब्राह्मण शिष्यो ने जो दक्षिण भारत से भगवान् बुद्ध के दर्शन हेतु जा रहे थे इसी मार्ग का अनुसरण किया था।[१]

भोगनगर - भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा मे भोगनगर भी गये थे। यहाँ के आनन्द चैत्य मे उन्होने चार महाप्रदेश का उपदेश दिया था।[२] इसकी स्थिति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। दीघ निकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त से इतना तो स्पष्ट है कि यह नगर जम्बूगाम एव पावा के मध्य स्थित था। परन्तु यह किस राज्य मे सम्मिलित था यह अनिश्चित है। विमल चरण लाहा, एव भरतसिह उपाध्याय ने इसे मल्लो का एक नगर माना है परन्तु राहुल साकृत्यायन, हेमचन्द्र रायचौधरी एव मललशेखर ने इसे वज्जि–सघ का एक अग माना है। राजगृह से श्रावस्ती जाने वाले व्यापारिक मार्ग के मध्य मे यह भोगनगर स्थित था। इस प्रकार इस नगर की महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थिति थी।[३]

भद्दिय- यह अग जनपद का एक नगर था। एक बार भद्दिय के जातियावन मे निवास करते हुए, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओ को बहुमूल्य पादुकाएँ पहनने का निषेघ किया था।[४] इस नगर का मेडक नामक श्रेष्ठी भगवान् बुद्ध के प्रति बडी श्रद्धा रखता था। भगवान् बुद्ध के एक अन्य बार भद्दिय आने पर उसने याचना की थी "जब तक भन्ते! भगवान् भद्दिया मे बिहार करते है, तब तक मै बुद्ध–सहित भिक्षु–सघ की ध्रुव–भक्त (=सर्वदा के भोजन) से (सेवा) करुँगा।"[५] भगवान् बुद्ध सहित साढे बारह सौ भिक्षुओ को उसने साढे बारह सौ गायो के गर्भधारवाले दूध के साथ भोजन कराया था। इसके पश्चात् ही बुद्ध ने भिक्षुओ को पॉच गोरस–दूध, दही, तक (छाछ), नवनीत (=मक्खन) और घी की अनुमति दी थी।

---

१ सुत्त–निपात, ५/१,

२ दीघ–निकाय २/३,

३ सुत्त–निपात,५/१,

४ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/११,

५ वही, ६/६/३,

आपण- यह अग जनपद का एक नगर था। यहाँ मज्झिम निकाय के अनेक सुत्त[1] एव सयुत्त–निकाय के आण्णसुत्त[2] के उपदेश भगवान् बुद्ध ने यही दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक व्यापारिक नगर था। पपञ्चसूदनी नाम पडने का कारण है कि यह बीस हजार आपणो (दुकानो या बाजारो) नगरो से युक्त नगरी थी।[3]

---

१ मज्झिम–निकाय पोतलिय सुतन्त, लकुटिकोपन सुतन्त, सेल–सुत्तन्त,

२ सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृष्ठ ७२६,

३ पपञ्चसूदनी, भाग दूसरा, पृष्ठ ५८६,

ग्राम एवं निगम

अन्धकविन्द-

यह राजगृह के समीप स्थित एक गॉव था। भगवान बुद्ध ने अधकविन्द मे ही भिक्षुओ को यवाग एव मधुगोलक की अनुमति दी थी।[1] प्रतीत होता है अधकविन्द से राजगृह की ओर एक व्यापारिक मार्ग जाता था वेलट्ठकच्चान (= काव्यायन) गुड के घडो से भरी पॉच सौ गाडियो के साथ इस मार्ग से जा रहा था।[2] एकबार इस मार्ग उपोसथ हेतु जाते हुए आयुष्मान महाकाश्यप का चीवर नदी पार करते समय भीग गया था।[3] इस नदी की पहचान सर्पिणी नदी से की गई है। भगवान् बुद्ध यहॉ कई बार आये थे।

अम्बसण्ड -

राजगृह के पूर्व दिशा मे स्थित यह एक ब्राह्मण ग्राम था। दीघ–निकाय के सक्कपञह–सुत्त का उपदेश यही दिया गया था।

सेनानिगाम या सेनानिनिगम -

यह उरूबेला प्रदेश मे नैरेजना नदी के तट पर मे स्थित था। यही सेनानी कुटुम्बी के घर मे उत्पन्न सुजाता नामक स्त्री ने भगवान को ज्ञान प्राप्ति के पूर्व दिव्य खीर खिलायी थी।[4]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ६–४–३,

२ वही, ६–४–५,

३ वही, २–२–३,

४ जातक, प्रथम खण्ड, हि० अ० पृष्ठ १३६,

खाणुमत -

यह मगध देश मे स्थित था। मगधराज् श्रेणिक बिम्बसार ने कूटदन्त नामक ब्राह्मण को यह गॉव दान मे दिया था। जब भगवान यहॉ पधारे तो कुटदन्त ब्राह्मण बहुत बडे (हिसामय) यज्ञ का आयोजन करने वाला था। परन्तु भगवान् द्वारा ऐसे हिसक यज्ञ की निन्दा करने पर अन्तत सारे पशुओ को कूटदन्त ने मुक्त कर दिया और भगवान् की शरण मे चला गया।[१]

मचलगाम -

यह मगध का एक ग्राम था। एक जातक कथा मे उल्लेख आया है कि इस गॉव मे तीस ही परिवार थे। इस तीसो परिवार के लोग किसी ग्राम–कार्य से एक दिन एकत्र होते है। बुद्धकालीन ग्राम–व्यवस्था तथा जनतत्रीय शासन पद्धति का इस गॉव को हम एक नमूना मान सकते है।[२]

एकनाला-

सुत्त–निपात मे कहा गया है कि एकनाला मगध के दक्षिणगिरि जनपद मे ब्राह्मणो का गॉव था। यहॉ का समृद्ध कृषक कृषिभारद्वाज भगवान को जोत–बोकर अन्न ग्रहण करने को कहता था।[३] इस दक्षिणागिरि जनपद मे भगवान बार आये।[४] यहॉ के मेड, कतार, मर्यादा, चौमेड युक्त खेत भगवान् को बडे सुन्दर लगे एव भिक्षुओ के लिए वैसे ही चीवर बनाने के लिए उन्होने आनन्द से कहा।[५]

---

१ दीघ निकाय, १/५,

२ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २१६,

३ सुत्त–निपात, १/४,

४ विनयपिटक, महावग्ग, १/३/६,

५ वही, ८/४/२,

देवदह-

मज्झिम निकाय देवदह–सुत्तन्त[1] एवं संयुत्त–निकाय के देवदहरवण सुत्त[2] में देवदह को शाक्यो का कस्बा कहा गया है। पपंचसूदनी[3] एवं सारत्थप्पकासिनी[4] से स्पष्ट है कि यहाँ देवदह नामक मंगल पुण्करिणी थी, इस पुष्करिणी के नाम पर इस स्थान का नाम भी देवदह पड़ा। भगवान् बुद्ध की माँ, मौसी महाप्रजापति गौतमी एवं पत्नी भद्रा कात्यायनी इसी देवदह नगरी की थी। बुद्ध की माता महामाया देवी गर्भ के परिपूर्ण होने पर महाराज शुद्धोदन से – "देव, (अपने पिता के) कुल के देव–दह नगर जाना चाहती हूँ" की इच्छा व्यक्त करती है।[5] यह नगरी रोहिणी नदी के पूर्वी किनारे पर बसी थी।

पाटलिग्राम -

महात्मा बुद्ध के समय ग्राम मात्र की उपाधि प्राप्त करने वाला यह स्थान, कालान्तर में भारत के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य मगध की राजधानी बना। इसके अति समृद्धियुक्त भविष्य की भविष्यवाणी भगवान् बुद्ध ने दीघ–निकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त में की थी "आनन्द! जितने (भी) आर्य–आयतन (= आर्यों के निवास) हैं, जितने भी वणिक–पथ (=व्यापारिक मार्ग) हैं, (उनमें) यह पाटलिपुत्र, पुट–भेदन (= माल की गाँठ जहां तोड़ी जाय) अग्र (=प्रधान) नगर होगा।"[6] बुद्ध–काल में यह ग्राम थल एवं जल दोनो प्रकार के व्यापारिक मार्गों का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। प्रसिद्ध उत्तरापथ मार्ग जो गन्धार की राजधानी तक्षशिला से राजगृह तक जाता था पाटलिपुत्र से भी होकर गुज़रता था। पाटलिपुत्र से गंगा नदी के द्वारा ताम्रलिप्ति तक एक महत्वपूर्ण जलीय मार्ग था जहाँ से आगे लंका तक समुद्री मार्ग द्वारा आवागमन होता था। अशोक के दूत इसी मार्ग से लंका गये थे। गंगा नदी के मुहाने से लेकर चम्पा, पाटलिपुत्र, वाराणसी एवं सहजाति तक भी व्यापारियों एवं यात्रियों का एक अन्य मुख्य मार्ग था।

---

१. मज्झिम–निकाय, हि० अ०, पृष्ठ ४२७;

२. संयुक्त निकाय, हि० अ०, पृष्ठ ५०२;

३. भाग दूसरा, पृष्ठ ८१०;

४. भाग दूसरा, पृष्ठ १८६;

५. जातक, प्रथम खण्ड, पुष्ठ ११६;

६. दीघ–निकाय, २/३;

भगवान अन्तिम यात्रा मे जब पाटलिपुत्र से कुसिनारा की ओर जा रहे थे उसी समय मगध नरेश अजातशत्रु के मन्त्री सुनीध एव वर्षकार पाटलिग्राम मे वज्जियो पर के आक्रमण का सामाना करने के लिए नगर–निर्माण कर रहे थे।[1]

वेहलिग -

यह निगम कोसल देश मे स्थित था। बुद्ध के "पूर्व काल मे इस प्रदेश ऋद्ध = स्फीत, बहुजनाकीर्ण नामक ग्राम–निगम था।"[2] यहॉ एक सदाचारी घटिकार नामक कुम्भकार रहता था। भगवान् बुद्ध यहॉ आये एव मज्झिम–निकाय के घटिकार–सुत्तन्त का उपदेश दिया।

ओपसाद -

कोशल देश का यह एक गॉव था कोशल नरेश प्रसेनजित् ने चकि नामक ब्राह्मण को यह दान रूप मे दिया था। मज्झिम–निकाय के चकि सुत्तन्त का उपदेश भगवान् ने यही दिया था।[3]

सालवतिका -

यह कोशल राज्य का एक गॉव था। कोशल नरेश प्रसेनजित् ने लोहिच्च (लौहित्य) नामक ब्राह्मण को जनाकीर्ण तृण–काष्ठ–उदक–धान्य–सम्पन्न यह गॉव दान मे दिया था। भगवान् बुद्ध ने दीघ–निकाय के लोहिच्च सुत्त का उपदेश यही दिया था।[4]

इच्छानंगल -

इच्छानगल कोशल देश का एक ब्राह्मण–ग्राम था।[5] सुत्त–निपात के वासेट्ठसुत्त से स्पष्ट होता है कि इच्छानगल ग्राम मे चूँकि ब्राह्मण, तारूक्ख (= तारुक्ष) ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण, तोदेय्य ब्राह्मण और अन्य भी महाशाल (= अति धनाढ्य) एव अभिज्ञात (= प्रसिद्ध) ब्राह्मण

---

१ दीघ–निकाय, २/३,
२ मज्झिम–निकाय, २/४/१,
३ वही, २/५/५,
४ दीघ–निकाय १/१२,
५ दीघ–निकाय, १/३,

निवास करते थे।[१] वर्ण व्यवस्था का खण्डन करने वाले वासेट्ठसुत्त को भगवान् ने यही उपदेश दिया था। इच्छानगल ग्राम के समीप इच्छानगल वन–प्रान्त भी स्थित था जहॉ भगवान बुद्ध कई बार गये। सयुत्त निकाय के इच्छानगल सुत्त एव दीघ–निकाय के अम्बट्ठ–सुत्त को भगवान् ने यही उपदिष्ट किया।[२]

उक्काट्ठा -

कोशल देश का एक ब्राह्मण–ग्राम था। कोशल[३] नरेश प्रसेन्जित् ने पौष्करसाति नामक ब्राह्मण को यह गॉव दान मे दिया था।

मनसाकट-

कोशल देश मे मनसाकट ब्राह्मणो का एक ग्राम था। इसके समीप बहने वाली अचिरवती नदी के तट पर आम्रवन मे भगवान् बुद्ध ने दीघ–निकाय के तेविज्ज सुत्त का उपदेश दिया। इस ग्राम मे अनेक धनी एव प्रसिद्ध ब्राह्मण तारूक्ख (= तारुक्ष), पोक्खर–साति (= पौण्करसाति), जानुस्सोणि, तोदेय्य आदि के आठो का उल्लेख मिलता है।[४]

---

१ सुत्त–निपात, ३/६,
मज्झिम निकाय, वासेट्ठ–सुत्तन्त,

२ सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृ० ७६८,
दीघ–निकाय १/३,

३ वही,

४ वही,

अध्याय-३

कृषि एवं पशुपालन

कृषि एवं पशुपालन

कृषि-

कृषि समाज मे प्रतिष्ठित व्यवसाय था। वेदोत्तर काल मे कृषि ने अर्थ–व्यवस्था मे सर्वप्रमुख स्थान बना लिया था। कृषि–कर्म (कसिकम्म) किसी जाति विशेष का पेशा नही था। अनेक कृषक–ब्राह्मण परिवारो का उल्लेख उपलब्ध साक्ष्यो मे मिलता है। मज्झिम निकाय का गोपाल मोग्गल्लान ब्राह्मण कृषक था।[1] पिप्पलि माणवक (बाद मे स्थविर महाकाश्यप) के यहॉ भी खेती होती थी। मगध के दक्षिणगिरि मे एकनाला नामक ब्राह्मण ग्राम मे कृषिभारद्वाज ब्राह्मण के ५०० हल बोने के समय जुताई कार्य मे लगे हुए थे।[2] कृषक को अपनी सश्रम जीविका पर बडा सतोष एव स्वाभिमान था। कृषिभारद्वाज भगवान् बुद्ध से बडी निर्भीकता से कहता है[3]– "हे श्रमण! मै जोतता और बोता हूँ, जोत और बोकर खाता हूँ। हे श्रमण! तुम भी जोतो और बोओ, जोत और बोकर खाओ।"

-

१ मज्झिम–निकाय, महा–गोपालक–सुत्तन्त, १/४/३

२ सुत्तनिपात, १/४, तेन खो पन समयेन कसिभरद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पञ्चमत्तानि नङ्गलसतानि पयुत्तानि होन्ति वप्पकाले।

३ सुत्तनिपात १/४, "अह, खो समण! कसामि च बपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामि, त्व पि समण! कसस्सु च वपस्सु च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जस्सू" ति।

प्राय सभी ग्रामीण सन्निवेशो के समीप उपजाऊ खेतो के टुकडे होते थे तथा कृषक इसमे विभिन्न प्रकार की फसले उगाते थे। भिन्न–भिन्न परिवारो के अलग–अलग खेत होते थे जो मेडो या पानी की नालियो के द्वारा एक दूसरे से विभक्त रहते थे। कही–कही एक खेत को दूसरे से अलग करने के लिए स्तम्भ (पालि, थम्म) भी लगा दिये जाते थे। मगध के खेतो क यह दृश्य भगवान् बुद्ध को बडा सुहावना लगा था और इसी से उन्हे भिक्षुओ के चीवर बनाने की प्रेरणा मिली थी। "आनन्द देख रहा है तू मगध के खेतो को मेड बॅधा, कतार बॅधा, मर्यादा–बॅधा और चौमेड बॅधा?– – – – क्या तू भिक्षुओ के लिए ऐसे चीवर बना सकता है?"[1] प्रशासन भी कृषि–कर्म के महत्व से पूर्णतया परिचित था। इसी कारण राजा स्वय इस कार्य मे हिस्सा लेता था। महाराज शुद्धोदन के यहॉ (खेत) बोने का उत्सव था। सारा नगर सजाया जाता था। सभी दास और भृत्य आदि नये वस्त्र पहन, गध–माला आदि से विभूषित हो, राजमहल मे इकठ्ठे होते थे। राजा रत्न–सुवर्ण जटित, अमात्य सुनहले एव कृषक साधारण हलो से जुताई करते थे।[2]

आज की ही भॉति बुद्धकालीन भारत मे भी हमे आर्थिक परिदृश्य दिखाई देता है, जिसमे बडे–छोटे सभी प्रकार के कृषक थे। कृषिभारद्वाज ब्राह्मण के यहॉ पॉच सौ हलो की खेती थी।[3] एक ग्रामवासी ने एक नगरवासी के पास पॉच सौ फाल धरोहर मे रक्खे[4] ये पॉच सौ हलो एव फालो वाले कृषक निश्चय ही विशाल भू–सम्पत्ति के स्वामी होते होगे। इसी प्रकार जातको मे धान्य के व्यापारियो का उल्लेख मिलता है।[5] कृषि–कार्य मे ये बडे भूमिधर, मजदरो एव दासो

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ८/४/२
अद्दसा खो भगवा मगधखेत्त अच्छिबन्ध पालिबन्ध सिड घाटकबन्ध, दिस्वान आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि "पस्ससि नो त्व, आनन्द, मगधखेत्त अच्छिबन्ध पालिबन्ध मरियादबन्ध सिडाटकबन्ध" ति? एव भन्ते, ति। उस्सहसि त्व आनन्द, भिक्खून एवरूपानि चीवराणि सविदहितु ति? उस्सहामि, मगवा ति।

२ जातक, निदान कथा, शैशव का एक चमत्कार।

३ सुत्त–निपात, १/४

४ कूटवाणिज जातक, सख्या २१८

५ सालक जातक, संख्या २४६, अहिगुण्डिक जातक, सख्या ३६५;

की सहायता लेते थे।[1] जातको मे व्यापारियो की पॉच सौ गाडियो का व्यापार के निमित्त एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का उल्लेख मिलता है जिनमे अन्य वस्तुओ के साथ धान्य के व्यापारी भी रहते होगे। वाराणसी के पिलिय सेठ के यहॉ एक हजार गाडी लाल चावल छटवाकर कोठे मे रखा था।[2] साथ ही दो बैलो से खेती करने वाले गरीब कृषको का भी उल्लेख मिलता है।[3] कभी–कभी बैलो को उधार मॉगना भी पडता था।[4] कुदाल–पण्डित कुदाल से जमीन खोद कर, उसमे साग, लौकी, कद्दू तथा अन्य सब्जी बोकर, उन्हे बेचकर भी दरिद्र जीवन व्यतीत करता था।[5]

इसी प्रकार एक श्रावस्ती निवासी उपासक जडी–बूटी तथा लौकी–कद्दू आदि बेचकर गुजारा करता था।[6] फलो को बेचकर भी परिवार का पोषण किया जाता था।[7]

भूमि-

महात्मा बुद्ध उत्तम कृषि–भूमि की पहचान बताते हुए कहते है "भिक्षुओ! खेत ऊँचा–नीचा नही होता है, कॅकड, पत्थर वाला नही होता, ऊसर नहीं होता, गहरा हल चलाया जा सकता है, (पानी के) आने का रास्ता होता है (पानी के) जाने का रास्ता होता है, पानी की मातृकाये (=नालियॉ) होती है, खेत की मार्यादा (=बाड) होती है। भिक्षुओ! जिस खेत मे ये आठ बाते होती है, उसमे जो बीज बोया जाता है, उसका महान् फल होता है, स्वादिष्ट फल होता है, अच्छी फसल होती है।"[8] कृषक कृषि योग्य भूमि का चुनाव करने के लिए मिट्टी की पहचान

---

१ सुबण्णकक्कटक जातक, सख्या ३८९,

२ असम्पदान जातक, सख्या १३१,
त दिवस किर सो रत्तसालीन सकटसहस्समत्त ओपुनावेत्वा कोट्ठागार पूरापेसि।

३ जातक सख्या २११, सोमदत्त जातक,

४ जातक सख्या २५७,

५ जातक, सख्या ७०, कुदाल जातक,

६ जातक सख्या २१७, सेग्गु जातक, जातक सख्या १०२, परिणक जातक
सो किर सावत्थिवासी उपासको जानोपकारकानि मूलपण्णादीनि
चेव लाबकुम्भण्डादीनि च विक्किणित्वा जीविक कप्पेति।

७ अम्ब जातक, जातक सख्या ४७४,

८ अगुत्तर–निकाय, हि० अनु० तृतीय भाग, पृष्ठ ३१४

करते थे। उत्पादकता को ध्यान मे रखते हुए दो प्रकार की मिट्टी दृष्टिगत होती है। एक उर्वर भूमि और दूसरी ऊसर या मरुभूमि। बौद्धसाहित्य मे कृषिकर्म के सम्बन्ध मे इन्ही दो प्रकार की भूमि का उल्लेख प्राप्त होता है। जो अनुपजाऊ भूमि थी उनमे पत्थर, रोडे एव बालू इत्यादि अधिक मात्रा मे पाया जाता था। बौद्ध ग्रन्थे मे उर्वर भूमि को "जातपथवी" एव ऊसर भूमि को "अजातपथवी" कहा गया है। जातको मे उपजाऊ भूमि को मधुमक्खी के छत्ते के समान माना गया है जिसकी मिट्टी अत्यन्त चिकनी एव महीन होती थी।[१] सयुत्त–निकाय मे कृषक गृहस्थ के तीन प्रकार के खेत का उल्लेख है– एक बडा अच्छा, एक मध्यम और एक बडा बुरा जगल ऊसर।[२]

उस समय के कृषको को कृषि कार्य का उत्तम ज्ञान था अतएव वे भूमि का चयन बडी कुशलता एव सजगता से करते थे। उन्हे इसका अनुमान था कि किस मिट्टी मे कौन सी फसल होगी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी किस फसल के लिए कौन सी भूमि उत्तम है इसका वर्णन मिलता है। "नदी के कछारो एव किनारो की जमीन का पेठा, कद्दू, ककडी तथा तरबूज आदि बोने के लिए उपयुक्त है, पीपल और ईख आदि बोने के लिए वह जमीन उपयुक्त है, जहॉ पर नदी का जल एक बार घूम गया हो, साग–भाजी बोने के लिए कुऐ के आस–पास की जमीन उपयुक्त है, जई आदि बोने के लिए झील तथा तालाबो के किनारे की गीली जमीन उपयुक्त है, धनिया, जीरा, खस, नेत्रवाला तथा कचालू आदि बोने के लिए ऐसे खेत उपयुक्त है, जिनके बीच मे तालाब बने हो, सूखी और गीली, जमीन मे जिन–जिन अनाजो की अधिक उपज हो उनको समझा कर बोना चाहिए।"[३] राज्य को सबल–उन्नत बनाने के लिए आवश्यक था कि राजा कृषि की उन्नति के लिए अपनी सहायता प्रदान करे। महाविजित नामक राजा को ब्राह्मण–पुरोहित ने सलाही दी "राजन जो कोई आपके जनपद मे कृषि गोपालन करने का उत्साह रखते है, उनको आप बीज और भोजन प्रदान करे।[४] तब राजा के इस प्रकार अनुसरण करने से जनपद अकटक अपीडित क्षेम–युक्त हो गया।

---

१ जातक, फॉसवाल, जि० १, पृ० १६४, २४०, ३८८, जिल्द ३, पृ० ४०१

२ सयुत्त–निकाय, ४/४०/७,

३ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला, प्रकरण ४०, अध्याय २४

४ दीघ–निकाय, कुटदन्त–सुत्त, १/५/२

तेन हि भव राजा ये भोतो रञ्ञो जनपदे उस्सहन्ति कसिगोरक्खे तेस भव राजा बीजभत अनुप्पदेतु।

'ऐसी ऊसर या बजर जिसको किसान ने अपने श्रम से खेती योग्य बनाया है, राजा को चाहिए कि उसे कभी वापिस न ले, ऐसी जमीन पर किसानो का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यदि कोई किसान किसी खेती योग्य भूमि को बिना जोते–बोये परती ही डाले रहता है तो राजा को चाहिए कि ऐसे किसान से उस भूमि को छीनकर किसी जरूरतमद दूसरे किसान को दे दे – – – राजा को चाहिए कि वह अन्न, बीज, बैल और धन आदि देकर किसानो की सहायता करता रहे और किसानो को भी चाहिए कि फसल कट जाने पर सुविधानुसार धीरे–धीरे वे उधार ली हुई वस्तुओ को राजा को वापसि कर दे।[1] – – – – – खेतो का वर्गीकरण उनमे बोई फसलो के आधार पर किया जाता था।[2] जैसे यवखेत= जौ का खेत, सालिखेत=धान का खेत, इच्छुखेत=ईख का खेत और तिणखेत्त=घास का खेत आदि। अन्न के खेतो के अतिरिक्त खेतो की कोटियो मे घास के खेत के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि कृषि कार्य हेतु रखे गये पशुओ की देखरेख उचित ढग से होती थी।

कृषि के उपकरण

हल-

सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास, व्यावहारिक अनुभव एव तकनीक ने वैदिक कालीन कृषि के उपकरणो को बौद्धकाल तक आते–आते एक निश्चत रूप प्रदान किया। हल के द्वारा जुताई की जाती थी यह लकडी का होता था एव जिसमे लकडी या लोहे का वह भाग लगा रहता था जो जमीन के अन्दर प्रविष्ट होकर मिट्टी को उखाडता था वह फाल कहलाता था। पालि

---

१. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, वापस्पति गैरोला,
प्रकरण १७, अध्याय १, पेज न० ७८

२ जातक प्र०, पृ० १६४, २४०, ३८८, चतुर्थ, पृ० २५०, २२६

साहित्य मे हल चलाते हुए कृषको का दृश्य बहुधा दिखाई देता है।[1] राजगृह के पूर्व की ओर सालिन्दिय नाम का एक ब्राह्मण गॉव था। वहॉ एक कृषक अपने आदमियो के साथ खेत पर जाता है और मजदूरो को 'हल चलाओ' का आदेश देता है।[2] कासिभारद्वाज ब्राह्मण के यहॉ पॉच सौ हलो की खेती होती थी।[3] वाराणसी के एक ग्रामवासी व्यापारी ने नगरवासी व्यापारी के यहॉ पॉच सौ फाल रखे थे।[4] भिक्षु–भिक्षुणियो से कहा जाता था, "हलो से खेत को जोत कर और धरती मे बीज बोकर मनुष्य धन प्राप्त करते है और अपने स्त्री–पुत्रो का पालन–पोषण करते है – – – – – तुम भी बुद्ध–शासन को क्यो नही करते, जिसे करके पीछे पछताना नही पडता।"[5]

यद्यपि साहित्यिक एव पुरातात्विक साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि आर्यो को लोहे का ज्ञान था। परन्तु छे सौ ई० पू० के आस–पास ही लोहे का प्रयोग सामान्य प्रचलन की वस्तु बना। लोहे के फाल का प्रयोग कृषि कार्य के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। लकडी के फाल से उतनी गहरी जुताई नही हो सकती जितनी लोहे के फाल के द्वारा। गहरी जुताई से अधिक अन्न उत्पादन होने लगा जिससे उत्पादन मे अत्यधिक वृद्धि हुई। लोहे के फाल के प्रयोग के साक्ष्य प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे जगह–जगह मिलते है। सुत्त–निपात[6] को कहा गया है कि "दिनभर का तपाया फाल जल मे डालने पर चिच्चिट, चिटचिट करता है, ऊपर भाप छोडने लगता है ऐसे ही खीर जल मे फेकने पर चिच्चिट, चिटचिट करने लगी और ऊपर भाप छोडने लगी। कुछ इसी प्रकार का उल्लेख सयुत्त–निकाय मे भी मिलता है– "जैसे, दिन भर, आग मे

---

१ महाकपि जातक सख्या ५१६, धतासन जातक, सख्या १३३,

२ सुवण्णकक्कटक जातक, सख्या ३८९

३ सुत्त–निपात, १/४,

४ जातक, सख्या २१८

५ "नगलेहि कस खेत्त बीजानि पवप छमा। पुत्तदारानि
पोसेन्ता धन बिन्दन्ति मानवा करोथ बुद्धशासन
य कत्वा नानुतप्पति", थेरीगाथा, गाथाऍ ११२, ११७ (बम्बई विश्वविद्यालय सस्करण)।

६ सुत्त–निपात १/४,
सेय्यथापि नाम फालो दिवससन्तत्तो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति, एवमेव सो पायसो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति।

तपाया लोहे का फार पानी मे पडते ही चटचटाते हुये भभक उठता है, लहर उठता है, वैसे ही वह हव्यशेष पानी पर पडते ही चिडचिडाते हुय भभक बैठा, लहर उठा।"[1] सूची जातक मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आस–पास के गॉव के लोग फाल वनवाने के लिए लोहार गॉव मे जाते थे।[2]

बैल-

हल खीचने के लिए बैलो को जुए या योत्र अथवा योक्क (जोत) से कसा जाता था। इसलिए बैलो को 'युग्म' भी कहा गया है। सयुत्त निकाय मे कहा गया है 'प्राणियो मे बैल काम मे साथ देता है और जोत उसके चलने का रास्ता है।'[3] गामणीचण्ड नामक राजा के सेवक ने जब कृषिकर्म करने की ठानी तो बैलो के न होने के कारण उसने अपने मित्र से दो बैल मॉगे।[4]

जिनके पास थोडी भूमि थी या जो हल एव बैल की व्यवस्था करने मे सक्षम नही थे वे कुदाल या फावडे से अपनी भूमि को खोदते थे। गरीब, कुदाल–पण्डित, कुदाल से जमीन खोदकर सब्जी–तरकारी बोकर उन्हे बेचकर जीवन यापन करता था।[5]

विनयपिटक मे फरसा, कुदाल, निखादन (=खनने के औजार) का उल्लेख आया है।[6] सुत्त–निपात के कसिभारद्वाज सुत्त से स्पष्ट है कि जुआट, फाल, हल, छेकुनी एव बैलो की मदद कृषि कार्य मे आवश्यक थी।[7] भगवान बुद्ध का घोर विरोधी मार कृषक का स्वाग रचकर भगवान् बुद्ध के पास आता है, तो तत्कालीन कृषक एव आज के किसान मे कोई विशेष अन्तर नही दिखाई देता। 'एक बडे हल को कन्धे पर लिए, एक लम्बी छकुनी लिये बाल बिखेरे, टाट के कपडे पहने पैरो मे कीचड लगाये पापी मार आता है।[8]

---

१ सयुत्त–निकाय १/७/१/६
२ सूची जातक,
३ सयुत्त–निकाय, १/१/८०
किसु कममे सजीवान, किमस्स इरियापथे
गावो कम्मे सजीवान सीतस्स इरियापथो
४ गामणीचण्ड जातक, सख्या २५७,
५ कुदाल जातक, जातक सख्या ७०,
६ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/५/३,
७ सुत्त पिटक १/४ "न खोपन मय पस्साम भोतो गोतमस्स युग वा नगल वा फाल वा पाचन वलिवद्दे वा;"
८ सयुत्त निकाय १/४/२/६
ऊध खो मारो पापिमा कस्सकवण्ण अभिनिम्मिनित्वा महन्त नगल खन्धे करित्वा दीघपाचनयट्ठि गहेत्वा हटहटकेसो साणसाटिनिवत्थे कदमभक्खितेहि पादेहि येन भगवा तेनुपसकमि उपककमित्वा भगवन्त एतदवोच।

कृषि की विधियॉ-

मल्ल निगम का शाक्य महानाम प्रव्रजित होने की इच्छा जाग्रत होने पर भाई अनुरुद्ध को गृहस्थी (कृषि का) का कार्य–भार समझाते हुए कहता है–

"पहले खेत जोतवाना चाहिये। जोतवाकर बोवाना चाहिए। बोवाकर पानी भरना चाहिए, पानी भरकर निकालना चाहिए, निकाल कर सुखाना चाहिये, सुखाकर कटवाना चाहिए, कटवाकर ऊपर लाना चाहिये, ऊपर ला सीधा करवाना चाहिए, सीधा कर मर्दन करवाना (=मिसवाना) चाहिये, मिसवाकर पयाल हटाना चाहिये। पयाल को हटाकर भूसी हटाना चाहिये। भूसी हटाकर फटकवाना चाहिये। फटकवाकर जमा करना चाहिये। इसी प्रकार अगले वर्षो मे भी काम करना चाहिये।"[1]

कोशल देश के सीमान्त ग्राम मे खेत मे पानी देने, बीज बोने, मेड बॉधने, गुडाई करने, काटने, दौरी करने का वर्णन है।[2] प्रारम्भिक बौद्ध ग्रन्थो मे कृषि सम्बन्धी विविध प्रक्रियाओ का विस्तृत विवरण है–

---

१ विनयपिटक चुल्लवग्ग ४/७/१

एहि खोते, तात अनुरूद्ध घरावासत्थ अनुसासिस्साम्मि/

पठम खेत्त कसापेतब्ब/ कसापेत्वा वपापेतब्ब/

वपापेत्वा उदक अभिनेतब्ब उदक अभ्निोत्वा उदक निन्नेतब्ब/

उदक निन्नेत्वा निद्धापेतब्ब/

निद्धापेत्वा लवापेतब्ब/

लवादेत्वा उब्बाहापेतब्ब/ उब्बाहापेत्वा पुञ्ज कारापेतब्न/ पुद्ध कारापेत्वा मदापेतब्न/ मदापेत्वा पलालानि उद्धारपेतब्बानि/पलालानि उद्धारपेत्वा मुसिका उद्धरापेतब्बा/ मुसिक उद्धरापेत्वा ओपुनापेतब्ब/ ओपुनापेत्वा अतिहारापेतब्न/

अतिहरापेत्वा आयति पि वस्स एवमेव कातब्नु, आयति पि वसन एवमेव कातब्ब ति।

२ सकुण जातक, सख्या ३६,

जोतना या कर्ष-

कृषि के लिए सर्वप्रथम खेत की समुचित जुताई की जाती है। जुताई से भूमि की मिट्टी मुलायम एव महीन हो जाती है जो कि बीज बोने के लिए आवश्यक है। इस समय तक लकडी के साथ–साथ लोहे के फाल लगे हलो से जुताई की जानी लगी थी। लोहे के फाल के प्रयोग का स्पष्ट उल्लेख जातको एव अन्य बौद्धग्रन्थे मे मिलता है। काशी देश मे एक गॉव से कुछ दूरी पर लोहारो का गॉव था। आस–पास के गॉव के लिए कृषि के लौह उपकरणो– छुरी, कुल्हाणी, फरसा, फाल आदि बनवाने के लिए लोहारो के गॉव मे जाते थे[१]– कसिभरद्वाजसुत्त मे कहा गया है कि– "दिनभर का तपाया फाल जल मे डालने पर चिच्चिट, चिटचिट करता है, ऊपर भाप छोडने लगता है[२]– ऐसी ध्वनि गर्म लकडी के फाल मे सम्भव नही है लोहे का तप्त फाल ही पानी मे पडने पर इस प्रकार की आवाज कर सकता है। लोहे का फाल अधिक गहरी जुताई करने मे सक्षम था जिससे उत्पादन मे बृद्धि हुई। इस अतिरेक उत्पादन ने पूरी अर्थव्यवस्था पर अपना गहरा प्रभाव डाला। अच्छी फसल की उम्मीद मे खेतो को बार–बार जोता जाता था।[३] पाणिनि ने भी इसका सकेत दिया है कि खेत की जुताई करने और भूमि कमाने मे किसान इतना अधिक श्रम करते थे कि खेत की उर्वरा शक्ति दुगुनी हो जाती थी। अधिक गहरी फाड (जोत) के लिए हल को उल्टा चलाते थे, जिससे शम्बाकरोति कहा जाता था।[४] थेरगाथा मे कहा गया है, कृषक खेतो की अच्छी जुताई–बोवाई अच्छी फसल प्राप्त होने की आशा से ही करते थे। सयुत्त–निकाय मे कहा गया है कि शरदकाल मे खेतो की जुताई करने के फलस्वरूप किसानो को कृषि का विशेष लाभ पहुँचता था[५] जुताई क्रिया का अच्छी फसल से घनिष्ठ सम्बन्ध था "जिस कुल–पुत्र को अपनी जमीन जोतने वाले, रस्सी आदि से नापने– जोखने, वाले आदमियो का आशिर्वाद प्राप्त हो, उसकी उन्नति की ही आशा करनी चाहिए, अवनति की नहीं।"[६]

---

१ जातक, सूची जातक, सख्या ३८७

२ सुत्त–निपात १/४ सेय्यथापि नाम फालो दिवससन्तत्तो उदके पक्खितो चिच्चटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति, एवमेव सो पायासो उदके पक्खितो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपपायति।

३ सयुत्त निकाय १/७/१२
"पुनप्पुन खत्त कसन्ति कस्सका
पुनप्पुन धञ्ञमुवेत्ति रट्ठ।"

४ काशिका ५/४/५८ 'अनुलोम कृष्ट क्षेत्रं पुन प्रतिलोम कृषीत्यर्थ'।

५ सयुत्त–निकाय, ३/२१/२/५/१० हि० अनु० पृष्ठ ३८८

६ अगुत्तर–निकाय, हि० अनु०, द्वितीय भाग, पृष्ठ ३०१,

बोना– जुताई के बाद खेत बोने लायक हो जाता था। अच्छे बीज से ही उन्नत फसल की उम्मीद की जा सकती है।सयुत्त–निकाय मे बीज के पॉच प्रकार बताते हुए कहा गया है कि अच्छी फसल के लिए आवश्यक है कि "बीज अखण्डित हो, सडे गले नही हो, हवा या धूप से नष्ट नही हो गये हो, सार वाले हो और आसानी से रोपे जा सकने वाले हो।"[1] दीघ निकाय मे भी उत्पत्ति के आधार पर बीजो का वर्गीकरण किया गया है जैसे मूलबीज (=जिनका उगना मूल से होता है) स्कन्धबीज (=जिनका प्ररोह गॉठ से होता है, जैसे ईख) फलबीज, अग्रबीज (=ऊपर से उगता पौधा)[2]

बुआई एक शुभ कार्य माना जाता था। "बोने से पहिले – – – – –बीज की पहली मुट्ठी भरकर यह मन्त्र पढना चाहिए, प्रजापति, सूर्यपुत्र और मेघ, तुम्हारी सदैव हम बन्दना करते है, हे धरती माता, हमारे बीजो और अनाजो मे सदा बृद्धि होती रहे।"[3] पाणिनी, कौटिल्य एव वाल्मीकि ने बुआई के उपयुक्त समय का उल्लेख किया है। जातक[4] मे बुआई के समय एक विशेष उत्सव आयोजित करने का वर्णन है।

बुआई की कई विधियॉ प्रचलित थी जैसे बेर, पवेड या छीट तथा चोवली आदि। हल चलाते समय बीज कूड मे गिरता जाय, इसे बेर की बुआई कहते थे। बीज को खेत मे छीट कर चलाने का नाम पवेड॰ की बुआई थी तथा जोती हुई भूमि मे बीज को हाथ से गाडना चोवली कहलता था।

---

१ सयुत्त–निकाय, ३/२१

मूलवीज, खन्धबीज, अग्गबीज, कलुबीज, वीजबीजपञ्चैवपञ्चम इमानि चस्सु भिक्खवे, पञ्च बीजजातानि अपूतिकानि अवातातपहतानि सारादानि सुखसयितानि, भिक्खवे पञ्च बीजजातानि बुद्धि विरूलिह वेपुल्ल

२ दीघनिकाय, १/२/२

मूलबीज खन्धवीज फलुबीज अग्गवीज बीजबीजमेव पञ्चम

३ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला, प्रकरण ४०, अध्याय २४,

'प्रजायपतये काश्यपाय देवाय नम सदा।

सीता मे ऋध्यता देवी बीजेषु च धनेषु च'।।

४, जातक, निदान कथा, शैशव का एक चमत्कार,

बुआई के उत्सव मे राजदरबार के समस्त परिजन अलकृत एव नवीन वस्त्रो से सुसज्जित होकर भाग लेते थे। रत्नो से युक्त हल द्वारा स्वय राजा खेतो की जुताई करता था। तत्पश्चात कृषको द्वारा भी यही कार्य किया जाता था। इससे दो बाते स्पष्ट होती है– प्रथम तो चूँकि राजा राष्ट्र का प्रतीक था इसलिए समस्त कार्यो के साथ–साथ वह कृषि जैसे उत्तम कार्य का शुभारम्भ करता था, दूसरी बात यह है कि कृषि कार्य इतना महत्वपूर्ण था कि राजा को स्वय इसमे रुचि रखनी पडती थी, जिससे अन्नो का अधिक से अधिक उत्पादन हो सके।

सयुत्त निकाय मे कृषको द्वारा खेतो मे बारम्बार बीज बोने का उल्लेख है।[१] उत्तम बीज की बुआई जब नम भूमि मे किया जाता था तो वे पृथ्वी के रस को भलीप्रकार ग्रहण कर उग आते थे और उनसे फसले भी उच्चकोटि की होती थी।[२]

सिंचाई-

बीज बोने के बाद जब पौधे निकल आते थे तो उनकी सिचाई की जाती थी। मज्झिम निकाय मे कहा गया है कि तरुण बीजो को समय पर पानी न मिलने पर वे सूखने लगते थे और उनकी बृद्धि नही हो पाती थी।[३]

---

१ स० नि० प्र० ७/२/२– पुनप्पुन चेव वपन्ति बीज
पुनप्पुन वस्सति देवराजा

२ अगुत्तर निकाय, चतुर्थ, १०/११/४
उच्छुबीज वा सालिबीज वा अल्लाय पथविया निक्खित्त य च पथविरस उपादियति य च आपोरस उपादियति/
सव्व त सातत्ताय मधुख्तायय असेचनकत्ताय सवत्तति/ त किस्स हेतु/
वीज हि भिक्खवे, भद्दक/

३ मज्झिमनिकाय, नालदा, पालि प्रकाशन, द्वितीय १७/१/२
सेप्यथापिभन्ते, बीजानि तरूणानमउदकम् जलमन्तानम्
सियाथन्यथतम् सियानिपरिणामो.

सिचाई प्राकृतिक एव कृत्रिम दोनो साधनो द्वारा की जाती थी। यद्यपि कृत्रिम साधनो से सिचाई की जाती थी, परन्तु देश का एक बडा भाग वर्षा के जल पर ही निर्भर था और हमारे प्राचीन साहित्य मे वर्षा की प्रतीक्षा करते हुए किसानो से सम्बन्धित अनेक उपमानो एव उत्प्रेक्षाओ का प्रयोग हुआ है।[1] वर्षारम्भ मात्र से पृथ्वी पर नवजीवन एव चेतनता का सचार हो उठता था। जैन ग्रन्थ आचाराग सूत्र के अनुसार पावन की प्रथम वृष्टि के साथ ही नाना प्रकार के नए–नए जीवो का उद्‌भव होता है, नव बीज अकुरित हो उठते है, मार्ग अवरुद्ध हो जाते है और सडको आदि का पहचानना दुष्कर हो जाता है।[2] सयुत्त–निकाय मे वर्षा की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि 'वृष्टि माता की तरह आलसी और उद्योगी दोनो की रक्षा करती है, पृथ्वी पर जितने प्राणी बसते है, वृष्टि होने से वे सभी जीवन धारण करते है।[3] वर्षा की इस महत्ता को ध्यान मे रखकर ही कृषक वर्ग वर्षा के लिए सम्यक् पूजा–पाठादि करता था। भाष्य मे जप के बाद या साकल्य की सहिता के पाठ के बाद वर्षा का होना बतलाया गया है। सावन–भादोके महीने के पहले को पूर्व वर्षा और दूसरे को अपर वर्षा कहा जाता था। कौटिल्य ने भारत के विभिन्न भागो मे वर्षा की विभिन्न मात्रा का उल्लेख किया है।[4] कौटिल्य ने वर्षा सम्बन्धी अन्य बाते भी कही है यह तात्कालिक भारतीय कृषको के अन्तरिक्ष सम्बधी पर्याप्त ज्ञान एव अनुभवो का परिचय देता है।[5]

"वर्षा के अनुपात से ही बीज बोना चाहिए। साठी या धान (शालि), गेहूँ, जौ, ज्वार (व्रीहि), कोदो, तिल, कागनी (प्रियगु) और लोभिया आदि वर्षा शुरू होने से पहले ही बो देना चाहिए। मूँग, उडद और छीमी आदि को वर्षा के मध्य मे बोना चाहिए। कुसुबी, मसूर, कुल्थी, जौ, गेहूँ,

---

१ रामायण २/११२/१२ "त्वामेव प्रतिकाक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षका"/ तथा २/३२/१३

२ आचाराग सूत्र २/३/१–१

३ सयुत्त–निकाय १/१/८/१०

"किसु अलस अनलस च, माता पुत्त व पोसति।

कि भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पाठवि सिता" ति।।

"वृट्ठि अलस अनलस च, माता पुत्त च पोसति।

वृट्ठि भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पाठवि सिता" ति।

४ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम, वाचस्पति गैरोला, प्रकरण ४०, अध्याय २४,

५ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला, प्रकरण ४०, अध्याय २४,

मटर अलसी और सरसो आदि अन्नो को वर्षा के अन्त मे बोना चाहिए अथवा इन सभी अन्नो को ऋतु के अनुसार तथा पानी की सुविधा देखकर ही खेतो मे बीज बोना चाहिए।"[१]

एक जातक मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि वर्षा का आभास होने पर कुछ व्यक्तियो ने कुदाली एव टोकरी लेकर सेतु निर्माण के लिए प्रस्थान किया[२]। अगुत्तर निकाय मे मेघो के विषय मे कहा गया है कि वे चार प्रकार के होते है– कुछ बादल केवल गरजते है, बरसते नही, कुछ केवल बरसते है, गरजते नही, कुछ ऐसे होते है जो गरजते भी है, बरसते भी है और कुछ ऐसे होते है, जो न तो गरजते है और न बरसते है।[३]

वर्षा के अतिरिक्त नदियॉ, कुएँ, नहरे, बॉध, तालाब आदि भी सिचाई के महत्वपूर्ण साधन थे। पाणिनि ने कई बडी–छोटी नदियो के नाम दिऐ है जिनमे उन दिनो सिचाई होती थी। बडी–बडी नदियो पर बॉध बनाकर उनका जल खेतो की सिचाई मे उपयोग किया जाता था। कौटिल्य ने कहा है "भूमि की सिचाई के लिए राजा को चाहिए कि नदियो पर बडे–बडे बॉध बॅधवाये अथवा वर्षा ऋतु के जल को भी बडे–बडे जलाशयो मे भरवा दे। यदि प्रजाजन ऐसा कार्य करना चाहते है तो राजा को चाहिए कि उन्हे जलाशय के लिए भूमि, नहर का रास्ता और आवश्यकतानुसार लकडी आदि सामान देकर उनका उपकार करे।"[४] महासुसीम जातक मे

---

१ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् वाचस्पति गैरोला, प्रकरण ४०, अध्याय २४,
तत प्रभूतोदकमल्पोदक वा सस्य वापयेत्।
शालिव्रीहिकोद्रवतिलप्रियगुदारकवरका पूर्ववाया ।
मुद्गामाषशैम्ब्या अध्यवाया । कुसुम्ममसूरकुलत्थयव
गोधूमकलायातसीसर्षपा पश्चाद्वाया । यथर्तुवशेन वा वीजवाया ।
कर्मोदकमप्रकाणेन कैदार हैमन गैण्मक वा सस्य स्थापयेत्।

२ फॉसबॉल, जि० १, पृ० ३३६, पुरिषेषु कुदालपिटक हत्थेसु आलिभवधनत्थाय निखन्तेसु।

३ अगुत्तर–निकाय, नालदा, पालि प्रकाशन द्वि० ४/११/२
चत्तारोमे भिक्खवे वलाहका। कतमेचत्तारो। गज्जिता नो वस्सिता, वस्सता नोगज्जिता, ने गज्जिता, नेववस्सिता, नगज्जिता च चवस्सिता च।

४ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला, प्रकारण १७, पृष्ठ न० ७६

लोगो को हाथो मे टोकरी और कुदाली लेकर बाधो को मजबूत करने के लिए जाते हुए दिखाया गया है। शाक्य तथा कोलिय, कपिलवस्तु और कोलिय–नगर के बीच बहने वाली रोहिनी नदी पर एक ही बॉध बना कर खेती करते थे। जेठ के महीने के अन्त मे खेती के कुम्हला जाने पर दोनो नगरवासियो के कर्मकर लोग इकट्ठे हुए। पानी के लिए दोनो पक्षो मे विवाद हो गया। महात्मा बुद्ध की मध्यस्थता से सघर्ष टल सका।[१] अत प्रकट है कि भारतीय कृषक नदियो पर बॉध बनाकर उससे एकत्रित जल से सिचाई करने की तकनीक से परिचित थे।

मेगस्थनीज लिखता है कि मिस्र की भॉति भारत मे भी सिचाई विभाग के कुछ अधिकारी नदियो की देखभाल तथा भू–मापन किया करते थे। कौटिल्य ने भी इसका समर्थन किया है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय काठियावाड मे निर्मित विशाल बॉध एव सुदर्शन झील के निर्माण से सिचाई साधनो के प्रति राज्य के बढते हुए दायित्व का बोध होता है। इन प्रसगो से स्पष्ट होता है कि दुर्भिक्ष आदि की सम्भावना समाप्त करने के उद्देश्य से राज्य का यह कर्तव्य होता था कि वह सिचाई के साधनो के व्यवस्था उत्तम रीति से करे। दुर्भिक्ष आदि आपत्तियॉ बहुधा राजकीय दुर्व्यवस्था तथा कुशासन का ही परिणाम मानी जाती थी।

नदियो के अतिरिक्त कुऍं, तालाब, जलाशय भी सिचाई के प्रमुख साधन थे। बडे कुओ के अलावा जो कि प्रत्येक गॉव मे होते थे, सिचाई के लिए छोटे–छोटे कूप भी आवश्यकतानुसार बना लिए जाते थे। हस्तिनापुर, नई दिल्ली, रूपर, उज्जैन, मथुरा तथा नासिक आदि उत्खननो से ६०० ई० पू० से २०० ई० पू० के मध्य निर्मित अनेक कूपो के अवशेष प्राप्त हुए है, जिनके विषय मे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका उपयोग अधिकतर सिचाई के लिए होता रहा होगा।

वैदिक काल मे कुऍं से पानी ऊपर उठाने के लिए चर्म–रज्जु तथा वाल्टी का प्रयोग होता था परन्तु इस काल मे बैलो के सहारे रहट से पानी निकालकर खेतो की सिचाई करने की प्रथा चल पडी। विनय पिटक मे कुऐ से पानी निकालने की पूरी व्यवस्था स्पष्ट होती है।

---

१. कुणाल जातक, संख्या ५३६,

साधारण तरीके से रस्सीसे बर्तन बॉध कर पानी निकालने से हाथ दुखने लगता था।[1] इससे बचने के लिए तुला (=ढेकली), करकटक (=पुर) और चक्कवट्टक (=रहट) का प्रयोग किया जाता था।[1] कुँए के ऊपर कोई छाया नही होने से सर्दी एव गर्मी दोनो ही ऋतुऐ सताती थी। इसलिए कूएँ के ऊपर उदवान–शाला (=कुँए पर की छाजन) का निर्माण किया जाता था। कुऑ ढका नही रहने से उसमे कूडा–करकट गिर जाता था इससे बचाव के लिए कुँए के ऊपर पिहान (=विधान टक्कन) की व्यवस्था की जाती थी।[2]

नहरे भी सिचाई की प्रमुख साधन थी। सामूहिक उपयोग की वस्तु होने के कारण नहरो का निर्माण बहुधा सामूहिक श्रम एव सहयोग के द्वारा होता था। धम्मपद मे लोगो के द्वारा नहरो से पानी ले जाने का उल्लेख है।[3] साथ ही तालाब, कुओ, झीलो का निर्माण भी समय–समय पर किया जाता था। थेरीगाथा मे उल्लेख है कि तालाबो के जल को बॉध कर खेतो को सीचने के लिए उपयोग मे लाया जाता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रकृति की पर्याप्त अनुकम्पा होते हुये भी भारतीय कृषक मात्र प्रकृति पर निर्भर न रहकर अच्छी फसल के उत्पादन हेतु सिचाई के कृत्रिम साधनो का भी प्रयोग करते थे।

बीज बोने के पश्चात् उनमे अकुर आने और पौधो के कुछ बडे हो जाने पर किसान खेतो की निराई करता था। निराई पौधो के चतुर्दिक उगे हुये घास–फूस और रद्दी पौधो को

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ४/५/२/४,

हत्था दुक्खा होन्ति – – पे० – – "अनुजानामि, भिक्खवे, तुल करकटक चक्कवट्टक' ति।

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १/३/१,

तेन खो पन समयेन भिक्खू अज्झोकासे उदक वाहेन्ता सीतेन पि उण्हेन पि किलमन्ति। भगवतो एतमत्थ आरोचेसु। "अनुजाना, भिक्खवे उदपानसाल ति। उदयानो उपारूतो होति, तिणचुण्णेहि पि पसुकेहि पि ओकिरिचयति – – – – पे० – – – –" अनुजानामि, भिक्खवे अपिधान ति।

३ धम्मपद, पण्डितवग्गो,

उदक हि नयन्ति नेत्तका।

कुदाली, खुरपी आदि से साफ करके की जाती थी। दीघ–निकाय मे खेत की घास–पात साफ करने का उल्लेख आया है।[1] निराई न करने से रद्दी घास–पात अच्छी फसल को हानि पहुँचाते है। अगुत्तर–निकाय मे जौ के साथ एक रद्दी पौधे के उग जाने का वर्णन आया है– "भिक्षुओ जैसे किसी जौ के खेत मे दुष्ट जौ, प्रलाप जौ, कूडा जौ उग आये, वह देखने मे अच्छी जौ के एकदम समरूप हो, लेकिन जब उसकी बालि निकले तो लोग जान पाये कि वह बेकार जौ है। जान लेने पर वे उसे जड से उखाड कर जौ के खेत से बाहर फेक देगे, ताकि यह दूसरे अच्छे जौ को खराब न करे।"[2]

लवनी एव मणनी

फसल जब पककर पूर्णतया तैयार हो जाती थी तो किसान उन्हे काट लेते थे। इस प्रकार पकी फसल की कटनी को लवनी कहा जाता था एव कटाई करने वाले लावक या लवक कहलाते थे।[3] कटाई के समय खेत मे बहुत से व्यक्ति एक साथ काम करते थे। गहपति जातक मे उल्लेख आया है कि सारे ग्रामवासियो ने मिलकर निश्चय किया कि अब से दो महीने बाद खेत काटा जायेगा।[4] मज्झिम निकाय मे कहा गया है कि वर्षा के अन्तिम मास मे शरद–काल मे (खेत मे चारो ओर) फसल भरी रहती है एव ग्रीष्म के अन्तिम मास मे सभी फसल गॉव मे चली जाती है।[5]

कटी फसले बोझ मे बॉध खलिहान मे सग्रहित की जाती थी। तत्पश्चात् धान्य एव भूसे को अलग किया जाता था इसको मणनी या गाहन कहा जाता था। मणनी के लिए पहले फसलो को सुखाया जाता था।[6] विनयपिटक मे कहा गया है कि "(फसल) कटवाकर ऊपर लाना चाहिए,

---

१ दीघ–निकाय १/१२/४

२ अगुत्तर निकाय, हिन्दी अनुवाद खण्ड तृतीय, पृष्ठ २६५,

३ वासुदेव शरण अग्रवाल– पाणिनीकालीन भारतवर्ष पृष्ठ २०३,

४ गहपति जातक, जातक सख्या १११,

५ मज्झिम–निकाय हि० अ० पृष्ठ ७५,

६ सीध सीध पुन्ज कारापेत्वा सीध सीध पद्दापेय्य
सीध सीध पद्जपेत्वा सींध सीध पलालानि उद्यपेय्य।
अ० नि० प्र० ३/१०/२

ऊपर ला सीधा करवाना चाहिए, सीधा कर मर्दन (मणनी) करवाना चाहिए, मिसवाकर (मणनी के बाद) पयाल हटाना चाहिए। पयाल को हटाकर भूसी हटाना चाहिये। भूसी हटवाकर फटकवाना चाहिये। हटवाकर (अन्न) जमा करना चाहिए। इसी प्रकार अगले वर्षो मे भी काम करवाना चाहिए।"[१]

एक जातक कथा मे भी फसल की कटाई एव मणनी (दौरी करने) की प्रक्रिया का प्रसग आया है।[२]

तत्पश्चात् लोग अनाज को उठाकर घर लाते थे एव कोठी मे रख देते थे।[३] अनाज का सग्रहण, मिट्टी के बडे–बडे पात्रो, जिन्हे डेहरी कहा जाता था, मे किया जाता था। मज्झिम–निकाय मे नाना प्रकार के अनाजो शाली, व्रीहि, मूँग, उडद, तिल एव तडुल से भरी डेहरी का उल्लेख आया है।[४]

भूस्वामित्व-

यद्यपि 'भू–स्वामित्व' एक विवादास्पद तथ्य के रूप मे स्वीकार किया जाता है तथापि इस काल मे भूमि पर खेती करने वाले तथा राजा दोनो का अधिकार सिद्ध होता है। वस्तुत भू–स्वामित्व के विकास मे दो बातो का महत्व रहा है। एक तो राजतन्त्र के कारण राजा का

---

१ लवापेत्वा उब्बाहपेतब्ब। उब्बाहापेत्वा पुञ्ज कारापेतब्ब।
पुञ्ज कारापेत्वा मद्दापेतब्ब। मदापेत्वा बलालानि
उद्धारपेतब्बानि। पलालनि उद्धारपेत्वा मुसिका
उद्धारपेतब्बा। मुसिक उद्धारापेत्वा ओपनापेतब्न।
ओपुनापेत्वा अतिहरापेतब्ब। अतिहरापेत्वा आयति
पि वस्स एवमेव कातब्ब, आयति पि बक्स एवमेव कातब्ब" ति।

२ सकुण जातक, जातक सख्या ३६,

३ अ० नि० प्र० ३/१०/२

४ मज्झिम–निकाय, पट्ठान सुतन्त १/१/१० हि० अ० पृष्ठ ३६,

उस पर अधिकार दूसरी बात यह है कि कृषक का भूमि पर स्वय व्यक्तिगत् अधिकार था। इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से राजा उसका मालिक था और व्यवहारिक पक्ष यह था कि भूमि अलग–अलग व्यक्तियो के अधिकार क्षेत्र मे थी जिसका वे स्वेच्छापूर्वक प्रयोग, आदान–प्रदान एव क्रय–विक्रय कर सकते थे। श्रावस्ती के प्रसिद्ध श्रेष्ठि अनाथपिडिक[१] ने राजकुमार जेत से एक भूखण्ड बडी ऊँची कीमत पर खरीदकर बुद्ध प्रमुख भिक्षु–सघ को दान मे दिया। इस पूरी प्रक्रिया मे कही भी सम्बन्धित राज्य के शासक की आज्ञा प्राप्त नही की गई। बुद्ध काल मे सर्वाधिक ख्याति अर्जित करने वाले वैद्य जीवक ने एक आम्रवन का बौद्ध भिक्षुओ को दान किया था।[२] इसी प्रकार वैशाली की गणिका आम्रपाली ने भी अपना आम्रवन बुद्ध प्रमुख भिक्षु सघ को दान मे दिया था।[३] जिसमे भगवान् बुद्ध ने अपनी अन्तिम यात्रा विहार किया था।

अन्यत्र भी जातक कथाओ आदि मे भूमि के उपहार तथा दान मे दिये जाने का उल्लेख है।[४] कृषि–क्षेत्रो के मालिको के लिए खेत्तपत्ति, खेत्तसामिक एव वत्थुपति जैसे शब्दो के उल्लेख भी प्रमाणित करते है कि कृषक अपने खेतो के स्वामी थे।[५] कृषक अपने–अपने खेतो की सीमाये मेड, बाड आदि के द्वारा निर्धारित करते थे। मगध के इसी प्रकार के सीमाबद्ध खेतो का दृश्य भगवान् बुद्ध को बडा आकर्षण लगा था।[६] दीघ–निकाय के अग्गञ्ञ–सुत्त मे वैयक्तिक सम्पत्ति की विवेचना के प्रसग मे शालि (धान) की युक्त कृषि भूमि के बॅटवारे का सुन्दर वर्णन मिलता है।[७] ये साक्ष्य निजी भूस्वामित्व के सिद्धान्त को पुष्ट करते है। दूसरी ओर राजाओ द्वारा हमे ब्राह्मणो एव अन्य व्यक्तियो को भूमि एव पूरे–पूरे गॉव दान करने का उल्लेख प्राप्त होता है। कोसल–राज प्रसेनजित् ने चकि नामक ब्राह्मण को ओपसाद ग्राम का स्वामी बनाया था।[८] इसी प्रकार प्रसेनजित् ने पौष्कसाति को इच्छानगल गॉव दान स्वरूप दिया था।[९] मगध नरेश

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/३/१,

२ बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ २०३,

३ दीघ–निकाय २/३,

४ जातक सख्या ४५६,

५ मिश्र, श्याम मनोहर, प्राचीन भारत मे आर्थिक जीवन, पृष्ठ ७६,

६ विनयपिटक, महावग्ग, ८/४/१,

७ दीघ–निकाय, ३/४,

८ मज्झिम निकाय, हि० अ० पृ० ३६७,

९ दीघनिकाय, हि० अ०, पृष्ठ ३२,

बिम्बसार ने जनकीर्ण, तृण–काष्ठ–उदक–धान्य सम्पन्न, राजभोग्य–राजदाय एव ब्रह्मदेय खाणुमत गॉव कूटदन्त ब्राह्मण को दिया था।[1] विनय पिटक मे मगध नरेश बिम्बसार ८० हजार ग्रामो का स्वामी बताया गया है। इन उल्लेखो से स्पष्ट है कि यद्यपि राजा समस्त भूमि का स्वामी समझा जाता था परन्तु व्यवहारिक रूप से कृषको को अपनी भूमि पर पूरा अधिकार था। राजा केवल उससे वैधानिक कर लेने का अधिकारी था।[2]

आपदा-

कृषि कभी–कभी प्राकृतिक प्रकोप आदि का शिकार भी बन जाया करती थी। वर्षा न होने पर बडी विकट स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। तीन वर्ष तक सारे काशी राष्ट्र मे वर्षा न होने के कारण सारा राष्ट्र अग्नि–दग्ध सा हो गया।[3] इसी प्रकार कोशल देश मे पानी न बरसने से अकाल उत्पन्न हो गया।[4] खेतियॉ कुम्हला गई। जहॉ तहॉ स्थित तालाब, पुष्करणियॉ सूख गई। जेतवन पुष्करिणी का पानी भी सूख गया। कौए चील आदि (पक्षी) गहरे कीचड मे जाकर पडे हुए मछली, कछुओ को तीर की नोक जैसी अपनी तीखी चोच से मार मार कर ले जाकर चिल्लाते हुए खाने लगे। इस प्रकार पानी के अभाव मे खेती विनष्ट हो जाया करती थी।

बाढ से भी धन–जन की बहुत क्षति होती थी। प्रारम्भिक पालि–साहित्य मे बाढ के अनेकत्र उल्लेख प्राप्त हुए है।[5]

वर्षाकाल मे बीजो के बह जाने से अकाल हो गया। विभिन्न फसलो को रोगो से भी बडी क्षति पहुँचती थी। विनयपिटक मे कहा गया है "जैसे आनन्द! सम्पन्न (=तैयार) लहलहाते धान के खेत मे सेतट्ठिका (=सफेदा) नामक रोग–जाति पलती है – – – –ऐसी ही आनन्द सम्पन्न (तैयार) ऊँख के खेत मे माजेष्ठका (लालरोग) नामक रोग–जाति पलती है, जिससे यह ऊख का खेत चिर–स्थायी नही होता।[6]

---

१ दीघ–निकाय, १/५,

२ कैम्ब्रिज हिस्टरी प्रथम, पृ० १७६,

३ जातक सख्या २०४, वीरक जातक,

४ जातक, सख्या ७५, मच्छ जातक,

५ सयुत्त–निकाय, हि० अनु० पृष्ठ ५५

६ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १०/१/२
"सेय्यथापि, आनन्द, सम्पन्नें सालिक्खेते सेतट्ठिका नाम रोजजाति पितति, एव त सलिक्खेत न चिरट्ठितिक होती;———— सेय्यथापि आनन्द सम्पन्ने उच्छुखेत्ते मञ्जिठिका नाम रोगजाति निपतति, एव त सालिक्खेत न चिरटिठतिक होति,"

इसी प्रकार अगुत्तर–निकाय मे भी 'लहलहाते ईख के खेत को लाल रोग नामक रोग लग जाता है, तो ईख का खेत नष्ट हो जाता है' का उल्लेख है।[1]

दीघ निकाय मे वर्षा की बिजली के गिरने से दो भाई किसान और चार बैलो के मरने का विवरण है।[2] खेतो मे फसलो के बडे और तैयार होने पर पशुओ से उसकी रखवाली करनी होती थी। खेतो मे रखवाले रहते थे। सयुत्त–निकाय मे रखवाले द्वारा लाठी से बैल को पीटकर खेत से भगाने का उल्लेख है।[3] मज्झिम निकाय मे उल्लिखित है कि गोपालको को अपने पशुओ के प्रति सचेष्ट रहना पडता था। जब तक फसले रहती थी उस समय तक पशुओ को गॉवो से सुदूर ले जाकर जगलो के निकट चराया जाता था।[4]

फसल-

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य से हमे तत्कालीन उत्पादो की सूचना यत्र–तत्र बिखरी हुई परन्तु प्रभूत रूप से मिलती है। सबसे ज्यादा लोकप्रिय अनाज धान था[5] जिसके विभिन्न नामो एव किस्मो शालि,[6] तण्डुल, रक्तशालि,[7] गधशालि, व्रीहि आदि का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त जौ,[8] सावॉ,[9] टॉगुन[10], चीना[11] (=चीनक =चेना) गेहूँ, कोदो[12] आदि की भी खेती होती थी।

---

१ अगुत्तर–निकाय, हिन्दी अनुवाद, तृतीय भाग, पृष्ठ ३४६,

२ दीघ–निकाय, २/३/८
तेन खो पन समयेन देवे वस्सन्ते देवे गलगलायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया अविदूरे मुसागारस्स द्वे कस्सका भातरो हला चत्तारो च बलिबदा।

३ सयुत्त–निकाय, ४/३४/४/४

४ मज्झिम–निकाय, द्वेधावितक्क–सुतन्त, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ७५,

५ सीहचम्म जातक, जातक सख्या १८६, अनुसासिक जातक जातक सख्या ११५, काक जातक, जातक सख्या १४०,

६ महावेस्सन्तर जातक, सख्या ५४७,

७ असम्पदान जातक, सख्या १३१,

८ सीहचम्म जातक, सख्या १८६,

९ सुत्त–निपात २/२ पृष्ठ ६६

१० सुत्त–निपात २/२ पृष्ठ ६६

११ सुत्त–निपात २/२ पृष्ठ ६६

१२ मज्झिम निकाय, हि० अ० पृ० ५० दद्दुल कहा गया है।

दालो मे मूँग,[1] मटर,[2] उडद[3], मसूर[4], कुल्थी[5] आदि नाम प्राप्त होते है। दाल को यूस या सूप भी कहते थे। विभिन्न प्रकार की शाक–शब्जियो का भी उत्पादन होता था जैसे लौकी[6] कद्दू[7] साग[8], कटहल[9] आदि।

ईख की खेती भी बडे पैमाने पर की जाती थी।१० ईख के रस से बना गुड एक लोकप्रिय मीठा खाद्य था। अर्थशास्त्र मे गन्ने से बनने वाले पदार्थों मे राभ, गुड, गुडखाड, खाँड एव शक्कर का उल्लेख आया है।

---

१ अनुसासिक जातक, जातक सख्या ११५, सुत्त–निपात ३/१०,

२ कलायमुटिठ जातक, जातक सख्या १७६, सुत्त–निपात ३/१०,

३ विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/४ हि० अ० पृ० २५०

४ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७, इल्लीस जातक जातक सख्या ७८

५ पण्णिक जातक जातक सख्या १०२,

६ कुद्दाल जातक, जातक सख्या ७०,

७ कुद्दाल जातक, जातक सख्या ७०,

८ अम्ब जातक जातक सख्या १२४, महावेस्सन्तर जातक,

६ विनयपिटक, महावग्ग ६/६/६, महावेस्सन्तर जातक,

१० सयुत्त–निकाय १/७/२/३ हि० अ० पृ० १४०,
विनयपिटक, महावग्ग ६/६/६ हि० अ० २५१

मसालो की भी एक सूची बनायी जा सकती है। मिर्च,[1] पीपल[2], अदरख[3], राई[4], धनियॉ, हल्दी[5], सोठ, जीरा,[6] कपूर,[7] गुग्गल,[8] हीग[9] कालीमिर्च, केसर,[10] खस[11] आदि का उल्लेख मिलता है। तेल प्राप्त करने वाले पदार्थो मुख्यत तिल[12] एव सरसो[13] का प्रयोग होता था इसके अतिरिक्त अरण्डी,[14] अलसी[15] एव सम्भवत महुआ[16] से भी तेल प्राप्त किया जाता होगा।

फलो मे फल–सम्राट आम्र–फल का तत्कालीन जन–समुदाय शौकीन था। आम एव इसके वन का जगह–२ उल्लेख आता है।[17]

---

१ विनयपिटक महावग्ग, ६/१/६, कुम्भ जातक, जातक सख्या ५१२,

२ विनयपिटक, महावग्ग ६/१/६,

३ विनयपिटक महावग्ग ६/१/६, लोल जातक जातक सख्या २७४,

४ महावेस्सन्तर जातक,

५ विनयपिटक, महावग्ग ६/२/१ हि० अ० पृष्ठ २१६, महावेस्सन्तर जातक, सयुत्त निकाय ५/४४/६/६ द्वि अ० पृ० ६७४,

६ लोल जातक, जातक सख्या २७४,

७ महावेस्सन्तर जातक

८ महावेस्सन्तर जातक

६ विनयपिटक, महावग्ग, ६/१/७ द्वि० अ० पृष्ठ २१७,

१० छद्दन्त जातक, जातक सख्या ५१४,

११ विनयपिटक, महावग्ग ६/१/३

१२ विनयपिटक, महावग्ग ६/३/११, सुत्तनिपात ३/१०,

१३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ६/१/६,

१४ कुण्डकपूव जातक, जातक सख्या १०१

१५ दीघ निकाय, ३/७, द्वि० अ० पृ० २६४,

१६ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७,
विनयपिटक, महावग्ग ६/६/६,

१७ अम्ब जातक, जातक सख्या १२४, दधिवाहन जातक जातक सख्या १८६, फल जातक, जातक सख्या ५४, विनयपिटक, महावग्ग ६/६/६, महावेस्सन्तर जातक।

अन्य फलो मे कैथा,[1] महुँआ,[2] ऑवला,[3] खजूर,[4] फाल्सा,[5] नीबू,[6] अगूर,[7] नारियल,[8] इमली,[9] जामुन,[10] केला,[11] बैर,[12] बेल,[13] पेठा,[14] तरबूज, ककडी करौदा, अनार, सिघाडा[15] आदि खाये जाते थे।

---

१ महावेस्सन्तर जातक, सख्या ५४७,

२ विनयपिटक महावग्ग, ६/६/६ महावेस्सन्तर जातक,

३ कुम्भ जातक, जातक सख्या ५१२, सुत्त निपात ३/१० पृष्ठ १७५, विनयपिटक ६/१/६, महावेस्सन्तर जातक,

४ महावेस्सन्तर जातक

५ विनयपिटक, महावग्ग ६/६/६ हि० अ० पृ० २५१,

६ कुक्कु जातक जातक सख्या ३६६,

७ वालोदक जातक, सख्या १८३, महावेस्सन्तर जातक, विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/६ हि० अ० २५१,

८ महावेस्सन्तर जातक

९ छद्दन्त जातक, जातक सख्या ५१४,

१० विनयपिटक ६/६/६,

११ सयुत्त निकाय १/३/२ हि० अ० पृष्ठ ६६

१२ सुत्त–निपात ३/१०

१३ सुत्त–निपात ३/१०

१४ छद्दन्त जातक, जातक संख्या ५१४,

१५ महावेस्सान्तर जातक, जातक सख्या ५४७,

इसके अतिरिक्त प्याज, लहसुन,[1] ताम्बूल, मूँगफली, भाँग, बाँस,[2] नील,[3] मँजीठ,[4] नीम,[5] सुपारी,[6] खैर,[7] हर्रे,[8] वहेडा,[9] केसर,[10] लाह,[11] भी तत्कालीन उत्पाद थे।

कपास की खेती भी बडे पैमाने पर की जाती थी। तुण्डिल जातक मे हमे वाराणसी के आसपास कपास के खेतो का वर्णन मिलता है। महाजनक जातक मे कपास के खेत की रखवाली करने वाली स्त्रियो का उल्लेख है।

बागवानी-

खेती का एक रूप बागवानी भी था। पालि ग्रन्थो मे विभिन्न प्रकार के वनो एव उद्यानो का वर्णन आया है। ये उद्यान अथवा आराम वस्तियो के प्राय सटे बाहर होते थे। आम्रवन, जम्बूवन, सिसापवन, शालवन, वेणुवन, कदलीवन, मधूकवन जैसे उद्यानो और आरामो के उल्लेख प्राप्त होते है। इनकी रखवाली के लिए जो व्यक्ति नियुक्त होते थे, उन्हे अम्बपालक, जम्बूपालक, वनपालक एव आरामपालक की सज्ञा से विभूषित किया जाता था।[12] स्पष्ट है कि बाग-बगीचे की रखवाली पर बडा ध्यान दिया जाता था। विभिन्न प्रकार के फल देने वाले वृक्षो के अतिरिक्त किसुक, पाटलि, कदम्ब, सिरिस, जयसुमन जूही, कर्ण्णिकार, ताल और केतक जैसे फूलदारवृक्षो को भी लगाया जाता था। इसके अतिरिक्त कुसुम्भर, लाख और कपूर की भी खेती होती थी। इन सब फूलो, गन्धो, गोद तथा रगो को बेचकर जीविका के साधनो को जुटाया जाता था।[13] पुष्प मालाओ की समाज मे काफी माँग थी। पूज्य व्यक्तियो की पूजा–अर्चना मे तथा सौन्दर्य वृद्धि के लिए बडे पैमाने पर इसका प्रयोग होता था।

---

१ महावेस्सन्तर जातक, विनयपिटक हि० अ० पृष्ठ ५२,
२ अगुत्तर–निकाय हि० अ० द्वितीय भाग, पृष्ठ ७५,
३ सयुत्त–निकाय ५/४४/६/६
४ सयुत्त–निकाय ५/४४/६/६
५ दधिवाहन जातक, जातक सख्या १८६,
६ छद्दन्त जातक, जातक सख्या ५१४,
७ सयुत्त–निकाय ५/५४/४/१, महावेस्सन्तर जातक,
८ विनयपिटक, हि० अ० पृष्ठ २१७, महावग्ग ६/१/६
९ विनयपिटक, महावग्ग, ६/१/६,
१० छद्दन्त जातक, जातक सख्या ५१४,
११ सयुत्त–निकाय ५/४४/६/६ हि० अ० पृष्ठ ६७४,
१२ प्रभा त्रिपाठी, पूर्वोत्तर भारत, पृष्ठ २७८,
१३ जातक, फॉसबॉल सस्करण, जि० १, पृ० १४९, ३१३,
जि० २, पृ० १०५–१०६, जि० ३, पृ० १८३,
जि० ४, पृ० ९२, २५६, जि० ५, पृ० ३७–३८,
जि० ६ पृ० ५५, ५३०, ५३९,

पशुपालन

पशुपालन विश्व का प्राचीनतम व्यवसाय है। लिखित इतिहास के बहुत पहले से ही विविध कोटि के पशुओ को पालतू बनाने की प्रक्रिया शुरू हुई। पहले भोजन और वस्त्र के लिए पशुओ का अनियत्रित शिकार किया जाता था। सम्भवत नवपाषाण काल मे कृषि के साथ–साथ पशुपालन भी आरम्भ हुआ। एक साथ दो साधनो के विकास के फलस्वरूप मानव को जीविका का सुनिश्चित आधार प्राप्त हुआ, ऐसा पुराविदो का मत है। महात्मा बुद्ध के समय तक जनसामान्य के साथ राज्य के लिए भी पशुओ की महती उपयोगिता स्पष्ट हो गयी थी। परन्तु अब भी यज्ञ, मॉस आदि के लिए बडे पैमाने पर उनकी हत्या की जाती थी। यज्ञो मे सैकडो निर्दोष पशु देवताओ की बलि के रूप मे भेट चढा दिये जाते थे। इसलिए महात्मा बुद्ध ने ऐसे यज्ञो का स्थान–स्थान पर विरोध किया। कूटदन्त ब्राह्मण ने महायज्ञ का आयोजन किया। सात सौ बैल, सात सौ बछडे, सात सौ बछडियॉ, सात सौ बकरियॉ, सात सौ भेडे यज्ञ के लिए स्थूल (=खम्भा) पर लाये गये थे।[1] परन्तु महात्मा बुद्ध ने 'ऐसे यज्ञ जिसमे गाये नही मारी गई, बकरी, भेडे नही मारी गई, मुर्गे सुअर नहीं मारे गये, न नाना प्रकार के प्राणी मारे गये। न यूप (=यज्ञ स्तम्भ) के लिए वृक्ष काटे गये। न पर–हिसा के लिए दर्भ (=कुश) काटे गये। जो भी

---

१ दीघ–निकाय कुटदन्त–सुत्त १/५

तेन खो पन समयेन कूटदन्तस्स ब्राह्मणस्य महायञ्जो उपक्खटो होति। सत च उसमसतानि, बच्छतरसतानि सत्त च बच्छतरीसतानि, सत्त च अजसतानि, सत्त च उरटभसतानि घूणूजीतानि होन्ति यञअत्याय।

उसके दास, प्रेष्य (=नौकर), कर्मकार थे, उन्होने भी दण्ड–तर्जित, अश्रुमुख, रोते हुए सेवा नही की। – – – घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाड (=फाणित) से वह यज्ञ समाप्ति को प्राप्त हुआ।[1] इस प्रकार के यज्ञ का अनुमोदन किया। भगवान बुद्ध द्वारा समझाये जाने पर कूटदन्त ब्राह्मण कहता है, है गौतम यहॉ मै सात सौ बैलो, सात सौ बछडो, सात सौ बकरो, सात सौ भेडो को छोडवा देता हूॅ, जीवन–दान देता हूॅ , (वह) हरी घासे चरे, ठन्डा पानी पीवे, ठडी हवा उनके (लिए) चले।'[2] इसी प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे स्थान–स्थान पर पशु–वध का पुरजोर विरोध किया गया है। इसी प्रकार कोशलराज प्रसेनजित् की ओर से एक महायज्ञ होने वाला था। पॉच सौ बैल, पॉच सौ बछडे, पॉच सौ बछडियॉ पॉच सौ भेड सभी यज्ञ के लिए थूण मे बॅधे थे। ये देखकर भगवान बुद्ध ने कहा–

अश्वमेध, पुरुषमेध, सम्यक पाश, वाजपेय,
निरर्गल और ऐसी ही बडी–बडी करामाते,
सभी का अच्छा फल नही होता है।

भेड,बकरे और गौवे तरह–तरह के जहॉ मारे जाते है,
सुकर्म पर आरूढ महर्षि लोग ऐसे यज्ञ नही बताते।[3]

---

१ दीघ–निकाय, कुटदन्त सुत्त, हि० अनु० पृष्ठ ५३, १/५

२ दीघ–निकाय, १/५/२,
"एसाह, मो गोतम, सत्त च उसभसतानि सत्त च वच्छतरसतानि सत्त च वच्छतरीसतानि सत्त च अजसतानि सत्त च उरब्भसतानि मुञ्चामि, जीवित देभि। हरितानि चेव तिणानि खादन्तु, सीतानि च पानीयनि पिबन्तु, सीतो च नेस वातो उपवायतू।"

३ सयुत्त–निकाय, यञ्ञ सुत्त, १/३/१/६,
तेन खो पन समयेन रञ्जो पसेनदिस्स कोसलस्स महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो होति, पञ्च च उसभतानि पञ्च च वच्छतरसतानि पञ्च च वचछतरिसतानि पञ्च च अजसतानि पञ्च च उरब्भसतानि घूणूपनीतानि होन्ति अञ्ञत्थाय।
अस्समेध पुरिसमेध सम्मापास वाजपेय्य।
निग्गल महारब्भा, न ते होन्ति महाप्फला।।

भारत मे वर्ण व्यवस्था के प्रारम्भ के साथ कृषि कार्य मुख्यत वैश्यो से ही सम्बन्धित रखा गया था। परन्तु इस सम्बन्ध मे किसी कठोर नियम का पालन नही किया जाता था। अन्य सभी वर्णों के लोग भी पशुपालन करते थे। धूमकरी नामक ब्राह्मण बकरियो का एक बडा रेवड ले, जगल मे उन्हे एक जगह रख — — — — — बकरियो को पालता हुआ तथा दूधादि खाता हुआ रहता था।[१] धम्मपद के चीनी सस्करण की सूचनानुसार गृद्धकूटपर्वत की ढलान पर स्थित सत्तर ब्राह्मणो का परिवार अपनी जीविका हेतु पशुपालन का कार्य करता था। राज दरबार द्वारा बडी सख्या मे पशुओ का पालन किया जाता था। राज्य की ओर से पालने वाले पशुओ मे हाथी, घोडे महत्वपूर्ण स्थान रखते थे परन्तु इसके साथ गाय—बकरी आदि का भी पालन होता था। लोसक जातक मे राजा द्वारा बकरी पाले जाने का उल्लेख मिलता है।[२] राजा अपनी कोष—वृद्धि के लिए पशुपालन और पशुओ के वैज्ञानिक प्रजनन पर बल देता था।[३] सेट्ठि लोग व्यापार के अतिरिक्त अपने पास पशु समूह को भी पालते थे।[४]

विवेच्यकालावधि के साक्ष्यो मे पशुओ के विषय मे प्राप्य विवरण निम्नवत् है—

गाय-

गाय का पशुओ मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और घी से मण्ड आदि पौष्टिक पदार्थ प्राप्त होता था।[५] देश मे पच गोरसो की कमी नही थी।[६] गाय के दूध से अनेक औषधियो का निर्माण होता था। गाय का गोबर भी पवित्र माना जाता था। वह घर की फर्श एव दीवारो को लिपने—पोतने के काम आता था। गाय की चर्बी एव खाल के भी विविध प्रयोग थे। क्रय—विक्रय की मानक वस्तु के रूप मे

---

१ धूमकारी जातक, सख्या ४१३,

२ लोसक जातक

३ जातक, फॉसबॉल, जिल्द १, पृ० २४०,

४ जातक, जिल्द ४, पृ० ३३२,

५ विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/३, सयुत्त—निकाय ३/३३/१, दीघ—निकाय १/६/३/४,

६ भरतसिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ५१४,

भी गाय का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के मत्र मे कहा गया है "मेरी यह इन्द्र की प्रतिमा को दस गायो मे कौन खरीदेगा" गाय को बौद्ध साहित्य मे जगह–जगह अघन्य कहा गया है "ब्राह्मणो द्वारा समझाये जाने पर रथपति राजा ने यज्ञ मे लाखो गौवो का वध किया। जो गौवे न पैर से, न सीग से और न किसी अग से हिसा करती है, जो भेड के समान सीधी है और घडे भर दूध देने वाली है, उन्हे सीगो से पकड कर राजा ने शस्त्र से मार।[१]" गाये हमारे लिए परम आदरणीय है "जैसे माता–पिता, भाई या अन्य भाई–बन्धु है, वैसे ही गौवे हमारी परम मित्र है जिनसे कि औषधियॉ उत्पन्न होती है। ये अन्न, बल, वर्ण (=रूप) तथा सुख देने वाली है।"[२] सुत्तनिपात के धनियसुत्त से यह प्रतीत होता है कि, अच्छी नस्ल के पशुओ को तैयार करने के लिए अच्छे सॉडो को भी रखा जाता था।

बैल-

कृषि सम्बन्धी विवेचन मे हम देख चुके है कि हल को चलाने के लिए बैलो का प्रयोग किया जाता था। बौद्ध साहित्य मे जगह–जगह हल खीचते बैलो का दृश्य दिखाई देता है। कृषि कर्म के लिए बैलो की आवश्यकता थी। गामणीचण्ड नामक राजा के सेवक ने जब कृषिकर्म करने की ठानी तो बैलो के न होने के कारण उसने अपने मित्र से दो बैल मॉगे।[३] सयुत्त निकाय मे प्राणियो मे बैल को मनुष्य के कार्य मे सहायक कहा गया है। हल चलाने के अतिरिक्त बोझा ढोने मे भी बैलो का प्रयोग होता था।

---

१ ततो च राजा सञ्चतो, ब्राह्मणेहि रथेसभो।
नेकसतसहस्सियो गावो, यञ्जे अघातीय
न पाढा न विसाणेन, नास्सु हिसन्ति केनचि।
गावो एलकसमाना, सोरता कुम्भदूहना
ता विसाणे महेत्वान, राजा सत्थेन घातयि।
सुत्त–निपात, २/७

२ यथा माता–पिता भ्राता, अञ्जे वापि च आतका
वावो नो परमा मित्ता, यासु जायन्ति ओमधा
अन्नदा बलढा चेता वण्णढा सुखढा तथा
एतमत्थवस अत्वा, नास्सु गावो हनिसु ते।
सुत्त–निपात, २/७

३ जातक, गामणीचण्ड जातक २५७

भी गाय का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के मत्र मे कहा गया है "मेरी यह इन्द्र की प्रतिमा को दस गायो मे कौन खरीदेगा" गाय को बौद्ध साहित्य मे जगह–जगह अघन्य कहा गया है "ब्राह्मणो द्वारा समझाये जाने पर रथपति राजा ने यज्ञ मे लाखो गौवो का वध किया। जो गौवे न पैर से, न सीग से और न किसी अग से हिसा करती है, जो भेड के समान सीधी है और घडे भर दूध देने वाली है, उन्हे सीगो से पकड कर राजा ने शस्त्र से मार।[१]" गाये हमारे लिए परम आदरणीय है "जैसे माता–पिता, भाई या अन्य भाई–बन्धु है, वैसे ही गौवे हमारी परम मित्र है जिनसे कि औषधियॉ उत्पन्न होती है। ये अन्न, बल, वर्ण (=रूप) तथा सुख देने वाली है।"[२] सुत्तनिपात के धनियसुत्त से यह प्रतीत होता है कि, अच्छी नस्ल के पशुओ को तैयार करने के लिए अच्छे सॉडो को भी रखा जाता था।

बैल-

कृषि सम्बन्धी विवेचन मे हम देख चुके है कि हल को चलाने के लिए बैलो का प्रयोग किया जाता था। बौद्ध साहित्य मे जगह–जगह हल खीचते बैलो का दृश्य दिखाई देता है। कृषि कर्म के लिए बैलो की आवश्यकता थी। गामणीचण्ड नामक राजा के सेवक ने जब कृषिकर्म करने की ठानी तो बैलो के न होने के कारण उसने अपने मित्र से दो बैल मॉगे।[३] सयुत्त निकाय मे प्राणियो मे बैल को मनुष्य के कार्य मे सहायक कहा गया है। हल चलाने के अतिरिक्त बोझा ढोने मे भी बैलो का प्रयोग होता था।

---

१ ततो च राजा सञ्चतो, ब्राह्मणेहि रथेसभो।
नेकसतसहस्सियो गावो, यञ्जे अघातीय
न पाढा न विसाणेन, नास्सु हिसन्ति केनचि।
गावो एलकसमाना, सोरता कुम्भदूहना
ता विसाणे महेत्वान, राजा सत्थेन घातयि।
सुत्त–निपात, २/७

२ यथा माता–पिता भ्राता, अञ्जे वापि च आतका
वावो नो परमा मित्ता, यासु जायन्ति ओमधा
अन्नदा बलढा चेता वण्णढा सुखढा तथा
एतमत्थवस अत्वा, नास्सु गावो हनिसु ते।
सुत्त–निपात, २/७

३ जातक, गामणीचण्ड जातक २५७

कृषि के साथ–साथ व्यापार मे भी बैलो की उपयोगिता कम नही थी। हम पूरे बौद्ध साहित्य मे व्यापार हेतु व्यापारियो की पॉच सौ गाडियो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हुए पाते है। इन गाडियो को खीचने के लिए प्राय बैलो का ही उपयोग किया जाता था। असकिय जातक मे बैलगाडियो के साथ यात्रा करने का उल्लेख है[१] इसी प्रकार अनुसासिक जातक मे भी राजमार्ग पर जाने वाली बैलगाडियो का उल्लेख है।[२] बैलो का चर्म भी विविध रूप मे उपयोगी थी। मज्झिम निकाय मे बैल के चमडे के बिछौने का प्रसग आया है।[३]

घोडा-

घोडा का प्रयोग मुख्यत रथ खीचने के लिए, पीठ पर सवारी के लिए एव युद्ध मे होता था। श्रेष्ठ घोडे से युक्त रथ की सवारी बडे शान की बात होती थी।

राजदरबार द्वारा बडी सख्या मे घोडे पाले जाते थे। घोडे के लिए अलग चरवाहा होते थे।[४] जो उनकी सेवा किया करते थे।

उत्तरापथ के घोडे अच्छे मोने जाते थे[५] उत्तरापथ जनपद के पॉच सौ घोडो को व्यापारी द्वारा वाराणसी लाकर वाराणसी मे बेचने का उल्लेख प्राप्त होता है।[६]

युद्ध के लिए भी घोडे बडे उपयोगी थे।[७]

---

१ असकिय जातक

२ जातक, सख्या ११५, अनुसासिक जातक,

३ मज्झिम–निकाय, महासीहनाद सुत्त, १/२/२, हि० अ० पृष्ठ ४८

४ जातक, सख्या २५५,

५ वालोदक जातक, सख्या १८३,

६ सुहनु जातक सख्या १५८, कुण्डककुच्छि सिन्धव जातक सख्या २५४,

७ जातक सख्या ५०६, चम्पेय्य जातक,

रथ मे जोतने के अतिरिक्त घोडे के पीठ पर सवारी करने की बात भी ज्ञात होती है।[1] अगुत्तर निकाय मे उल्लेख है कि घोडो को भलीभॉति प्रशिक्षण दिया जाता था।[2]

इसके अतिरिक्त घोडे बोझा ढोने के भी काम आते थे।[3]

हाथी-

हाथियो का उपयोग सवारी एव युद्ध के लिए होता था। इसके अतिरिक्त हाथी दॉत एक कीमती वस्तु थी। दीघनिकाय मे राजा अजातशत्रु द्वारा पॉच हाथियो के समूह के साथ नगर के बाहर जाने का उल्लेख मिलता है।[4] हाथियो को राजकीय सरक्षण प्राप्त होता था।[5] अगुत्तर–निकाय मे राजकीय हाथी के गुणो का विस्तार से वर्णन है।[6]

युद्ध मे इन हाथियो की बडी उपयोगिता थी।[7] कौटिल्य ने हाथियो को राजा की विजय का एक प्रमुख साधन माना है।

हाथी का उपहार बहुत मूल्यवान समझा जाता था। सेल्यूकस से सन्धि के उपरान्त चन्द्रगुप्त मौर्य ने उसे ५०० हाथी दिए थे।

हाथी के साथ–साथ उसका दॉत भी मूल्यवान था। जिससे चूडी आदि विभिन्न वस्तुओ का निर्माण दन्तकार करते थे।[8]

हाथियो के प्रशिक्षण का एक अलग शिल्प था। बौद्ध साहित्य मे स्थान–स्थान पर हस्ति–शिल्प एव हस्ति शिक्षको का उल्लेख आया है।[9]

---

१ रूहक जातक, सख्या १६१, महाअस्सारोह जातक, सख्या ३०२,

२ अगुत्तर–निकाय, द्वितीय पृष्ठ ३६३,

३ अनुसासिक जातक, सख्या ११५,

४ दीघ–निकाय, सामञ्अफल सुत्त १/२

५ जातक सख्या १८२,

६ अगुत्तर–निकाय, द्वितीय, पृष्ठ ३६३,

७ सङ्गामावचर जातक, सख्या १८२,

८ कासाव जातक, सख्या २२१

९ जातक, सख्या १८२, उपाहन जातक सख्या २३१,

भेड-

भेड अपने बालो के लिए विशेष रूप से उपयोगी थी। भेड के बाल से ऊन तैयार किया जाता था। अष्टाध्यायी मे भेड के बाल से बने कम्बल का उल्लेख है। विनयपिटक मे भेड के ऊन के बने आसन एव कम्बल का प्रसग आया है।[१] अन्यत्र भी इससे बने ऊनी वस्त्रो का उल्लेख मिलता है।

भेडो के चारवाहो का भी उल्लेख मिलता है।[२] भेड का मॉस खाया भी जाता था।

इन उपर्युक्त पशुओ के अतिरिक्त जिन पशुओ के पालन का उल्लेख मिलता है उनमे गधे, बकरी, ऊँट, कुत्ते एव सुअर आते है। बोझा ढोने के लिए गधा रखा जाता था। जातक मे एक राजा द्वारा पॉच सौ गधो के समूह को पाले जाने का उल्लेख मिलता है। बनिये द्वारा गधे पर बोझ लाद कर समान बेचते हुए घूमने का भी उल्लेख मिलता है।[३]

भारवाही पशुओ मे ऊँट भी महत्वपूर्ण था। जैन आगमो से ऊँट द्वारा माल ढोने की बात स्पष्ट होती है।[४]

पालतू पशुओ मे कुत्तो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। जब राजा शिकार करने निकलता था तो कुत्ते उस कार्य मे इसकी सहायता करते थे।[५] कुक्कर जातक से स्पष्ट है सुरक्षा के लिए राजपरिवारो मे भारी सख्या मे कुत्ते पाले जाते थे।[६]

---

१ विनयपिटक, हि० अ० पृष्ठ १६,

२ जातक सख्या ४२६, दीपि जातक,

३ जातक सख्या, १८६ सीहचम्म जातक

४ जैन जगदीश चन्द्र, जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ० १८०

५ जातक सख्या ५०४, भल्वाटिक जातक,

६ कुक्कर जातक;

बकरी की भी बडी ही उपयोगिता थी। धूमकरी जातक से ज्ञात होता है कि लोग उसके दूध पर जीवन यापन करते थे।[1]

सुअर पालन भी प्रचलित था। इसके बाल, मॉस, और चर्म की उपयोगिता थी, दीघ निकाय से स्पष्ट है कि इसके पालक इसको चराने के लिए एक गॉव से दूसरे गॉव जाया करते थे।[2] इसी ग्रन्थ मे वर्णन आया है कि चुन्द कर्मार पुत्र ने सुअर से तैयार व्यजन से महात्मा बुद्ध सहित भिक्षु सघ को भोजन कराया था।[3]

पशुओ को चराने वाले चारवाहे या गोपालक कहे जाते थे। विशाल पशु–समूह को एक स्थान पर बॉधकर नही खिलाया जा सकता था बल्कि उन्हे घूम–घूम कर चराया जाता था। पशुपालको द्वारा अपने–अपने पशुओ को लेकर प्राय जगल मे जाने का उल्लेख मिलता है।[4]

कृषि विस्तार के कारण गॉव की गोचर भूमि मे चराना बहुत सुगम नही रह गया था। यही कारण है कि चारवाहे मुक्त–विचरण के लिए वनो की ओर जाते दिखाई देते है।

गोपालक हाथ मे डडे के सहारे पशु–समूह को एकत्र करता था। धम्मपद के दण्डवग्ग मे कहा गया है जैसे ग्वाला लाठी से गायो को चरागाह ले जाता है, वैसे ही बुढापा और मृत्यु प्राणियो की आयु को ले जाती है।[5] नन्द ग्वाला भगवान बुद्ध की शरण मे जाना चाहता था। परन्तु ससारिक दायित्व एव शिष्टचार का ज्ञान रखने वाले भगवान् बुद्ध ने उससे कहा–

"नन्द! तो तुम अपने मालिक की गाये लौटा आओ।

भन्ते! अपने बच्चो के प्रेम मे गाये लौट जायेगी।

---

१ धूमकरी जातक, सख्या ४१३,

२ दीघ–निकाय, पायासिराजञ्ञ–सुत्त, २/१०/हि० अनु० पृष्ठ २०८,

३ दीघ–निकाय, २/३ हि० अ० पृष्ठ १३६,

अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीत खादनीय भोजनीय पटियादापेत्वा पहूत च सूकरमद्दव भगवतो काल आरोचापेसि– " कालो, भन्ते, निटिठत भन्त" ति।

४ जातक सख्या ४१३, जातक सख्या ३४६ सन्धिभेद जातक,

५ धम्मपद, दडवग्गो,

यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचर।

एव रजा च मचू च आय पाचेन्ति पाणिन।

नन्द! तुम अपने मालिक को गाये लौटाकर ही आओ।"

जब नन्द ग्वाला अपने मालिक को गाये लौटा कर आया, तभी भगवान् बुद्ध ने उसे अपनी शरण मे लिया।[1]

सन्धिभेद जातक मे एक ग्वाले द्वारा गाभिन गौ को जगल मे भूल जाने का उल्लेख मिलता है।[2] जैन सूत्रो के अनुसार किसी–किसी गृहस्थ के पास भिन्न–भिन्न जाति की गाये रहती थी। यह सख्या इतनी अधिक थी कि गाये दूसरी जाति की गायो मे मिल जाती थी और ग्वाले उनके लिए आपस मे लडते झगडते रहते थे। इस विवाद के निपटारे के लिए गृहस्थ विभिन्न रगो वाली गायो को अलग–अलग ग्वालो के आधीन रखने लगे।

चतुर गोपालक अपने पशु–समुदाय को कुशलता पूर्वक नदी पार कराने की कला मे पारगत होता था। यह बात मज्झिम–निकाय के चूल–गोपालक सुतन्त मे मिलती है।[3]

"भिक्षुओ! पूर्वकाल मे मगध के रहनेवाले एक मूर्ख गोपालक ने वर्षा के अन्तिम मास मे शरदकाल मे, गगा नदी के इस पार बिना सोचे, उस पार को बिना सोचे बेघाट ही विदेह (देश) की ओर दूसरे तीर को गाये हॉक दी। तब भिक्षुओ! वह गाये गगा नदी के स्रोत के भॅवर पडकर विनाश को प्राप्त हो गई। – – – –पूर्वकाल मे एक मगधवासी बुद्धिमान ग्वाले ने वर्षा के अन्तिम मास मे शरद काल मे गगा नदी के उस पार को सोचकर घाट से उत्तर से उत्तर तीर पर विदेह की ओर गाये हॉकी। उसने जो वह गायो के पितर, गायो के नायक वृषभ (=सॉड) थे उन्हे पहिले हॉका०। वह गगा की धार को तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक दूसरे पर चले गये। तब उसने दूसरी बलवान शिक्षित गायो को हॉका०। फिर बछडे और बछियो को हॉका०। फिर दुर्बल बछडो को०। भिक्षुओ! उस समय तरुण कुछ ही दिनो का पैदा एक बछडा भी माता की गर्दन के सहारे तैरते गगा की धार को तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक पार चला गया।"

---

१. सयुत्त निकाय ४/३४/४/४/४

२ सन्धिभेद जातक;

३ मज्झिम–निकाय, चूल–गोपालक सुतन्त,

खेतों में फसलों के बड़े और तैयार होने पर गोपालकों को अपने पशुओं के प्रति विशेष सचेष्ट रहना पड़ता था। जब तक खेत में फसले रहती थी उस समय तक पशुओं को गाँवों से सुदूर ले जाकर जंगलों में चराया करते थे।[1] एक जातक कथा में उल्लिखित है कि एक ग्वाला घनी खेती के दिनों में गौओं को ले, अरण्य में जा, वहाँ मचान बनाकर, गौओं की रखवाली करते हुए रहने लगा। लापरवाही होने पर पशुओं द्वारा फसलें नष्ट कर दी जाती थी। फसलों की कटाई के बाद जब गाँव से समीप की भूमि फसल रहित हो जाती थी तब सभी पशुओं को गाँवों के समीप ही चराया जाता था।[2]

कभी–कभी चारवाहों की अचैतन्यता से पशु–समूह आपस में लड़ भी जाते थे। गड़ेरिये की लापरवाही के कारण गोचर–भूमि में भेड़े लड़ने लगी।[3]

मज्झिम निकाय में गोपालकों के ११ गुणों का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है जिससे स्पष्ट होता है गोपालक बड़ा चतुर एवं जागरूक होता था तथा पशु सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी निभाता था। "भिक्षुओं! ग्यारह बातों (=अंगों) से युक्त गोपालक गोयूथ की रक्षा के अयोग्य है कौन से ग्यारह?"

(१) गोपालक रूप (=वर्ण) का जानने वाला नहीं होता;

(२) लक्षण (चिन्ह) में भी चतुर नहीं होता;

(३) काली मक्खियों को हटाने वाला नहीं होता;

(४) घाव का ढॉकनेवाला नहीं होता;

(५) धुआँ नहीं करता;

(६) तीर्थ (=जल का उतार) नहीं जानता;

---

१. मज्झिम–निकाय, द्वेधावितक्क–सुत्तन्त, हिन्दी अ० पृष्ठ–७५;

२. वही, पृष्ठ ७६;

३. जातक संख्या ४८१, तक्कारिय जातक;

(७) पान को नही जानता,

(८) वीथी (=डगर) को नही जानता,

(९) चारागाह का जानकार नही होता,

(१०) बिना छोडे (सारे) दूध को दूह लेता है,

(११) जो वह गायो के पितर गायो के स्वामी वृषभ (=सॉड) है उनकी अधिक पूजा (=भोजनादि प्रदान) नही करता।

स्पष्ट है कि उन ग्याहर बातो से युक्त पशुपालक पशु—समूह की रक्षा कर सकता है।

अर्थशास्त्र मे गोऽध्यक्ष नामक अध्याय मे पशु हित मे कौटिल्य ने विस्तृत निर्देश दिये है 'गोपालको को चाहिए कि वे बछडो, बीमार और बूढे पशुओ की उचित परिचर्या करे। गोपालको को चाहिए कि वे शिकारियो, बहेलियो, चोरो, हिसको और शत्रु की बाधाओ आदि से सावधान रह कर ऋतु के अनुसार सुरक्षित जगलो मे गायो को चराये। सर्प एव हिसक पशुओ को डराने के लिए, चारागाह मे गाय की पहिचान के लिए और घबडाने वाले पशुओ की गर्दन मे लोहे की घटी बॉध देनी चाहिए। पशुओ को पानी पिलाने एव नहलाने के लिए ऐसे स्थान मे उतारना चाहिए, जहॉ चौरस घाट बने हो और दलदल एव हिसक जलचर जन्तु दोनो न हो, गोपालक पूरी सावधानी से उनकी रक्षा करता रहे। गोपालको का कर्तव्य है कि वे चोर, व्याघ्र, सॉप एव नाक्व आदि से आक्रान्त और बीमारी तथा बुढापे से मरे हुए पशुओ की सूचना अध्यक्ष को दे, अन्यथा मृतपशु के नुकसान का दायित्व उन पर समझा जायेगा।'[2]

---

१ मज्झिम—निकाय, महा—गोपालक—सुत्तन्त १/४/३
"एकादसहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समज्नागतो गोपालको अभब्बो गोगण परिहरितु काति कातु। कतमेहि एकादसहि? दूध भिक्खवे, गोपालको न रूपञ्ञू होति, न लक्खणकुसलो होति, न आसाटिक होरेता होति, न वण पटिच्छादेता होति, न घूम कत्ता होति, न तित्थ जानाति, न पीत जानाति, न वीथि जानाति, न गोचरकुसलो होति अनवसेसदोही च होति, ये ते उसमा गोपितरो गोपरिणायका ते न अतिरेक—पूजाय पूजेता होति।"

२ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला प्रकारण ४५, अध्याय २९

विदेह राज्य स्थित पर्वतराष्ट्र के धर्म कौण्डिन्य नगर के धनिय नामक ग्वाला अपने व्यवसाय से पूर्ण रूपेण सन्तुष्ट था। वह पशु–समूह सहित अपने परिवार एव सश्रम जीवन का बडा मनोरम वर्णन करता है। "डॅस यहॉ नही है, कछार मे उगी हुई घासो को गौवे चरती है, – – – – मेरी ग्वालिन आज्ञाकारिणी और चचलता रहित है, – – – मै स्वय कमाकर खाता हूॅ मेरे पुत्र भी अनुकूल और नीरोग है, – – – – मेरे पास बछडे है, दुधारू गाये है, गाभिन और तरुण गाये भी है, गायो का पति सॉड भी है – – – – अचल खूॅटे गडे है, मूॅज की नई बनाई गई रस्सियॉ है, उन्हे तरुण बछडे भी नही तोड सकते है।"[1] इस प्रसग से यह भी स्पष्ट है अच्छी नस्ल के बछडे पैदा हो इसके लिए ग्वाले सॉड भी पालते थे।

कही–कही बडी सख्या मे पशु–सम्पत्ति के मालिको का भी उल्लेख मिलता है। जिनके पास ढेरो ग्वाले एव दुधारू पशु रहते थे। मेडक गृहपति ने भिक्षु–सघ सहित भगवान् बुद्ध को भोजन के लिए निमन्त्रित किया। तब मेडक गृहपति ने दासो एव कर्मकरो को आज्ञा दी "तो भणे! बहुत सा लोन, तेल, मधु, तडुल और खाद्य गाडियो पर लादकर आओ। साढे बारह सौ ग्वाले भी, साढे बारह सौ धेनु (=दूध देनेवाली) गायो को लेकर आवे जहॉ हम भगवान् को देखेगे, वहॉ गर्मधारवाले दूध के साथ भोजन करायेगे।"[2]

. १ सुत्त–निपात धनियसुत्त १/२

अधकमकसा न विज्जरे (इति धनियो गोयो), बच्छे सल्ततिणे चरन्ति गावो।– – – –

गोपी मम अस्सवा अलोला (इति धनियो गोपो), दीघरत्त सवासिया मनापा। – – – –

अत्तवेतनमतो हमस्नि (इति धनियो गोपो), पुत्ता च मे समानिया अरोगा।– – – – —

अत्थि वसा अत्थि धेनुपा (इति धनियो गोपो) गोधरणियो पवेणियो' पि अत्थि – – – –

खीला निखाता असपवेधी (इति धनियो गोपो) दामा मुजमया नवा सुसठाना।

नहि रूक्खिन्ति धेनुपा' पि हेतु, – – – – —।

२. विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/३

अध्याय-४

उद्योग एवं व्यवसाय

उद्योग एवं व्यवसाय

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य अपने समय मे प्रचलित व्यवसायो एव उद्योगो की स्थिति पर प्रकाश डालता है। इससे स्पष्ट होता है कि अनेक व्यवसायो/उद्योगो मे लोगो ने प्रवीणता हासिल की, नये जीवकोपार्जन के साधनो का जन्म हुआ। शिल्पकार स्थानीय वर्ग के रूप मे स्थापित हो रहे थे। प्राय लोग पैतृक व्यवसाय का ही अनुसरण करते थे लेकिन यह कोई निश्चित नियम नही था। सुत्त–पिटक मे एक ऐसी क्षत्रिय का उल्लेख है जो पहले कुम्भकार था, बाद मे उसने रसोइये एव मालाकार का व्यवसाय अपनाया।

भिन्न–भिन्न शिल्पो (विद्या/कला) को सीख कर लोग उसे जीवन यापन के साधन के रूप मे अपनाते थे। भगवान् बुद्ध ने कहा था दस ऐसे बाते है जिन्हे पहले न करके पीछे आदमी पछताता है।[1]

सक्यरूप पुरे सन्त मया सिप्प न सिक्खित
किच्छा वुत्ति असिप्पस्स इति पच्छानुतप्पति।।
(मैने पहले सामर्थ्य रहते कोई शिल्प नही सीखा।
'शिल्प–रहित का जीविका चलाना कठिन होता है'
सोच बाद मे वह पश्चाताप करता है)

---

१ जनसघ जातक, जातक सख्या ४६८,

युवक जीवक कौमार–भृत्य ने विचार किया "बिना शिल्प के जीविका करना मुश्किल है। क्यो न मै शिल्प सीखूॅ।" ऐसा विचार कर जीवक अभय राजकुमार की बिना आशा लिये सुविख्यात वैद्य से वैद्यक–शिल्प की शिक्षा लेने राजगृह से तक्षशिला के लिए प्रस्थान किया।[1] प्रस्तुत अध्याय मे विभिन्न व्यवसायो का अलग–अलग उल्लेख निम्नलिखित रूप मे किया जा रहा है–

धातु कर्म

लौह धातु -

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य से लोहा एव उससे निर्मित अनेक वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त होता है। जीवन के सभी क्षेत्रो– आर्थिक, सामाजिक, सामरिक दृष्टि से लोहा अपनी उपयोगिता प्रमाणित कर रहा था। बौद्ध ग्रन्थो मे मुख्यत विनयपिटक से ज्ञात होता है कि लौह–पात्रो का बौद्ध भिक्षुओ के जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान था। भगवान बुद्ध ने स्थान–स्थान पर भिक्षुओ को बहुमूल्य धातुओ से दूर रहने एव लौह एव मिट्टी के पात्रो के प्रयोग की अनुमति दी है। "भिक्षुओ! सुवर्णमय पात्र नही धारण करना चाहिये, रौप्यमय०, मणिमय०, वैदूर्यमय०, स्फटिकमय०, कसमय, कॉचमय, रॉगे का०, सीसे का, तार्मलोह (=तॉबा) का – – – – –दुष्कृत' – – –। भिक्षुओ! लोहे के और मिट्टी के – दो पात्रो की अनुज्ञा देता हूँ"[2]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१ हि० अ० पृ० २६७,
अथ खो जीवकस्स कोमारमच्चस्स एतदहोसि– "इमानि खो राजकुलानि न सुकरानि असिप्पेन उपजीवितु। यन्नूनाह सिप्प सिक्खेय्य" ति। तेन खो पन समयेन तक्कसिलाय दिसापामोक्खो वेज्जो पटिवसति अथ खो जीवको कोमार मच्चो अभय राजकुमार अनापुच्छा येन तक्कसिला, तेन पक्कामि।

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/१/१० हिन्दी अनुवाद ४२३,
"न भिक्खवे, सोवण्णमयो पत्तो धारेतब्बो– – – न वेलुरियमयो पत्तो धारेतब्बो – – न फलिकमयो पत्तो धारेतब्बो – – न तिपुमयो पत्तो धारेतब्बो – – न सीसमयो पत्तो धारेतब्बो – – न तम्बलोहमयो पत्तो धारेतब्बो। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, पत्ते– अयोपत्त, मत्तिकापत्त" ति।

भगवान ने लोह–कुभ, लोह–भाणक, लोहवारक, लोह कटाह, वासी (वसूॅला) फरसा, कुदाल, निखादन (रखने का औजार) भिक्षुओ को अपने पास रखने की आज्ञा दी थी।[1] वैदिक साहित्य मे पानी इकठ्ठा करने के लिए 'कुम्भ' नाम के पात्र का उल्लेख प्राप्त होता है। भिक्षुओ द्वारा प्रयुक्त लोहकुम्भि सम्भवत घट आकृति का पात्र रहा होगा।[2]

जातक[3] एव सुत्त–निपात[4] मे विशाल आकृति की लोह–कुम्भी मे अपराधियो को दण्डस्वरूप लटाकये जाने का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है ये महती आकार वाली लोह–कुम्भी काफी गहराई लिए हुए विशालकाय होती थी। लौह माणक एव लौह वारक को साकृत्यायन जी ने लोहे का मटका कहा है। 'लोह कटाह' का अर्थ लोहे की कडाही से लिया गया। 'लौह–वासी' का अर्थ लोहे का वसूला है। फरसा एव कुदाल का अर्थ तो स्पष्ट ही है। लोह–खनती से अभिप्राय सम्भवत लोहे की खुरपी रहा होगा। महावग्गपालि मे तेल आदि पकाने के लिए लोहे के तुम्बे की प्रयोग की अनुमति दी गयी है।[5] तुम्बा सम्भवत चौडे मुखवाला घटाकृति पात्र रहा होगा। लोहे के अन्य पात्रो मे लोहे के तवे[6], थाली, कमण्डल[7] आदि का उल्लेख आता है। दीघनिकाय महापरिनिर्वाण सुत्त मे भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरान्त उनके शरीर को रखने के लिए लोहमय द्रोणी का उल्लेख मिलता है।[8]

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/५/३/ हि० अनु० पृष्ठ–४७।
लोहकुम्भी, लोहमाणक, लोहवारको, लोहकटाह, वासी,
परसु, कुठारी, कुदालो निखादन– इद चतुत्थ अवेभन्गिय, न विभजितब्ब सगेन वा गणेन वा पुग्गलेन वा। विभत्त पि अविभत्त होति। यो विभाजय्य आपत्ति थुल्लच्चयस्ण।

२ सिह, शिवाजी, वैदिक लिटरेचर आन पाटरी, पाटरीज इन एन्शियट इडिया, पृ० ३०४

३ जातक, सख्या ५४,

४ सुत्त–निपात, कोकालिक सुत्त, ३/१० अथ लोहमय पन कुम्भि, अग्गिनिसम जलित पविसन्ति।पच्चन्ति हि तासु चिररत्त, अग्गिनिसमासु समुत्पिलवासो।

५ विनयपिटक महावग्ग,६/२/१
अनुजानामि तीणि तुम्बानि लोहतुम्ब कट्ठतुम्ब फलतुम्ब/

६ अगुत्तर–निकाय, खड–३ पृ० २०७
दिवस सन्तप्ते अयोकपाले अनुअमाने पपटिका।

७ चुल्लनिद्देश, खु० नि०, खड ४, पृ० २६८–६६, २६०, अपदानपालि, खु० नि० भाग ६, प्रथम भाग, पृ० ३८ यो लोहथालकं धारेन्ति, धम्माकरक धारेन्ति, सो समणो महेसक्खो ति भणति।

८ दीघ–निकाय, महावग्ग, महापरिनिब्बाण सुत्त, ४/५

लौह निर्मित अलकरण की वस्तुओ का भी प्रयोग किया जाता था। लोहे का कुण्डल[1] जिस पर स्वर्णपरत चढी थी, लोहे की छुरी[2] जिसका उपयोग नाई एव भिक्षु केशो के काटने के लिए करते थे, एव नहहरनी[3] उल्लेखनीय है।

लौह निर्मित सिलाई–बुनाई के उपकरणो मे सूई[4] एव कैची[5] का उल्लेख मिलता है।

लौह कृषि उपकरणो के फार, फरसा, कुदाल, कुल्हाडी खनती का उल्लेख मिलता है। लोहे के फार का उल्लेख सुत्तनिपात के कासिभारछाज सुत्त मे प्राप्त होता है।[6] प्रो० डी० डी० कौसाम्बी के अनुसार सूत्र की उपमा से यह स्पष्ट होता है कि फार लोहे का ही रहा होगा। क्योकि यदि दिनभर कॉसे को तपाया जाय तो वह काफी कमजोर एव व्यर्थ हो जायेगा क्योकि कॉसा एक मुलायम धातु है। अन्यत्र भी लोहे की फार का उल्लेख प्राप्त होता है।

लोहे की जजीर, पीढा एव मच का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[7]

लोहे के हथियारो का भी वर्णन मिलता है जैसे– लोहे की बर्छी[8], कूट[9], वाण,[10] कवच[11], तलवार[12], शूल[13] आदि।

---

१ सयुत्त–निकाय १/३/२/२ पृष्ठ ७५

२ विनयपिटक चुल्लवग्ग ५/३/६

३ विनयपिटक, चुल्लवचग्ग ५/३/५

४ विनयपिटक, चुल्लवग, ५/१/१२
"अनुजानामि भिक्खवे सूचि" ति/

५ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ५/३/६

६ सुत्त निपात, १/४

७ अगुत्तर निकाय, खड–३, पृ० २५३, हि० अनु० पृ० २३७

८ सुत्त, कोकालिक सुत्त, हि० अ० पृष्ठ ७१, ३/१० अयोसकु–समाहतठ्ठान, तिण्हधारमयसूलमुपेति।

९ सुत्त–निपात, कोकालिक–सुत्त, हि० अनु० पृष्ठ १७६,३/१० जालेन च ओनहियाना, तत्थ हनन्ति अयोमयकूटेहि।

१० धम्मपद, पडितवग्गो, पृष्ठ ३७,

११ अगुत्तर–निकाय, खण्ड–३, पृ० २५३, हि० अनु० २२६ 'तत्तेन अयोप्टेन'

१२ जातक, असिलखक्या जातक, सख्या १२६

१३ महानारद काश्यप जातक, संख्या ५४४,

लोहे के कूट का अर्थ राहुल साकृत्यायन ने हथोडे के अर्थ मे लिया है। धम्मपद मे उसुकार द्वारा आग मे तपाकर वाण को एकदम सीधा व तीक्ष्ण बनाने का उल्लेख आया है।[1]

स्थापत्य के निर्माण मे भी लोहे का बहुभॉति प्रयोग होता था। लौहमय गृह,[2] लौह प्रकार से घिरे अन्नागार[3], लोहे की कील[4], जजीर[5] एव सिटकनी[6] आदि का उपयोग किया जाता था।

जग लगने से लोहा विनष्ट हो जाता है।[7] सुई को जग लगने से वचाने के लिए विविध उपायो का उल्लेख विनयपिटक के चुल्लवग्ग मे मिलता है।[8]

लोहे का काम करने वालो को कम्मार कहा जाता था। कभी–कभी ये लोहार बहुत बडी सख्या मे एक स्थान पर रहते थे। इनका एक प्रधान होता था। इस गॉव से लोहे के विविध उपकरण, शस्त्र आदि आस–पास के क्षेत्रो मे जाते थे।[9] लोहे क समान को तैयार करने के लिए भट्ठी भूमि के अन्दर तक बनी होती थी जिसमे गैस प्रवाह के लिए बाहरी सिरे पर दो छिद्र होते थे जिनमे मिट्टी की बनी वायु नलिका लगी रहती थी तथा नलिका के दोनो सिरो

---

१ धम्मपद, पण्डितवग्गो, पृष्ठ ३७ उसकारा नमयन्ति तेजन

२ अयोघर जातक, जातक सख्या ५१०

३ सयुत्त–निकाय, २/१४/१/६

४ मज्झिम–निकाय, बाल–पडित सुत्तन्त २/१/६ हि० अ० पृ० २२६

५ सयुक्त निकाय १/३/१/१० हिन्दी अनु० पृष्ठ ७३

६ विनयपिटक, चुल्लवग्गपालि पृ० २३६

७ अयसा, व मल समुट्ठित धम्मपद, मलवग्गो, पृष्ठ १०६ तदुट्ठाव तमेव खादति।
एव अतिधोनचारिन सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गति।।

८ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/१/१२,

९ सूची जातक

पर भाथी होती थी। इस भाथी पर दोनो पैरो से खडे होकर क्रमश ऊपर नीचे उठते हुए दोनो पैरो से दबाव डालकर वायु को ताप बनाये रखने हेतु पहुँचाया जाता था।[1] सर्पराज मार की श्वास–क्रिया की उपमा तेज शब्द करने वाली लोहार की भाथी से की गयी है।[2]

शुद्ध लोह पिण्ड तैयार करने के लिए दिनभर लोहे को तपाया जाता था इस तप्तावस्था मे वह हल्का भी हो जाता था।[3] इस तैयार शुद्ध लौह पिण्ड से विभिन्न वस्तुए बनायी जाती थी। तप्तावस्था मे लोहे को पीटकर सम्भवत उसमे जो थोडी बहुत अशुद्धियॉ कार्बन आदि थी दूर कर ली जाती थी।[4]

सुवर्ण धातु-

सुवर्णकार एव उसके द्वारा निर्मित विभिन्न प्रकार की वस्तुओ पर प्राचीन पालि साहित्य से प्रकाश पडता है। इन ग्रन्थे मे सुवर्णबोधक शब्द के रूप मे 'हिरण्य', 'जातरूप', कचन 'श्रृगी', 'हाटक', 'हेम', 'कम्बु' एव 'निष्क' का प्रयोग मिलता है।

सुवर्णमय अलकरण की वस्तुओ मे स्वर्णाभूषण, स्वर्णिम वेशभूषा, छत्र, चवर एव ध्वजा आते है। महिलाओ के स्वर्णमय आभूषणो मे वेणी,[5] ग्रीवेयक,[6] कठाहार[7], माला[8], कुण्डल,[9] अगूठी,[10]

---

१ प्रिया श्रीवास्तव, प्राचीन बौद्धग्रन्थो मे वर्णित धातु एव धातुकर्म पृष्ठ–२०८

२ सयुक्त–निकाय, खण्ड। पृ० १०६, हि० अनु० भाग १, पृ० ३६०

३ दीघ–निकाय, २/१०/१/३

४ मेटल एण्ड मेटलर्जी, पृ० ४२,

५ थेरीगाथा श्लोक स० २५५, खु० नि० पालि खण्ड २, पृ० ४३८ "कण्हखन्धक सुवण्णमण्डित, सोभते सुवेणी अलकात।"

६ अगुत्तर–निकायपालि, खण्ड[1], पृ० २३४, खण्ड [2] पृ० २८६ सुवण्णउकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी जातरूप घमति सन्धमति निद्धमति। त होति जातरूप धन्त सन्धन्त निद्धन्त कसाव मृदु च होति कम्मनिय च पमस्सर च न च पभगु सम्मा उपेति कम्माय। यस्सा यस्सा च पिलघनविकतिया आकखति यचदि गीवेय्येकेन त चस्स अत्थ अनुभोति।

७ थेरीगाथा, श्लोक न० २६२, खु० नि०, ख–२, पृष्ठ ४३६,
सण्ह कम्बुरि सुप्पमज्जिता, सोभते तु ग्रीवा पुरे मम।

८ विनयपिटक, पाराजिकपालि, पृ० ३५५–५६, महावग्ग, पृ० २२७ सा अहोसि सुवण्णमाला अभिरूपाा दस्सनीया, पासादिका नत्थि तादिसा पि अन्तपुर सुवण्णमाला

९ अगुत्तरनिकायपालि, खण्ड–२, पृ० २८६
सयुक्तनिकायपालि, खण्ड १, पृ० ७८ "कुण्डलो होहऽनुमासो वा सुवण्णछन्नो।

१० अगुत्तरनिकायपालि खण्ड–२, पृ० २८६
जातरूपस्स उपक्किलेसेहि विमुत्त होति .. यदि मुछिकाय त चस्स अत्थं अनुमोति।

पाजेब,[1] केयूर का उल्लेख मिलता है। पुरुषो द्वारा भी जीवन मे सुवर्ण का व्यवहार किया जाता था। सुवर्णमय परिधान[2] स्वर्णमय चरणपादुका[3] चवर,[4] जजीर[5], माला,[6] कुण्डल,[7] हस्ताभरण,[8], मेखला[9], ध्वजा[10] आदि पुरुषो द्वारा धारण की जाती थी–

सुवर्ण का धनाराशि के रूप मे भी उल्लेख मिलता है। उपयोग की दृष्टि से इन्हे मोटे तौर पर दो भागो मे बाटा गया है।

(१) सम्पत्तिमूलक सुवर्ण धनराशि

(२) मुद्रासूचक सुवर्ण धनराशि।

---

१ थेरगाथा, श्लोक न २६६, पृ० ४३१
सण्हनुपुर सुवण्णमण्डिता, सोभते तु जघा पुरे मम।

२ सोणनन्द जातक

३ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/११

४ सुत्तनिपात, ३/११
सुवण्णदण्डा वीतिपतन्ति चामरा, न दिस्सरे चामरछत्तगाहका।

५ जातकपालि, स ५११, खु० नि० खण्ड–३
राजपूत्ता स०वालकार भूसिता
चित्रवग्मधरा सूरा कञ्चनवेलधारिनो।

६ जातकपालि, स ५४६
सुवण्णमाल सतपलफुल्ल, सकेसर रतन सहस्समण्डित।

७ महानिछेसपालि, खु० नि० खण्ड–५, पृ० ३६६
कुण्डल लोहनुमासो वा सुवण्णछन्नो।

८ जातक, सख्या ५४४, पृ० २६४
मुत्तामणिकनक विभूसितानि, गण्हस्सु हत्था भरणानि सोभसि राजपरिसाय।

९ जातक सख्या ५३१ ख० नि०, खण्ड–३–भाग २, पृ० ७५। कुसेन जात खत्तिथ, सुवण्णमणिमेखत

१० यस्स पुब्बे धजग्गनि, कणिकारा च पुप्फिता चायन्तमनुयायन्ति स्वजेकी व गमिस्सति।

सम्पत्ति मूलक सुवर्णधराशि का उल्लेख राजाओ एव धनाढ्य वर्गो के कोषागारो, उनके द्वारा दिये गये दान आदि के सन्दर्भ से प्राप्त होते है। सयुक्त–निकाय मे कहा गया है कि यदि भिक्षु को सुवर्ण चूर्ण से परिपूर्ण चादी की थाली दी जाय तो भी वह झूठ नही बोलेगा।[1]

इसी प्रकार मज्झिम निकाय मे प्रव्रजित राष्ट्रपाल अपने पिता को सलाह देता है कि 'हे गृहपति, तू मेरी बात मान, इस हिरण्य सुवर्ण पुज को गाडियो पर रखवा, ढुलवाकर गगानदी की बीच धार मे डाल दे[2]।

विभिन्न सन्दर्भो मे मुद्रासूचक सुवर्ण धनराशि का उल्लेख प्राप्त होता है। चुल्लवग्ग मे श्रावस्ती के श्रेष्ठी अनाथपिण्डक गाडियो पर हिरण्य ढुलवाकर जेतवन का क्रय करते है[3] तक्षशिला से शिक्षा ग्रहण कर लौट रहे जुण्ह कुमार एक भिक्षु से टकरा जाते है जिससे उनका भिक्षा पात्र टूट जाता है। प्रायश्चितस्वरूप जुण्हकुमार उसे हजार से अधिक निष्क देते है।[4]

दैनिक जीवन के व्यवहार मे भी सुवर्ण–वस्तुओ का उपयोग किया जाता था। स्वर्णमय पात्रो मे सोने की थाली, तश्तरी, कलश, धूमनेत्र, सोने के मूट वाली कैची, सुवर्णमय पीठासन, पीछे सुवर्णयुक्त पाये, रूपर्णिम छत वाली नाव, स्वर्णखचित नौका, सुवर्णमय रथ, सुवर्णमय हौदा, सुवर्णमय पिज्जरा आदि उल्लेखनीय है।

अगुत्तरनिकाय मे प्राकृतिक अवस्था मे प्राप्त मिट्टी, धूलादि कणो से युक्त सुवर्ण कण प्रारम्भिक रूप मे दो अवस्थाओ मे शुद्ध किये जाने का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। "सुवर्ण पर बडे–बडे धब्बे होते है मिट्टी के, बाले के। उन्हे मिट्टी धोने वाला या उसका शिष्य द्रोणी

१ सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृ० २६१,

२ मज्झिम निकाय, हि० अ०, पृ० ३३३

३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/३/१,

४ जातक सख्या ४५६

मे डालकर अच्छी प्रकार से धोता है, मलकर धोता है ताकि उसका मैल प्रहाण हो जाय। तब उसके बालुका आदि स्थूल कण शेष रह जाते है, जिसे सुनार तथा उसका शिष्य मूसा मे डालकर तपाता है, अच्छी प्रकार से तपाता है, किन्तु साफ नही करता है। वह स्वर्ण अच्छी प्रकार से तपा हुआ होता है, किन्तु न तो साफ होता है न मृदु और न प्रभास्वर।"।[1]

उपरोक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि प्राकृतिक अवस्था मे प्राप्त स्वर्ण को मूलधातु के रूप मे प्राप्त कर लिया जाता था, किन्तु वह साफ नही होता था। स्वर्णकार द्वारा गेरु व नमक द्वारा सुवर्णधातु को शोधित किये जोने का सदर्भ प्राप्त होता है। 'अगीठी होने से, नमक होने से, गेरु होने, सण्डसी होने, उसके साथ आदमी का प्रयास होने से, मलिन सोना क्रमश साफ होता है।[2] इस प्रकार सुवर्ण को शुद्ध किया जाता था।

सुवर्ण, सामग्री निर्माण से पूर्व सुदृढ कमनीय एव प्रभास्वर बनाया जाता था। 'सुवर्णकार या उसका शिष्य भट्ठी तैयार करता है। भट्ठी तैयार करके उसे लीपता है, लीपकर सण्डासी से सुवर्ण पकडकर उसमे डालता है। सुवर्ण डालने के पश्चात् समय–समय पर उसे तपाता है, समय–समय पर उसकी उपेक्षा करता है अथवा चुपचाप छोड देता है। यदि स्वर्णकार या उसका शिष्य सोने को सिर्फ तपाता ही रहे तो निश्चयत वह सुवर्ण जल जायेगा। यदि उस पर निरतर पानी के छीटे ही डालता रहे तो वह सुवर्ण बुझ जाएगा। यदि उसकी उपेक्षा ही करे तो

---

१ काश्यप, जगदीश अगुत्तरनिकायपालि, भाग १ पृ० २३४
जातरूपस्स ओलारिका उपक्किलेसा पसुवालक सक्खर कठला। तमेन पसुधोवक वा पसुधोवकन्तेवासी वा दोणि अभिरत्वा धोवति सन्धोवति निद्धोवति। तस्मि झयन्ती कते अथापर सिकता वसिस्सन्ति। तमेन सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा जातरूप मूलाय पक्खिमित्वा घमति निद्धमति। त होति जातरूप धन्त रून्धत अनिद्धन्त न चैव मृदुहोति न चेव कम्मानिय न च पमस्सर पभगु च।

२ अगुत्तननिकायपालि, खण्ड–१, पृ० १६५, हिन्दी अनु० पृ० २१६क उक्क च पटिच्च लोण च पटिच्च गेरुक च पटिच्च नाचि सण्डास च पटिच्च परिसस्स च तज्ज वायाम पटिच्च।

वह सुवर्णठीक से बनेगा ही नही। चूकि सुवर्णकार या उसका शिष्य समय–समय पर सुवर्ण को तपाता है, उस पर बीच–बीच मे पानी के छीटे डालता है तथा समय–समय पर चुपचाप छोड देता है, जिससे वह सुवर्ण कोमल, प्रभास्वर न टूटने वाला तथा काम मे लाये जा सकने योग्य होता है।[1] इस विधि से तैयार सुवर्ण खरा या शुद्ध होता है। प्रारम्भिक पालि ग्रन्थो मे अन्यत्र भी सुवर्णकार द्वारा सुवर्ण को भट्ठी मे शुद्ध करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] इस विधि से तैयार सुवर्ण खरा या शुद्ध होता है।

रजत धातु-

रजतमय वस्तुओ से सम्बन्धित विवरण सीमित रूप से ही ज्ञात होते है। उल्लेखे से ज्ञात होता है कि रजत धातु से निर्मित वस्तु का उपयोग समाज का धनाढ्य वर्ग ही करता था, जो उसके बहुमूल्य होने का सकेत देता है।

दैनिक जीवन मे रजतमय पात्रो के उपयोग मे आना स्पष्ट होता है। राजगृह के भिक्षु बहुमूल्य स्वर्ण एव रजत धातु से निर्मित पात्र उपयोग मे लाते थे जिसका व्यवहार उनके लिए विहित नही था।[3] चॉदी के पात्रो मे रजत थाली,[4] रजतमय धूम्रनेत्र[5], अजनदानी[6], कर्णमलहरणि[7], रजतमय चरणपादुका[8], रजतयुक्त पलग,[9] रजतमय दण्ड वाली कैची, रजतमय रथ, रजतमय पहिया आदि का उल्लेख मिलता है।

---

१ अगुत्तरनिकायपालि, खड–१, पृ० २३८

२ मज्झिमनिकायपालि, खण्ड–१, पृ० ५, हि० अनु० पृ० २६

३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/१/१०

४ चतुरासीति रूपियपाति सहस्सानि अदासि सुवण्ण पूरानि।
अगुत्तरनिकाय, चतुर्थ खड, पृ० २२१–२२२, हि० अनु० २६५

५ विनयपिटक, महावग्ग, पृ० २२३

६ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, हिन्दी अनुवाद, पृ० २१८

७ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, पृ० २२५
छब्बग्गिया भिक्खू उच्चावचा कण्णमलहरणियो धारोन्ति सोवण्णमय रूषियमय।

८ विनयपिटक, महावग्ग, हि० अनु० पृष्ठ २०८,

६ दीघनिकाय, २/४, हि० अ० पृष्ठ १५७,
चतुरासीति पल्लक सहस्सानि अहेसुसोवण्णमयाभि
रूपियमथाभि गोनकत्थानि।

पालि ग्रन्थे मे र जत धातु सम्बन्धी विवरणो मे धनराशि के रूप मे रजत के उल्लेखो का बाहुल्य है। धनराशि के रूप मे रजत को दो प्रकार से व्यवहृत किया जाता था–(१) सम्पत्ति मूलक रजत धनराशि (२) मुद्रासूचक रजतधनराशि।

राजाओ, श्रेष्ठी, गृहपति आदि धनाढ्य वर्ग के पास अपार रजत एव सुवर्ण धनराशि से पूर्ण कोषागारो का उल्लेख मिलता है। विनयपिटक मे ऐसे भिक्षुओ की आलोचना की गई जो रजत धनराशि की भिक्षा ग्रहण करते है। श्रावस्ती के धनाढ्य ब्राह्मण गृहपति ने सहस्रो की सख्या मे सोने की थाली, थालियॉ जो रजत से परिपूर्ण है, का दान दिया।[1]

व्यवहार मे प्रचलित तथा सख्यावाचक रजत धनराशि को उपयोग मे लाये जाने के उल्लेख मिलते है। 'चुल्लवग्ग' मे रजत की व्यवहार मे प्रचलित मुद्रा को 'कहापण' कहा गया है, जो ताम्र के मासक, हड्डी, लाख एव दारु (लकडी) के मासक के समान दैनिक व्यवहार मे प्रचलित थी।[2] सहस्रो की सख्या मे कहापण बुद्ध के जन्मोत्सव पर वरसाये गये।[3]

वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले धनाढ्य वर्ग अपने भवनो आदि के निर्माण मे रजत धातु का प्रयोग करते थे। 'चम्पेय जातक' मे सोने के घर एव चॉदी के प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है।[4] बौद्ध श्रावको द्वारा बौद्ध पूजा के निमित्त बहुमूल्य धातुओ के स्तूप का निर्माण किया गया। 'पहला स्तूप सुवर्णमय, दूसरा मणिमय, तीसरा रजतमय एव चौथा स्फटिकमय बनवाया'[5]।

---

१ अगुत्तरनिकाय, चतुर्थ खड, २०१–२०२, हि० अनु० पृ० ३३ चतुरासीति सुवण्णपाति सहस्सानि अदासि रूपियपूरानि।

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, हि० अनु० पृष्ठ १६
रजत नाम कहापणो लोहमासको दारूमासको जतुमासको ये वोहार गच्छति।

३ धम्मपद, हि० अनु० पृष्ठ ११८,

४ जातक सख्या ५०६, चम्पेय्य जातक,

५ अपदान, भाग–२, खु० नि०, खड–६ पृ० ८२
पठमा कञ्चननया, दुतियसि मणीमया
ततिया रूपियमया, चतुतसी फलिकमया

प्रारम्भिक पालि–साहित्य रजत धातु कर्म के सीमित उल्लेख प्राप्त होते है। सुत्तनिपात मे कहा गया है कि 'कर्मकार चादी के मैल को क्षण–क्षण क्रमश थोडा–थोडा करके जलाता है।'[1] इस सम्बन्ध मे अर्थशास्त्र मे शुद्ध चादी की पहचान बताते हुए कहा गया है कि शुद्ध चॉदी श्वेत, स्निग्ध एव मुलायम होती है। इसके विपरीत काली, रूक्ष, खरखरी एव फटी हुई चॉदी खराब होती है। कर्मकार को खराब चॉदी मे चौथाई भाग सीसा डालकर उसको शुद्ध करना चाहिए तथा जिसमे बुदबुद उठते हो और दही सके समान श्वेत हो वही शुद्ध चादी होती है।[2]

ताम्रधातु-

भारत मे धातु–सभ्यता का प्रारम्भ ताम्र धातु से ही माना जाता है। इस धातु से अतिप्राचीन काल मे ही विभिन्न प्रकार के उपकरणो का निर्माण विशाल पैमाने पर होने लगा था। यही कारण था कि नवपाषाण कालीन सभ्यता का यह युग 'ताम्र–पाषाण–युग' कहा जाने लगा। प्रारम्भिक पालि ग्रन्थो मे ताम्र के उपयोग के सीमित उल्लेख प्राप्त होते है जिसका एक प्रमुख कारण इस काल मे लौह धातु का प्रचलन हो जाना था। पूर्वोत्तर भारत मे लौह धातु, कृषि एव अन्य व्यवसाय के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही थी। ताम्र के सीमित उपयोग का दूसरा कारण ताम्र धातु का मिश्र धातु कास्य के रूप मे बहुलता से उपयोग भी रहा है। पालि ग्रन्थे मे तॉबे का उल्लेख अन्य बहुमूल्य धातुओ के साथ इससे भी विरत रहने के सन्दर्भ मे आता है। इससे प्रतीत होता है कि यह भी एक बहुमूल्य धातु थी।

'अयस' शब्द को यद्यपि धातु बोधक लौह तथा ताम्र के अर्थ मे उल्लिखित किया गया है किन्तु सदर्भ विशेष के आधार पर स्पष्ट है कि 'अयस' शब्द को प्राय लौह सूचक अर्थो मे ही प्रयुक्त किया गया है। दीघनिकाय के महापरिनिब्बाणसुत्त मे कहा गया है कि 'तेल की

---

१ कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो

धम्मपद, खु० नि०, भाग १, पृ० ३६, हि० अनु० १४२–४३

२ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् वाचस्पति गैरोला, द्वि० अधि० पृ० १७५, १७६

लोहद्रोणी मे रखकर, दूसरी लोह–द्रोणी से ढककर सभी गधो (वाले काठ) की चिता बनाकर' भगवान् के शरीर को अग्नि को समर्पित करने का उल्लेख मिलता है। इस सदर्भ विशेष मे 'अयस' शब्द को ताम्र मानकर अनुवादक ने इसे ताम्र द्रोणी कहा है। ऐसा सम्भवत भगवान् बुद्ध के महापुरुषत्व के कारण कहा गया है, जो उचित प्रतीत होता है।[1]

पालि ग्रन्थे मे ताम्र को लाल रग का कहा गया है। प्राय इसकी उपमा रक्त वर्ण नेत्रो से दी गई है। भिक्षुओ के सन्दर्भ मे प्राय ताम्र–पात्रो का उल्लेख मिलता है। 'षड्वर्गीय भिक्षु बहुत से तॉबे (=लोह) कॉसे के भँडो का सच करते थे'[2] जो इनके लिए विहित नही था। इसी प्रकार अन्य उल्लेख भी है। ताम्रमयी कर्णमलहरनी[3] एव ताम्रमयी चरणपादुका[4] के भी उल्लेख मिलते है।

चुल्लवग्ग से लोहनिर्मित मुद्रा का उल्लेख मिलता है। 'जातरूप सत्थुवर्ण (शास्ता के वर्ण की) मुद्रा है। रजत कार्षापण का नाम है, तॉबे के भाषक (=माशा), दारु के माशा और लोहे के माशो के रूप मे व्यवहृत होता है।[5] 'महाजनक जातक' मे मिथिला नरेश के अपार धनराशि के सदर्भ मे ताम्रसूचक धनराशि का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[6]

ताबे की तकनीकि पक्ष पर भी कुछ प्रकाश पडता है। इसके प्रगलन के विषय मे कहा गया है कि 'पिघला हुआ ताबा जितना कष्ट देता है कामभोगो का दुख उससे भी अधिक कष्टकर होता है।[7] तॉबे को सोने मे भी मिलाया जाता था।

---

१ प्रिया श्रीवास्तव, प्राचीन बौद्धग्रन्थे मे वर्णित धातु एव धातुकर्म, पृ० २२४

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/३/८

३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ५/३/८

४ विनयपिटक, महावग्ग ५/१/११

५ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, पृ० ३३६, हि० अनु० पृ० १६
जातरूप नाम सत्थवण्णे वुच्चति रजत नाम कहापणो। लोकमासको ढारूमासको जतुमासको ये वोहार गच्छति।

६ जातक सख्या– ५३६, खु० नि०, भाग ३, खण्ड–२, पृ० १७७
अजिन दन्त भण्डञ्च लोहं कालायस वहु

७ जातक सख्या ४५६, पानीय जातक, तम्बलोहविलीन व–कामा दुक्खतरा ततो।

कास्य धातु-

लगभग तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० से ही कास्य–वस्तुए प्राप्त होने लगती है। मूल धातु ताम्र मे पॉच प्रतिशत से पच्चीस प्रतिशत तक रागे का मिश्रण करके इस धातु को तैयार किया जाता है। इस धातु को 'घण्टिका धातु' के नाम से भी जाता है क्योकि रागे के मिश्रण से तैयार इस धातु मे ध्वनि सचारण का विशेष गुण विद्यमान होता है। अत जहॉ कास्यमयी वस्तुओ को पीटने पर उससे तेज आवाज निश्रित होती है वही इन वस्तुओ के टूटने पर उसके ध्वनि सचारण मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है।[१]

पालि ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि अनेक कास्यमयी वस्तुए प्रयोग मे लायी जाती थी। 'श्रमण शाक्यपुत्र बहुत से लोहभाण्ड एव कास्यभाण्डो का सचयन करते है, कसेरे की भॉति। भिक्षु जो इसे ग्रहण करे वह दुक्कट का दोषी है।'[२] कसि भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध के अतिथि–सत्कार मे 'एक बहुत बडी कासे की थाली मे भगवान को खीर परस कर दिया।'[३] दीघनिकाय के 'महासुदस्सनसुत्त' मे एव अगुत्तरनिकाय के वेलाम सुत्त मे दुग्धधारी, कासे की घण्टी पहने गायो को दान मे दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[४]

---

१ प्रिया श्रीवास्तव, प्राचीन बौद्धग्रन्थो मे वर्णित धातु एव धातुकर्म, पृष्ठ २३६

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, पृ० २२५, २२६ हि० अनु० पृ० ४४२
समणासक्युपुत्तिया बहुलोहभण्ड कसभण्ड सन्निचयम् करिस्सन्ति सेय्यथापि सकपत्थरिका' ति। यो धारेय्य आपत्ति दुक्कुटस्य।

३ सुत्त–निपात, १/४
महतिया कसपातिया पायास बद्धेत्वा भगवतो उपनामेसि

४ दीघ–निकाय खण्ड २, पृ० १३६–३७, हि० अनु० पृ० १५७
चतुरासीति धेनु सहस्सानि अहेसु दुहसन्धनानि कसूप धारणानि अहेसु

समस्त उल्लेखो से स्पष्ट होता है कि कास्य व्यवसाय उन्नत अवस्था मे था। कास्यकार को धातुकार सूचक 'कम्मार' तथा 'कसपत्थकारिका' आदि नामो से जाना जाता था। ये कास्यवस्तुओ का निर्माण एव विक्रय करते थे। इनके अपने पूरे पूरे कुल होते थे जिसके कारण से इनके लिए 'कम्मारकुल' शब्द व्यवहृत हुआ है जो कि अलग व्यवसायिक वर्ग के सामूहिक रूप से विकसित होने का सूचक है।[1] कसेरो के यहॉ बडी सख्या मे कास्यभाण्ड सचित रहते थे।[2]

सीसा धातु-

काले रग की अत्यधिक चमकदार धातु सीसे को अतिप्राचीन काल से ही ताम्र–कास्य वस्तुओ के निर्माण मे उपयोग लाने के पुरातात्विक प्रमाण मिलते है। 'महावग्ग से बौद्ध भिक्षुओ को बहुमूल्य धातु से बने पादुकाओ का प्रयोग न करने के सदर्भ मे सीसे से बनी चरणपादुका का उल्लेख मिलता है।[3] 'चुल्लवग्ग' से राजगृह के षडवर्गीय भिक्षुओ को सीसेमय पात्र का प्रयोग न करने के निर्देश दिये गये है।[4]

सीसा धातु- कर्म के अन्तर्गत पालि ग्रन्थो से सीसे की शोधन प्रक्रिया एव मिश्रित सुवर्ण तैयार किये जाने मे सीसे के उपयोग मे लाये जाने के उल्लेख मिलते है। 'अगुत्तर निकाय' के "उपोसथ सुत्त" से मैले सीसे को शोधित करने की प्रक्रिया का उल्लेख प्राप्त होता है "तेल से राख से (मिट्‌टी), बालो के गुच्छे के एव आदमी के प्रयत्न से मैला सीसा क्रमश साफ होता है।"[5]

---

१ प्रिया श्रीवास्तव, प्राचीन बौद्धग्रन्थो मे वर्णित धातु एव धातुकर्म, पृ० २५०

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, हि० अनु० पृ० ४४१

३ विनयपिटक, महावग्ग, पृ० २०६–१०
न सीसमय पादुका धारेतब्बा।

४ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, पृ० २२५
न सीसमयो पत्तो धारेतब्बो।

५ अगुत्तरनिकाय, खड–२, पृ० १६१, हि० अनु० पृ० २१५
"कम्म च पटिच्च, मत्तिकं च पटिच्च, उदक च पिटच्च पुरिसस्स च तज्ज वायाम पटिच्च, सीसस्स उपक्किलि परियोदापना होति

सुवर्ण धातु मे भी सीसे को मिश्रित किया जाता था। जिससे सुवर्ण की शुद्धता प्रभावित होती थी। 'लोहा, तॉबा, वग, सीसा, चॉदी इन पच धातुओ से तैयार सुवर्ण न तो मृदु होता है, न कोमल, न ठोस, न प्रभास्वर और न ही कमाया जा सकने वाला होता है।[1]

रागा (त्रपु) धातु-

रागा का उपयोग अति प्राचीन काल से ही ज्ञात होता है। तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० मिश्र मे धातु कासे के उत्पादन के रूप मे त्रपु धातु का प्रमुख रूप से उपयोग किया जाता था। ताम्र वस्तुओ को कठोरता प्रदान करने के लिए उसमे त्रपु धातु को मिलाया जाता था।

'विनयपिटक' से बौद्ध भिक्षुओ को बहुमूल्य पात्रो से उपयोग न करने के सन्दर्भ मे रागेमय पात्र का भी उल्लेख मिलता है।[2] इसी प्रकार मूल्यवान धातुओ की चरणपादुका के प्रयोग न करने के भी निर्देश दिये गये है।[3]

रागे को सुवर्ण मे भी मिश्रित किया जाता था। परन्तु इसे सोने की मैल कहा गया है।[4]

इस प्रकार पालि ग्रन्थो मे त्रपु धातु के अत्यन्त सीमित लेख प्राप्त होते है।

वस्त्र उद्योग -

वस्त्र उद्योग एक प्रमुख उद्योग के रूप विकसित हो गया था। विविध प्रकार के वस्त्रो–कौषेय (कीडे के अडे से उत्पन्न होने वाले सूत–रेशम, अडी, टसर आदि), क्षौम (अलसी की छाल) कपास, कम्बल (ऊन) सन, भॉग (भॉग की छाल का) आदि से निर्मित किये जाते थे।[5]

---

१ अगुत्तर निकाय, खड २, पृ० २८६, हि० अनु० पृ० २५०

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग पृ० २२५, हि० अनु० ४४१
न तिपुमयो पत्तो धारेतब्बो

३ विनयपिटक, महावग्ग, पृ० २०६–१०
न तिपुमया पादुका धारेब्बा।

४ अगुत्तर निकाय, खण्ड–२– पृ० २८६
ये हि पञ्चेहि उपक्किलेसेहि अयोलोह तिपुसीस सष्पु।

५ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/५ हि अ० पृ० २७५

काशी वस्त्र निर्माण का ख्याति प्राप्त केन्द्र था। सभी बुने गये कपडो मे काशी का कपडा अग्र समझा जाता था।[१]

काशी का वस्त्र बहुमूल्यवान होता था। प्रासाद, पृथ्वी गौ आदि ऐश्वर्यमयी वस्तुओ के साथ काशी के वस्त्र की गणना की गई है।[२] जातक मे एक लाख मूल्य के काशी के वस्त्रो उल्लेख मिलता है।[३] यहाँ के वस्त्र अपनी स्निग्धता, शुद्धता महीनता के लिए विख्यात थे। ये वस्त्र दोनो ओर से चिकने (पालिश युक्त) होते थे। दीघ–निकाय के महापरिनिर्वाण–सुत्त मे दोनो ओर से चिकना, अलसी के पुष्प की भॉति नीला, कर्णिकार–पुष्प की भॉति पीला, अडहुल–पुष्प की भॉति लोहित, शुक्रतारा की भॉति श्वेत बनारसी वस्त्र का वर्णन आया है।[४]

चापा ने अपने प्रव्रजित पति को लौटाने की चेष्टा मे उससे कहा था "काशी के उत्तम वस्त्रो को धारण करने वाली मुझ रूपवती को छोडकर तुम कहॉ जाओगे।"[५]

मज्झिम–निकाय की अट्ठकथा मे कहा गया है, "यहॉ (वाराणसी मे) कपास भी कोमल, सूत कातने वाली तथा जुलाहे भी चतुर और जल भी सु–स्निग्ध है। यहॉ का वस्त्र दोनो ही ओर से चिकना होता है। दोनो ही ओर से वह कोमल, मृदु और स्निग्ध दिखाई देता है।"[६]

काशी के अतिरिक्त देश मे वस्त्र निर्माण के कुछ अन्य भी प्रमुख केन्द्र थे। गन्धार ऊनी वस्त्रो एव कम्बलो के लिए जाना जाता था। महावेस्सन्तर जातक[७] मे गन्धार देश के लाल कम्बलो का उल्लेख आया है। शिवि के दुशाले अतिमूल्यवान समझे जाते थे। उज्जैनी के शासक प्रद्योत को पाडु रोग से ग्रसित था। राजगृह के सुप्रसिद्ध वैद्य जीवक ने उज्जैनी–नरेश

---

१ सयुक्तनिकाय, ५/४३/५/१०

२ जातक सख्या–५३७, महासुत्तसोम जातक,

३ जातक सख्या ५४६, महाउम्मग जातक

४ दीघ–निकाय, महापरिनिब्बाण–सुत्त, २/३

५ " कासिकुत्तमधारिनि कस्सोहाय गच्छसि।" थेरीगाथा, गाथा २६८

६ "वाराणसिय किर कप्पासो पि मुदु, सुत्तकन्तिकायो पि तन्तवायो पि छेका। उदकम्पि सुचिसिनिद्ध, तस्मा वत्थ उभतो भागविमट्ठ होति। द्वीसु पस्सेसु मट्ठ मुदुसिनिद्ध खायति"। भरतसिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भुगोल, पृष्ठ ३६८,

७ महावेस्सन्तर जातक।

की बीमारी दूर कर दी। पुरस्कारस्वरूप, प्रसन्न उज्जैनी नरेश प्रद्योत ने बहुत सौ हजार दुशाले के जोडे मे श्रेष्ठ शिवि के दुशालो का जोडा वैद्य जीवक को भेट किया।[१] इसी प्रकार वाहीत राष्ट्र के वस्त्र भी राजा–महाराजाओ मे आपस मे भेट के रूप दिये जाते थे। कोशल नरेश प्रसेनजित् को मगध नरेश अजातशत्रु ने सोलह हाथ लम्बी, आठ हाथ चौडी वाहीतिक दी थी।[२] खोम एव कोदुम्बर प्रदेश के वस्त्रो की भी दूर दूर तक मॉग थी।[३]

राजा–महाराजो एव समृद्ध लोगो के वस्त्रो मे सोने–चॉदी से सजावट की जाती थी। राजाओ की पगडीयॉ स्वर्णयुक्त होती थी।[४]

रूई धुनने के लिए स्त्रियॉ एक धनुषाकार यन्त्र का उपयोग करती थी, जो आजकल के पीजन या धुनकी के समान होता था। जातक मे स्त्रियो के कपास धुनने के इस धनुष (इत्थीन कप्पास–पोत्थन–धनुका) का उल्लेख है।[५]

महीन सूत कातकर (सुखुम सुत्तानि कन्तित्वा) उनकी गुण्डी(गुल) बनाने की क्रिया भी बुद्ध काल मे ज्ञात थी।[६]

कपडे बेचने वाले व्यापारी 'दुस्सिका' कहलाते थे। बडे–बडे लोगो के यहॉ बहुमूल्य वस्त्रो के गोदाम भरे रहते थे। साकेत के धनजय सेठ के यहॉ कई 'दुस्स कोट्ठागार' (कपडे के गोदाम) थे।[७]

वस्त्रो की रगाई कला पर भी प्रारम्भिक बौद्ध साक्ष्यो से प्रकाश पडते है। भगवान् बुद्ध को भोजन के लिए निमत्रित करने गये लिच्छवि नीले, पीले, लाल, श्वेत परिधानो से सुसज्जित थे।[८] भिक्षुणियो को रग–विरगे चीवरो को पहनने की मनाही थी।[९]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१

२ मज्झिम निकाय, २/४/८

३ महावेस्सन्तर जातक, सख्या ५४७, महाजनक जातक, जातक सख्या ५३६,

४ जातक, जिल्द पॉचवी, पृ० ३२२

५ महाजनक जातक, सख्या ५३६,

६ जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३३६

७ भरतसिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल

८. दीघ–निकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त

९. विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १०/४/१०;

कभी–कभी ये रग इतने तेज होते थे कि उनसे आभा निकलती थी। पुक्कुस द्वारा अर्पित इगुर वर्ण के चमकते हुए दुशाले से आच्छादित बुद्ध सोने के वर्ण जैसी शोभा देते थे।[1] विनयपिटक के महावग्ग मे पूरी रगाई– प्रक्रिया पर सुन्दर प्रकाश पडता है। भिक्षुओ को ६ रगो से चीवर रगने की अनुमति थी। (१) मूल (= जड से निकला) रग (२) स्कध रग (३) त्वक् (=छाल) का रग (४) पत्र (= पत्ते का) रग (५) पुष्प–रग (६) फल–रग[2]

कच्चे रग से रगा वस्त्र दुर्गन्धयुक्त होता था इसलिए रगने से पहले उसे पकाया जाता था।[3] पानी या नख पर बूँद डालकर परीक्षा ली जाती थी कि रग पका या नही।[4] रगने के लिए नॉद, दण्ड सहित थाल, कूँले, घडे, रजन–द्रोणी (पत्थर या किसी और चीज का रगने का विशाल पात्र जिसका एक नमूना सॉची मे है) की आवश्यकता होती थी।[5] वस्त्रो कोक रगने के बाद सुखाने के तृण की सथरी, बॉस एव रस्सती का प्रयोग होता था।[6]

वस्त्र रगने का कार्य रजक या रजकार लोग ही प्राय करते थे। कालिमा रहित शुद्ध वस्त्र ही अच्छी तरह से रग पकडता है।[7] रगने के पूर्व कपडे को अत्यन्त स्वच्छ एव धवल बना दिया जाता था। यदि वस्त्र गन्दा रहता था तो उस पर लाल, गुलाबी, नीला, पीला आदि कोई भी रग अपनी वास्तविक आभा नहीं छोड पाता था।[8]

---

१ दीघ–निकाय, महापरिनिब्बाण–सुत्त

२ विनयपिटक, महावग्ग ८/३/१,
अनुजानामि, भिक्खवे, ६ रजनानि– मूलरजन, खन्धरजन, तचरजन, पुप्फरजन पुप्फरजन, फलरन ति।

३ तेन खो पन समयेन भिक्खू सीतुदकाय चीवर रजन्ति रजन्ति।
चीवर दुग्गन्ध होति – – अनुजानामि, भिक्खवे, रजन पचितु

४ अनुजानामि, भिक्खवे, उदके वा नखपटिठकाय या थेवक दातुति

५ अनुजानामि, भिक्खवे, रजनलुक दण्डकथालक ति
अनुजानामि, भिक्खते, रजनकोलम्ब रजनघटति।
अनुजानामि भिक्खवे, रजनदोणिक ति।

६ विनयपिटक, महावग्ग, ८/३/४,

७ दीघ–निकाय, महापदान–सुत्त
हि० अनु० पृष्ठ–१०७

८ अखिलेश्वर मिश्र, शोध प्रबन्ध, पृष्ठ

सयुक्त–निकाय मे रगरेज या चित्रकार द्वारा रग या लाक्षा या हल्दी या नील या मजीठ द्वारा अच्छी तरह से साफ और चिकना किये फलक पर, या भित्ति पर, या कपडे के टुकडे पर सभी अगो से युक्त स्त्री या पुरूष के रूप उतारने का उल्लेख आता है।[1]

मृदभाण्ड कला

मिट्टी के बर्तन, खिलौने आदि का निर्माण करने वाले को कुलाल या कुम्भकार कहा जाता था। कुम्भकार अपनी कुशलता का परिचय देते हुए चाक को घुमाकर अनेक प्रकार के बर्तनो का निर्माण करता था जिसका प्रयोग जन–सामान्य से लेकर राजाओ द्वारा भी किया जाता था। दीघ–निकाय के सामञ्ञफल–सुत्त मे उल्लिखित है कि 'चतुर कुम्हार या कुम्हार का लडका अच्छी तरह से तैयार की गई मिट्टी से जो बर्तन चाहे वही बना ले एव बिगाड दे।[2]

कुस जातक मे बर्तन की प्रक्रिया वर्णित है। कुम्हार का शिष्य मिट्टी का एक लोदा चाक पर रख घुमाया। एक बार घुमाया हुआ चाक मध्याह्न तक बिना रुके घूमता ही रहा। उसने नाना प्रकार के छोटे–बडे बरतन बनाये। प्रभावती (अपनी प्रेमिका) के लिए बरतन बनाते हुए उन पर नाना प्रकार के चित्र बना दिये – – – – सभी बरतन सुखकर, पका कर घर भर दिया गया। कुम्हार नाना प्रकार के बरतन ले राजकुल पहुँचा।[3] मिट्टी के पात्र की समाज मे बडी मॉग थी। राजाओ के अपने कुम्हार होते थे जो राजकीय–कुम्हार कहे जाते थे जो राजकुल की आवश्यकताओ की पूर्ति करते थे।[4]

---

१ सेय्यथापि, भिक्खवे, रजको वा चित्तकारको वा सति
रजनाम वा लाखाय वा हालिद्दया वा नीलिया वा
मज्जिट्ठाय वा सुपरिमट्ठे वा फलके भित्तिया वा
दुस्सपट्ठे वा इत्थिरूप वा पुरिसरूप वा अभिनिम्मिनेय्य सब्बगपच्चग, – – –"
सयुत्त–निकाय, हि० अ० पृ० २३६,

२ दीघ–निकाय, सामञ्ञफत सुत्त, १/२/३
सेय्यथापि, महाराज, दक्खो कुम्भकारो वा कुम्भकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकताय मत्तिकाय य यदेव भाजनविकतिं आकङ्खेय्य त तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य।

३. कुस जातक, संख्या ५३१

४ चुल्लसेट्ठि जातक, सख्या ४, दलहधम्म जातक, सख्या ४०६,

इसके अतिरिक्त जनसामान्य एव भिक्षुओ द्वारा मृण्भाण्डो का बडी मात्रा मे उपयोग किया जाता था। महात्मा बुद्ध ने भिक्षुओ को बहुमूल्य धातुओ से दूर रहने एव लोहे एव मिट्टी के पात्रो का प्रयोग करने के लिए कहा था।[1] इसके दो कारण स्पष्ट होते है। पहला तो यह कि मृण्भाण्ड सस्ते होते थे एव दूसरा ये स्वच्छता की दृष्टि से भी उपयोगी थे।[2]

कुम्भकार सर्वप्रथम कच्ची मिट्टी प्राप्त करता था। प्राय कुम्भकारो का निवास स्थान गॉव या नगरो के बाहर ही रहता था।[3] इससे उनको यह सुविधा रहती थी कि उन्हे कच्ची मिट्टी की कमी नहीं पडती थी जिसकी सहायता से वे वर्तनो का निर्माण करते थे। पदकुसल माणव मे उल्लिखित है कि द्वार–ग्राम पर रहने वाले एक कुम्हार रोज रोज एक ही जगह से मिट्टी लाता था, जिससे पर्वत के अन्दर एक गढा खन गया।[4]

मिट्टी प्राप्त करने के बाद कुम्हार उसमे विभिन्न वस्तुये मिलाकर उसे समान बनाने लायक तैयार करता था। जातको से पता लगता है कि मिट्टी मे गाय का गोबर एव भूसी मिलायी जाती थी।[5] फिर मिट्टी के लोदे को चाक पर रखकर चाक घुमाकर विभिन्न मृण–वस्तुओ का निर्माण होता था।[6] चाक पर निर्मित वर्तनो को धूप मे सुखाने के बाद ऑवा पर पकाया जाता था।[7]

मिट्टी के बर्तनो के अतिरिक्त कुम्भकार बच्चो के खेलने के लिए विभिन्न खिलौनो का भी निर्माण करते थे। एक ब्राह्मणी आसन्न–प्रसवा होने पर ब्राह्मण से अपने बच्चे के लिए बाजार से वानर का बच्चा (खिलौना) लाने को कहती है। ब्राह्मण उसे आश्वस्त करता है कि, 'यदि

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग

"न, भिक्खवे, चित्रानि पत्तमण्डलानि धरेतब्बानि रूपकाकिण्णानि भित्तिकम्मकतानि। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स/"

२ अखिलेश्वर मिश्रा, शोध प्रबन्ध, पृ० १२२,

३ कुम्भकार जातक, सख्या ४०८, पदकुसल माणव, जातक, सख्या ४३२,

४ जातक सख्या ४३२,

५ जातक द्वि पृ० ८०,

६ जातक सख्या ५३१, महाउम्मग जातक सख्या ५४६,

७ जातक–निकाय, २/१२/६/१/

आप कुमार को जनेगीं, तो उसके लिए मै बाजार से मक्रट–शावक (खिलौना) खरीद कर ला दूँगा।'[1] अन्यत्र एक कुमार द्वारा अनेक प्रकार के खिलौने यथा वकक (=वका), घटिक (= घडिया) चिगुलक (= मुँह का लट्टू), पात्र–आढक (= घडिया) रथक (= खिलौने की घडिया), चिगुलक (= चिगुलिया), धनुक (= धनुही) से खेलने का उल्लेख है।[2]

मिट्टी के बर्तनो एव खिलौनो पर चित्रकारी एव रगाई भी की जाती थी। कुसलजातक मे बर्तनो पर अनेक प्रकार की चित्रकारी करने का वर्णन है।[3] कुम्भकारो के अतिरिक्त बर्तनो एव खिलौनो को रगने वाला भी एक वर्ग था। इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि कार्य की सुलभता की दृष्टि से सम्भवतया बर्तन बनाने एव रगने का कार्य अलग–अलग कलाकार करते थे। एक ब्राह्मण अपने पुत्र के लिए मक्रट–शावक (खिलौना) लेकर, रक्तपाणि रजक पुत्र (= रगरेज के बेटे) के यहॉ जाता है और उससे मक्रट–शावक को पीले रग से रगवाना, मलवाना एव दोनो तरफ से पालिश करवाना चाहता है।[4] महात्मा बुद्ध ने रूप खीचे हुए एव रग से चित्रित पात्र–मडल को धारण करने की मनाही की थी।[5]

रतिलाल मेहता के अनुसार कुम्भकारी की कला भारत की प्रतिष्ठित कला थी।[6] बाजार मे मृण्भाण्डो का बडे पैमाने पर क्रय–विक्रय होता था। मज्झिम निकाय के मक्रट–शावक प्रसग से स्पष्ट है कि मिट्टी के पात्र एव खिलौने की दुकाने लगती थीं।[7]

धम्मपद अठ्ठकथा से हमे पता चलता है कि बनारस का एक कुम्हार मिट्टी के बरतनो को एक खच्चर पर लाद कर पास के शहरो मे बेचा करता था। एक समय तो वह अपने बरतनो के साथ तक्षशिला तक धावा मार आया।[8]

---

१ मज्झिम–निकाय, उपालि सुतन्त, २/१/६, हि० अ० पृष्ठ २२६

२ मज्झिम निकाय, हि० अ० पृष्ठ १५७–१५८

३ जातक सख्या, ५३१,

४ मज्झिम–निकाय, उपालि सुत्तन्त, २/१/६ हि० अ० पृष्ठ २२६,

५ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/१/१० हि० अ० पृष्ठ ४२४

६ रतिलाल मेहता, प्री बुद्धिण्ड इण्डिया, पृ० २००

७ मज्झिम निकाय २/१/६

८ मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृष्ठ ५७,

स्पष्ट है मिट्टी की वस्तुओ की काफी खपत थी एव समाज का एक हिस्सा कुम्भकारीद्वारा जीवन यापन करता था।

कुम्भकार अपने कार्य मे अन्य व्यक्यिो की सहायता भी लेता था। आचार्य कुम्भकार एव उसके शिष्य के अनेक प्रसग हमे प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे प्राप्त होते है।[1]

कुछ कुम्भकारो की आर्थिक एव सामाजिक स्थिति सम्मानजनक थी। अगुत्तर–निकाय मे एक कुम्भकार, द्वारा रखे गये भाडे के मजदूर की चर्चा आयी है जो दिनभर मिट्टी पोते हुए कार्य करता था।[2] परन्तु ये सभी कुम्भकारो पर लागू नही होता था।[3]

मज्झिम–निकाय मे वेहलिग नामक ग्राम निगम मे घटिकार नामक, उच्च मानवीय गुणो से युक्त कुम्भकार का उल्लेख है। उसके चरित्र का वर्णन करते हुए उसे 'हिसा से विरत, चोरी से विरत, काम–मिथ्याचार से विरत, मृषावाद (= झू०) से विरत, नशीली चीजो से विरत तथा एकाहारी, ब्रह्मचारी, कल्याणधर्मा (= पुण्यात्मा) बताया गया है। उसके गुणो से प्रसन्न हो महात्मा बुद्ध ने उसके यहॉ ही वर्षावास स्वीकार किया, काशिराज किकि के यहॉ नही।[4]

वर्द्धकीय कार्य -

काष्ठ सम्बन्धी सभी कार्य बढई करते थे। ये लकडी से विभिन्न प्रकार की वस्तुओ का निर्माण करते थे। लकडी प्राप्त करने के लिए बढई जगल मे जाते थे। अलीनचित्त जातक मे बढइयो के द्वारा काष्ठसचय करने की कठिन प्रक्रिया का वर्णन है। वाराणसी के समीप एक बढई ग्राम था जहॉ पॉच सौ बढई रहते थे। 'वे नौका से नदी के श्रोत के ऊपर की तरफ जाते। वहॉ जगल मे घर बनाने के लकडी काटकर वही एक तल्ले तथा दो तल्ले का मकान बना, खम्भे से आरम्भ करके सभी लकडियो पर चिन्ह लगाते फिर उन्हे नदी के किनारे लेजा नौका पर चढा श्रोत के अनुसार नगर मे आते। वहॉ जो जैसे घर चाहता, उसे वैसा बना देकर कार्षापण ले फिर वैसी ही जा घर के सामान लाते।[5]' अन्यत्र भी बढइयो के जगल मे जाकर लकडी लाने का उल्लेख है।[6] तत्कालीन समय मे बनो की अधिकता थी। स्थान–स्थान पर आरण्य का वर्णन पालि साहित्य मे मिलता है।

---

१ कुस जातक महा जातक,
२ अ० नि० ष० पृ० ३७२
३ महाउम्मग्ग जातक, सख्या ५४६,
४ मज्झिम–निकाय, घटिकार–सुत्तन्त, २/४/१, हि० अ० पृष्ठ ३२५
५. अलीनचित्त जातक
६. जातक सख्या, २८३

परन्तु इनको उपभोग के लिए तेजी से काटा भी जा रहा था। सयुक्त निकाय मे बनो को साफ करने का प्रसग आया है।[1] बढई कुल्हाडी एव छूरे की सहायता से पेड काटा करते थे। बड्ढकीसूकर जातक मे बढई द्वारा उपयोग मे लाये जाने वाले औजारो मे – छूरी, कुल्हाडी, फरसा, रुखानी, मोगारी का उल्लेख है।[2] इन औजारो के अलावा वे वसूले का भी प्रयोग करते थे। बढई के शागिर्द के वसूले के हथ्थड (= वेट) मे देखने से अगुलियो और अगूठे के दाग पडे मालूम होते है। बढई को ऐसा ज्ञान नही रहता कि वसूले का हथ्थड आज इतना घिसा कल इतना घिसेगा। कितु उसके घिस जाने पर मालूम होता है कि वह घिस गया।[3]

बढई का पेशा पूरी तरत से व्यवस्थित था, इनका स्थान–स्थान पर स्थानीकरण हो गया था। स्थान–स्थान पर सैकडो काष्ठकार एक स्थान पर निवास करते थे।[4] सम्पन्न एव कुशल बढइयो की सज्ञा 'दारू कम्मिक' थी। इन बढइयो का गहपति के रूप मे भी उल्लेख मिलता है। अगुत्तर निकाय मे भिक्षुओ को दान देने वाले समृद्ध गहपति का उल्लेख आता है।[5]

अष्ठाध्यायी मे बढइयो की कई श्रेणिया गिनाई गई है। एक वो बढई थे जो राजा के लिए काम करते है, जनसाधारण के लिए कार्य नही करते थे।[6] दूसरे कोटि के बढई वे थे जो सर्वसाधारण के लिए काम करते थे।[7] इनके भी दो भेद थे– प्रथम वे जो एक स्थान पर अपने ठीहे पर ही बैठ कर काम करते थे इनका सम्मान अधिक थे। दूसरे वो जो मजदूरी पर स्थान–स्थान पर जाकर कार्य करते थे। इसमे पहले को कौटतक्षा तथा दूसरे को ग्राम तक्षा कहा गया है। धम्मपद मे लकडी को खराद कर चिकना बनाने का कला का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार के कार्य करने वाले बढइयो की सज्ञा तच्चक थी।[8]

---

१ सयुक्त–निकाय १/८/१

२ जातक सख्या, २८३ वड्ढकीसूकर जातक।

३ सयुक्त–निकाय, तीसरा खण्ड, इक्कीसवॉ सयुक्त, नावसुत्त

४ समुद्वाणिज जातक, सख्या ४६६, जातक सख्या २८३,

५ अगुत्तर निकाय तृ० ६/६५
दारू कम्मिको गहपति भगवा एतदवोच – "अपि नु ते, गहपति, गहपति कुते दान दीयती" दीयाति मे भन्ते, कुले दान। त च खो ये ते भिक्खु आरञ्ञिका पिण्डपातिका पतुकूलिका अहरन्नो वा अरहत्तनग्ग वा सम्मपन्ना, तथा रूपेसु मे, भन्ते भिक्खूसु दान दीयति।

६ पाणिनी, अष्टाध्यायी, २/२/१ तक्षा राजकर्मणि प्रवर्तमान स्व कर्म जहाति।

७ पाणिनी, अष्टाध्यायी, ४/४/६५

८ धम्मपदं, पण्डितवग्गो, पृ० ३७, दास नमयन्ति तच्छका

बढई छोटी–छोटी वस्तुओ से लेकर रथ, नाव एव प्रासादो का भी निर्माण करते थे। वे चारपाई, पीढा, लोगो के लिए घर, नौका,[1] रथ,[2] कुर्सी, पलग ओखली, करघा, पादुकाए, आसन, मच आदि का निर्माण करते थे।

ये धनाढ्य लोगो के लिए बहुमूल्य पलग, जिसमे चादी, सोना आदि जडा जाता था, का निर्माण करते थे।[3]

राजगृह मे भगवान बुद्ध की भेट एक यानकार से हुई। उस समय वह रथ के पुट्ठा बना रहा था। बगल मे एक पूर्व यानकार का पुत्र उससे वह कला सीख रहा था। इससे स्पष्ट है कि बढई अपना पैतृक व्यवसाय परम्परागत रूप से प्राय अपना लेते थे।[4] यानकार के साथ–साथ रथकार का भी उल्लेख मिलता है। प्रतीत होता है कि यानकार और रथकार दोनो एक ही प्रकार का कार्य करते थे। रथकार सवारी के लिए एव युद्धोपयोगी दोनो ही प्रकार के रथो का निर्माण करते थे[5] अगुततर निकाय मे एक राजात ने रथकार को बुलाकर युद्धोपयोगी चक्के का निर्माण करने का आदेश दिया था।[6] रथ निर्माण के लिए उन्हे देखना पडता था कि किस वृक्ष की लकडी उनके पहिये के डण्डो, चक्र–नाभियो, बम्बुओ एव चक्के के घेरे के लिए अधिक उपयोगी होगी।[7]

---

१ जातक सख्या, ४६६

२ फन्दक जातक, सख्या ४७५

३ सयुत्तनिकाय, तृ० २२/६६/१०६, रञ्ञो सतो खत्तियस्स युद्धावसित्तस्य चतुरासी तिपलक सहस्सानि अहेतु।

४ म० नि० प्र० ५/४/२५

५ म०ि०द्वि० ८/३/५
अह हि भन्ते, रथिको सज्जातो कुसलो रथस्स अड्ग पच्चड्गान
सब्बानि मे रस्थस्स अड्ग पडगानि सुविदितानि
ठानसोवेत्त ये पटिमासेय्या" ति।

६ अगुत्तरी–निकाय, प्रथम ३/२/५
राजा सचेतनो रथकार आमनतेसि– इतो मे सम्म रथकार, छन्नमासान अच्चयेन सङ्गामो भविस्सति। सकिस्ससि मे सम्म रथकार, नव चक्कयुग कातुति।

७ जातक सख्या, ४७५

हाथी दॉत का कार्य-

हाथी दात का कार्य करने वाले दन्तकार कहलाते थे। ये अपने हस्त कौशल एव कल्पना शक्ति से हाथी–दात से विभिन्न वस्तुओ का निर्माण करते थे। हाथी दात एक मूल्यवान वस्तु के रूप मे जाना जाता था। दीघनिकाय मे बहुमूल्य पलग के सम्बन्ध मे कहा गया है कि सोने, चादी, हीरे के अलावा उसका एक पाया हाथी दात का था।[1]

हाथी दात के लिए जगलो मे जाकर हाथी का शिकार किया जाता था। महाजनक जातक मे कहा गया है कि हाथी अपने दात के कारण मारा जाता था।[2] हाथी दात का काम करने वालो की पूरी–पूरी बस्ती एक जगह बसी दिखायी देती है। इस प्राकर से उद्योग का एक प्रमुख केन्द्र काशी था।[3] अच्छा दात प्राप्त करने के लिए जीवित हाथी को ही पकडा जाता था, क्योकि मृत हाथी की अपेक्षा जीवित हाथी का दात अधिक अच्छा माना जाता था।[4] दीघनिकाय मे चतुर, हाथी दात का काम करने वाले दन्तकार द्वारा अच्छे तरह से सोधे गये दात से इच्छित वस्तु बनाने का उल्लेख मिलता है।[5]

हाथी दात से अनेकानेक वस्तुए बनायी जाती थी। इनसे विभिन्न प्रकार के आभूषण का निर्माण किया जाता था। वाराणसी के दन्तकार गली मे चूडी निर्माण का उल्लेख है।[6]

---

१ दीघनिकाय, महावग्ग, महासुदस्सन सुत्त, २/१७/६, चतुरासीति पल्लड्कसहस्सानि अहेतु सोवण्णमयानि रूपियमर्यानि दन्तमर्यानि सास्मयानि गोनकत्थतानि।

२ जातक सख्या, ५३६, अजिनम्हि हञ्जते दीपि नागो दन्तेहि हञ्जति,

३ कासाव जातक, सख्या २२१

४ जातक प्र०, पृ० ३२, द्वि०पृ० १६७, प० ४५, ४६ ब०पृ० ६१

५ दीघनिकाय १/२/३,
सेय्यथा वा पन, महाराज, दक्खो दन्तकारो वा दन्तकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकतस्मि दन्तस्मि, य सदेव दन्तविकति आकङ्खेय्य त तदेव करेय्य अभिनिष्फादेय्य।

६ जातक सख्या, २२१

इसके अतिरिक्त दर्पण के मूठ, बाजूबन्द[1], भी हाथी दात के बनाये जाते थे। सूचीघर,[2] अजनदानी,[3] दण्ड[4] खूटी[5] आदि का सामान्य प्रयोग की वस्तुए भी दात से बनायी जाती थी। रथ के सजावट, पलग निर्माण मे भी कीमती हाथी दात प्रयोग होत था। पूरा का पूरा हाथी दात से निर्मित प्रासाद का उल्लेख भी गया है।[6]

आखेट या शिकार

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे आखेट—दृश्यो का बाहुल्य है। शिकारियो का उल्लेख वारम्बार आता है। स्पष्ट है शिकार के माध्यम से जीविकोपार्जन करना तत्कालीन समाज का एक प्रमुख व्यवसाय था।

शिकारी जगलो मे जा पशुओ को मार, उन्हे बेचकर अपनी आजीविका चलाते थे। मस जातक मे एक शिकारी गाडी पर बहुत सा मास लिए शहर मे बेचने को जाता है।[7] जगह—जगह मास की दुकाने भी सजी होती थी। भेड मारने वाले, सुअर मारने वाले, मछली मारने वाले, बकरी—भेड और भैंस मारने वालो की दुकानो का उल्लेख निमितजातक मे आता है।[8]

पशुओ के साथ—साथ पक्षियो का शिकार भी किया जाता था पक्षियो को पकडने वाले चिडिमार नाम से जाने जाते थे। बटेरो का शिकार जगल से बहुत से बटेरो को पकडकर खरीददारो के हाथ उन्हे बेचकर अपनी जीविका चलाता था।[9] कभी—कभी पूरे—पूरे गाव द्वारा

---

१ जातक प्र०, पृ० ३२०, द्वि १६७

२ विनयपिटक, भिक्खु पातिमोक्ख, ५/८६

३ विनयपिटक, महावग्ग, ६/१/११ हिन्दी अनुवाद, पृ० २१८

४ विनयपिटक, चुलवग्ग, ५/१/१२

५ विनयपिटक, चुलवग्ग, ५/१/१० हिन्दी अनुवाद पृष्ट ४२४

६ जातक सख्या, २२०, धम्मद्ध जातक

७ जातक सख्या, ३१५, मस जातक

८ जातक सख्या, ५४१, निमि जातक

६ जातक सख्या ३३, सम्मोदन जातक

शिकार को जीविकोपार्जन का साधन बाने का उल्लेख है।[1] वाराणसी के कुछ प्रत्यन्त देशवासी जहा जहॉ बहुत मास मिलता था, वही–वहीं गाव बसा लेते थे एव जगल मे घूमकर मृगादि मार कर, मास लाकर अपने स्त्री बच्चो का पोषण करते थे।[2] शिकारी गाव का भी उल्लेख अनेकत्र आया है।[3]

मछुआरो का उल्लेख भी अनेकत्र मिलता है। ये नदी, जलाशय एव छोटे–छोटे गड्ढो से मछली पकडत्रे थे। मछली पकडने के लिए मछुआरे प्राय जाल का प्रयोग करते थे।[4] इसके अतिरिक्त चारा लगाकर अकुसी भी पानी मे डाली जाती थी। चारे के लोभ से मछली उसमे फस जाती थी।[5] रतिलाल मेहता के अनुसार शिकार उव मत्स्य–पाल राष्ट्रीय सम्पत्ति की वृद्धि मे महत्वपूर्ण योगदान देते थे।[6] कभी–कभी पूरे मछुआरो का एक गाव भी बसा होता था। कोशल राष्ट्र मे सहस्र घरो वाला मछुआरो का एक गाव था।[7]

शिकार के तौर तरीको का रोचक वर्णन हमे प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे मिलता है। मगध देशवासी मृगो को मारने के लिए जहॉ तहा लोग गढे खोदते, काटे लगाते, पत्थर–यत्रो (गुलले) को सवारते, कूट–पाश आदि बन्धन फैलाते।[8] कोशल देशवासियो ने अञ्जनवन उद्यान को घेर कर, उस उद्यान मे दरवाजा लगाकर, वहॉ एक पुष्करिणी खोदी एव घास बो दी। फिर हाथ मे दण्ड मुद्गर आदि ले, जगल मे घुस, झाडियो को पीटते हुए, मृगो को भगाते हुए उस उद्यान मे उसी प्रकार प्रविष्ट कराया जैसे गौवे वज्र मे दाखिल होती है, फिर उद्यान का दरवाजा बन्द कर उनका शिकार किया।[9] मृग आदि पशुओ को आकर्षित करने के लिए बहेलिये जगल मे निवाप (शिकार के लिए जगल मे बोये खेत) का निर्माण करते थे।[10] पशुओ के शिकार मे

---

१ साम जातक सख्या ५४०

२ जातक सख्या ४८६ महाउक्कुस जातक

३ जातक सख्या, ५०१, रोहन्त मिग जातक, जातक सख्या ५३३, चुल्लहस जातक

४ सयुत्तनिकाय, पहला खण्ड, दूसरा सयुत्त, ग्यारहवा सुत्त, हि०अनु०, पृ० ५४, जातक सख्या, ४१

५ सयुत्तनिकाय, दूसरा खण्ड, सोलहवा सयुत्त, हि०अनु०, पृ० २८७

६ रतिलाल मेहता प्री बुद्धिष्ट इण्डिया, पृ० १६२

७ लोसक जातक, सख्या ४१

८ जातक, लक्खण जातक, सख्या ११, मनुस्सा सस्सखादकान मिगान मारणत्थाय तत्थ तत्थ ओपात खणन्ति सूलानि रोपेन्ति पासाणयन्तानि सज्जेतिनत कूटपासादयो पारो ओड्डेन्ति।

६ जातक सख्या, ३८५, नन्दियमिगराज जातक

१०. मज्झिम निकाय, हि०अनु०, पृ० ६६, १/३/५

भेड मारने वाला हो– कोई सुअर मारने वाला हो– कोई चिडिमार हो– कोई हिरन मारने वाला हो और वह मृगो को मार–मारकर बेचता हो और उस कर्म से, उस जीविका के साधन से हाथी पर चढने वाला हो गया, घोडे पर चलने वाला हो गया हो, रथपर चढने वाला हो गया हो (या किसी दूसरी सवारी पर चढने वालो हो गया हो), भोग्य पदार्थो का स्वामी हो गया हो, अथवा बहुत ऐश्वर्यशाली हो गया हो?''[१]

यद्यपि बौद्धकालीन भारत मे हम स्थान–स्थान पर शिकारियो, चिडिमारो मछुआरो का उल्लेख पाते है परन्तु इसके व्यवसाय को सम्मान की दृष्टि से नही देखा जाता था। अगुत्तर निकाय मे इस प्रकार के क्रूर–कर्म करके जीवन–यापन करने वालो की निन्दा की गई है।[२]

चोर-

चोरी एव लूटपाट द्वारा जीविकोपार्जन करने वालो का भी एक वर्ग समाज मे विद्यमान था। प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे मार्ग मे जाते हुए व्यापारियो के समूह (सार्थ) एव अन्य व्यक्तियो के साथ लूट–पाट की घटनाओ के अनेक उल्लेख मिलते है। खुरप्प जातक मे पाच सौ गाडियो वाले व्यापारियो के काफिले पर चोरो के समूह द्वारा हमला करने का विवरण मिलता है।[३] इसी प्रकार एक अन्य जातक कथा मे रात्रि के समय मार्ग मे सोये हुए व्यापारियो को चोरो द्वारा विभिन्न अस्त्र शस्त्र लेकर घेरने की बात कही गयी है। साकेत से श्रावस्ती जा रहे भिक्षु एव भिक्षुणियो को मार्ग के बीच मे चोरो ने निकल कर लूटा और किन्हीं–२ को मार डाला।[४]

घर मे घूस कर भी 'लूट–पाट की जाती थी।[५] एक स्थल पर चोरो ने मन्त्रणा की ''ऐसी सुरग लगानी चाहिए। ऐसी सेध करनी चाहिए। 'सुरग' और 'सेध' मार्ग–सदृश है, 'तीर्थ' सदृश है। उन्हे रुकावट रहित, बाधा रहित करके ही सामान चुराना चाहिए और सामान लेकर जाते समय (आदमियो) को मारकर ही समान ले जाना चाहिए। ऐसा करने से कोई उठ (कर पकड)

---

१ अगुत्तरनिकाय, तृतीय खण्ड हि०अनु०, पृ० २०

२ अगुत्तर निकाय, खण्ड तीन, हि०अनु०, पृ० ८६

३ खुरप्प जातक, जातक सख्या २६५,

४ विनयपिटक, महावग्ग, १/३/१४;

५ गण्डतिन्दु जातक जातक सख्या ५२०,

नही सकेगा। चोर को शीलवान् नही होना चाहिए, उसे बद–मिजाज, कठोर एव जोर–जबरदस्ती करने वाला होना चाहिए।"[1]

ये चोर भी कभी–२ अपने सगठन बना लिया करते थे उत्तर पाञ्चाल नगर मे ५०० चोरो का निवासस्थान चोरग्राम था।[2] पकड जाने पर इन चोरकर्म करने वाले को शासन की ओर से कठोर से कठोर दण्ड दिया जाता था। काशी नरेश के सामने चार चोर लाये गये। राजा ने आज्ञा दी कि उनमे एक को हजार कॉटेदार कोडे लागये जाय। दूसरे को बेडियॉ पहनाकर जेल–खाने मे डाल दिया जाय, तीसरे पर शक्ति–प्रहार किया जाय एव चौथे को सूली पर चढा दिया जाय।[3] कणवेर जातक मे नगर मे डाका डालने वाले एक बलवान चोर को नगर कोतवाल ने उसके दोनो हाथ पीछे कस कर बॉध दिये, गर्दन मे लाल कनेर की माला डलवाकर, सिर पर ईट का चूरा बिखरवा दिया और उसे चौरस्ते–चौरस्ते पर चाबुक मारता हुआ, जोर से ढोल वजवाकर बधस्थल की ओर ले जाने का वर्णन है।[4] दीघ–निकाय मे इस चोरी–डकैती की समस्या का मनोवैज्ञानिक ढग से विचार करते हुए महाविजित राजा को उसके ब्राह्मण पुरोहित ने सलाह दी कि 'राजन् आप समझते है कि 'राजन आप समझते है कि डाकुओ की समस्या वध, बन्धन, हानि, निन्दा, निर्वासन से समूल समाप्त हो जायेगी परन्तु इस प्रकार के दण्ड द्वारा समस्या का समाधान असम्भव है। इस समस्या के समाधान के लिए आप कृषि की इच्छा रखने वाले मनुष्य को बीज एव भोजन आदि से सहायता करे, वाणिज्य के इच्छुक को पूँजी आदि दे, राजसेवा मे आने का उत्साह रखने वाले को भत्ता–वेतन दे – इस प्रकार अपने अपने काम (रोजगार) मे लगे लोग आपके जनपद को नहीं सतायेगे आप – – – को महान् (धन–धान्य की) राशि (प्राप्त) होगी, जनपद (=देश), पीडा रहित कटक रहित एव क्षेम–युक्त होगा।

---

१ महिलामुख जातक, जातक स० २६,

२ सत्तिगुम्ब जातक, जातक सख्या ५०३,

३ मूगपक्ख जातक, जातक सख्या ५३८,

४ कणवेर जातक, जातक सख्या ३१८,

गणिका -

हर काल एव देश की भॉति बुद्धयुग मे गणिकाएँ समाज मे विद्यमान थी। प्रसिद्ध गणिकाएँ नगर की शोभा एव सौभाग्य समझी जाती थी। वैशाली की गणिका आम्रपाली अभिरूप, दर्शनीय, परमरूपवती, नाच, गीत और वाद्य मे चतुर थी। उससे वैशाली नगरी की और भी शोभा एव प्रसन्नता बढ गयी थी।[१] इसी प्रकार अट्ठान जातक मे वाराणसी की वेश्या को नगर शोभा, सुन्दर एव सौभाग्यशालिनी कहा गया है। राजगृह का नैगम किसी काम से वैशाली गया वहॉ से लौटने पर उसने मगध नरेश बिम्बसार से कहा "अच्छा हे देव। हम भी गणिका रक्खे?" तब कुमारी सालवती का चयन हुआ।

समृद्ध नगरो मे गणिकाओ का मूल्य भी अधिक होता था। आम्रपाली चाहनेवाले मनुष्यो के पास पचास कार्षापण प्रति रात पर जाया करती थी। सालवती का मूल्य सौ कार्षापण प्रति रात्रि था।[२] जातक कथाओ मे तो इनकी फीस हजार, कार्षापण कही गयी है। वनारस की वेश्या सामा एव सुलसा की फीस हजार (कार्षापण) प्रति रात थी। काली (वनारस की वेश्या) के यहॉ भी जाने वाले हजार लेकर जाते जिसमे से ५०० कार्षापण तो काली लेती एव शेष ५०० वस्त्र, गन्ध, माला आदि पर खर्च होता। आगन्तुक को वेश्या के यहॉ के कपडे पहनने होते थे रात भर रह, प्रात काल वह पुन अपने कपडे पहन कर लौटता था।[३]

समाज के धनाढ्य एव मनचले वर्ग से इनका निकट का सम्बन्ध होता था। प्रतीत होता है कि इनकी आर्थिक स्थिति कभी कभी काफी अच्छी होती थी। सुलसा गणिका की सेवा मे पॉच सौ दासियॉ[४] रहा करती थी। इनकी यहॉ दरबान (=दौवारिक) नियुक्त होते थे।[५]

गणिकाएँ केवल रूप का व्यापार ही नहीं करती थी वल्कि उनके आकर्षण का एक प्रमुख कारण उनका नृत्य, गायन एव वादन की कलाओ मे पारगत होना था। राजगृह की कुमारी सालवती गणिका के रूप मे चयन के वाद थोडे काल मे ही नॉच, गीत, वाद्य मे चतुर हो गयी

---

१ विनयपिटक महावग्ग, ८/१/१,

२ अट्ठान जातक, जातक सख्या ४२५,

३ तक्कारिय जातक, जातक सख्या ४८१,

४ सुलसा जातक, जातक सख्या ४१६,

५ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१,

आम्रपाली तो इन कलाओ मे पारगत थी।[1] सयुक्त–निकाय मे कहा गया है कि जनपदकल्यानी का आगमन सुनकर वडी भीड एकत्र हो जाती है – भिक्षुओ! जब जनपदकल्याणी नाचते और गाने लगती है तब भीड और भी टूट पडती है।''[2]

गणिकाओ के लिए नगरशोभिनी एव जनपदकल्याणी[3] जैसे शब्द प्रकार करते है कि समाज मे इनकी स्थिति कुछ सम्मानजनक थी। आम्रपाली ने जब सुना कि भगवान् वैशाली आये है और मेरे आम्रवन मे विहार कर रहे है तो वह सुन्दर यानो के समूह के साथ अपने आराम की ओर गयी। भगवान बुद्ध को भिक्षु–सघ सहित भोज के लिए आमत्रित किया। लिच्छवियो ने भी भगवान् को आमत्रण दिया परन्तु वो अस्वीकृत हो गया क्योकि भगवान् ने आम्रपाली का निमन्त्रण पहले ही स्वीकार कर लिया था। उत्तम खाद्य–भोज्य से भिक्षु सघ को सतर्पित करने के बाद उसने अपना आम्रवन बुद्ध–प्रमुख भिक्षु सघ को दान कर दिया।[4] गणिकाओ को रूप–सौन्दर्य के प्रति सचेष्ट रहना पडता था। गर्भवती सालवती ने अपना सत्कार कम होने के डर से अपने पुत्र को कचरे के सूप के मध्य रखकर दासी से कूडे के ऊपर रखवा दिया था। अन्तत राजपुत्र की नजर उस नवजात शिशु पर गयी एव अन्त पुर मे दासियो द्वारा उसका पालन–पोषण हुआ। यही बालक आगे चलकर जीवन नाम से अपने समय का सबसे प्रसिद्ध वैद्य हुआ।[5] करूधम्म जातक मे एक ईमानदार नगरशोभिनी का प्रसग है। खर्चा देकर गये व्यक्ति की तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करती है।[6] वनारस की काली–वेश्या शराब, स्त्री एव जुए के व्यसनी भाई तुण्डिल का पतन रोकने का अथक प्रयास करती है।[7]

परन्तु सभी गणिकाएँ न (उपरोक्त विवेचन से जो स्पष्ट होता है) समृद्ध थी न ही चरित्रवान् थी। कही–२ वे बडा अमानवीय एव सवेदनहीन कार्य भी करती दिखाई पडती है। सामा वेश्या वध के लिए जाते हुए चोर पर आसक्त हो गयी। उसने नगर कोतवाल को रिश्वत अपने' प्रति आसक्त प्रतिदिन दिन के ग्राहक श्रेष्ठी–पुत्र को चोर के बदले वध करवाकर चोर

---

१ विनयपिटक महावग्ग, ८/१/१

२ सयुक्त–निकाय, हि० अ० पृष्ठ ६१६,

३ वही, दीघ–निकाय, हि० अ० पृष्ठ ८८,

४ दीघ–निकाय २/३,

५ विनयपिटक, ८/१/१,

६ कुरूधम्म जातक, जातक सख्या २७६,

७ तक्कारिय जातक, जातक सख्या ४८१;

को अपना स्वामी बनाया।[1] वनारस की एक वेश्या ने रोज हजार लाने वाले श्रेष्ठी–पुत्र के एक दिन खाली हाथ आने पर अपनी दासियो को आज्ञा दी "इसे यहॉ खडे होकर मुझे देखने मत दो। गर्दन से पकड निकाल कर दरवाजा बद कर दो।[2] वनखण्ड मे युवको के साथ गयी वेश्या सबको नशे मे देख आभूषण एव सब समान लेकर चम्पत हो गयी।[3]

गणिकावृत्ति निश्चय ही समाज मे साधारण रूप से हेय ही समझी जाती थी। गणिकावृत्ति को नीचकम्म एव उनके निवास को नीचस्थान तथा गणिकाओ को बुरी सिथिति मे पडी हुई स्त्रियॉ (दुरित्थीकुम्भदासी) कहा गया है।[4]

कदाचित् वेश्याये सब अपने जीवन से ऊबी होती थी। जातक कथाओ मे अनेक गणिकाये एक स्वामी की कामना कर जीवन व्यतीत करने की इच्छा करते दिखाई पडती है।[5]

राज कर्मचारी -

समाज का एक वर्ग राजकीय सेवाओ के माध्यम से जीविकोपार्जन करता था। दीघ–निकाय के लक्खण सुत्त मे विभिन्न राजकीय कर्मचारियो का उल्लेख राजा के परिवार के रूप मे हुआ है– "ब्राह्मण, गहपति, नैगम (= नागरिक सभासद), जानपद (= दीहाती सभासद), कोषाध्यक्ष, मन्त्री, शरीररक्षक, द्वारपाल, सभासद् राजा और अधीनस्थ कुमार – यह उनका (राजा) का बहुत बडा परिवार होता है।" राज्य का सर्वोच्च पद 'राजा' का होता था, जो प्राय पैतृक रूप से राज्य का उत्तराधिकारी होता था।[6] परन्तु उसे धर्मानुसार शासन करना होता था। "जिस समय राजा अधार्मिक हो जाते है, राजपुरुष भी उस समय अधार्मिक हो जाते है।" तेसकुण जातक मे धार्मिक राजा के गुणो का विवेचन किया गया है।[7] विभिन्न कार्यो मे राजा

---

१ कणवेर जातक, जातक सख्या ३१८,

२ अट्ठान जातक, जातक सख्या ४२५,

३ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/१३,

४ प्राचीन पूर्वोत्तर भारत, पृष्ठ २०५,

५ जातक सख्या ३१८ एव ४१६,

६ अट्ठान जातक जातक स० ४२५, जातक सख्या २७६

७ तेसकुण जातक, जातक सख्या ५२१,

को उचित परामर्श देने के लिए योग्य अमात्य 'पुरोहित' की नियुक्ति की जाती थी। पुरोहित को राजा का अर्थधर्मानुशासक कहा गया है। गोविन्द नामक ब्राह्मण पुरोहित के मृत्यु के बाद जब उसके योग्य तरुण पुत्र जोतिपाल से राजा दिशापति बोला – "आप जोतिपाल मुझे अनुशासन करे (= सभी कानोमे विचार पूर्वक सलाह दे)। आप जोतिपाल अनुशासन करने से मत हिचके। आपको आपके पिता के स्थान पर नियुक्त करता हूँ।

गोविन्द के आसन पर आपको अभिषिक्त करता हूँ।"[१] (इस पद पर प्राय ब्राह्मणो की नियुक्ति होती थी। राजा के साथ उपराजा का भी उल्लेख मिलता है जो प्राय राजा का बडा पुत्र[२] या छोटा भाई[३] होता था। अन्य उच्च राजकीय पदाधिकारियो मे सेनापति,[४] खजानची (कोषाध्यक्ष),[५] न्यायाधीश (व्यावहारिक महामात्य)[६], श्रेष्ठि,[७] एव अनेक कार्यो के सम्पादन करने वाले अमात्य महत्वपूर्ण थे। साहित्य मे अनेक प्रकार के आमत्यो राजग्रहण करने वाले आमात्य, द्रोणमापक महामात्य[८], सार्वर्थिक महामात्य,[१०] गणक महामात्य, द्वारपाल आमात्य[११] आदि का उल्लेख आया है। राज्य की ओर से युद्ध करने वाले विभिन्न पदाधिकारियो की एक बडी सख्या थी जैसे हस्ति–आरोहण (=हस्ति सैनिक), अश्वारोहण (=हस्ति सैनिक) धनुर्ग्राहि (=धनुर्धर), चेलक (=यद्धध्वज धारण), चलक (=व्यूह–रचनाकार), पिण्डदायक (=भोजन सामग्री पहुँचाने

---

१ दीघ–निकाय महागोविन्द–सुत्त, २/६

२ खण्डहाल जातक, जातक सख्या ५४२,

३ कुरुधम्म जातक, जातक सख्या २७६, जातक सख्या ५३६,

४ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६,

५ जातक सख्या ५२१,

६ विनयपिटक महावग्ग, १/३/४,
महासुपिन जातक, जातक सख्या ७७,

७ कुरुधम्म जातक, जातक सख्या २७६,
जातक सख्या,

८ कुरुधम्म जातक

६ विनयपिटक, महावग्ग, १/३/४

१० वही

११ कुरुधम्म जातक, जातक सख्या २७६,

वाले), उग्र राजपुत्र (=वीर राजपुत्र), महानाग (=हाथी से युद्ध करनेवाले) शूर, चर्म (=ढाल) योधी।[1] राजकीय सेवाओं से ही सम्बद्ध सारथी,[2] नगर–कोतवाली[3], आरामिक, कर्मकर (मजूदरी पर सेवा के विभिन्न कार्य करने वाले), द्वारपाल[4] संदेशवाहक[5], माण्डागारिक आदि की सूची बनयी जा सकती है।

दास एवं दासी

दासता वृत्ति द्वारा भी समाज का एक वर्ग अपनी जीविका चलाता था। दास–दासी अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करते हुए उनकी विभिन्न प्रकार से सेवा करते थे। विधुर जातक में चार प्रकार के दासों की गणना की गई है (१) दासी के पेट से जन्म ग्रहण करने से कुछ लोग 'दास' होते है। (२) धन के खरीदे जाकर भी 'दास' होते है (३) कुछ लोग स्वेच्छया 'दास' हो जाते है। (४) भय से मजदूर होकर भी लोग 'दास' हो जाते है।[6] दास सामाजिक, वैधानिक एवं आर्थिक दृष्टि से हेय स्थिति में थे। शाक्य राजकुमार एवं नागमुण्डा नामक दासी से उत्पन्न वासमखत्तिया का विवाह शाक्यो ने धोखाधड़ी से कौशल नरेश के साथ करवा दिया। इसी दासी

---

१. दीघ–निकाय, सामञ्जफल सुत्त, १/२

२. मूगपक्ख जातक

३. कणवेर जातक, जातक संख्या, ३१८

४. कुरुधम्म जातक, जातक संख्या, २७६; दी०नि०, ३/७

५. दस ब्राह्मण जातक

६. विधुर जातक, जातक संख्या ५४५;
आमाय दासापि भवन्ति हेके
धनेन कीतापि भवन्ति दासा,
सयम्पि हेके उपयन्ति दासा
भयापणुन्नापि भवन्ति दासा।।

वासमात्तिया की कोख से उत्पन्न कोशल नरेश का पुत्र 'विडॅडम' अपने नाना के यहा जाकर जिस तख्त पर बैठा था, उसे वहा कि दासी अपवित्र मान कर दूध–पानी से धोकर साफ करती है।[१]

सम्भ्रान्त व्यक्तियो के यहा बडी सख्या मे दास–दासी रहते थे।[२] दास–दासियो से सफाई, बच्चो का पालन–पोषण, खेत–खलिहान के कार्य, पानी लाने का कार्य, खाना बनाना आदि अनेकानेक प्रकार की सेवाये ली जाती थी। पूर्णादासी अपने लिए उखली, मूसल एव सूप का वर मागती है।[३] काक जातक मे मजदूरी पर धान कूटने वाली दासी का उल्लेख आता है।[४] दास–दासिया नदी के नट आदि पर पानी लेने जाते थी।[५] राजगृह का श्रेष्ठी सघ सहित भगवान् बुद्ध को भोजन का निमत्रण देकर अपने दास एव कमकरो को आज्ञा देता है कि समय पर खिचडी पकाओ, भात पकाओ, सूप (तेमन) तैयार करो" ।[६] कटाहक जातक मे दासी पुत्र का श्रेष्ठि पुत्र के विद्याध्यन काल मे सेवकाई कार्य करने का प्रसग आया है।[७] जीवक कौमार–नृत्य का पालन–पोषण अन्त पुर की दासियो द्वारा हुआ है।[८] एक गृह–दासी ने अतिथियो का वैसा ही आदर सम्मान किया जैसे एक मात्र अपने पुत्र का करती है।[९]

दासो से निम्नगुणो उपेक्षा की जाती थी। (१) (मालिक से) पहिले (बिस्तर से) उठ जाने वाले होते है (२) पीछे सोने वाले होते है (३) दिये को (ही) लेने वाले होते है (४) कामो को अच्छी तरह करने वाले होते है (५) कीर्ति प्रशसा फैलाने वाले होते है।[१०]

---

१ भद्दसाल जातक, जातक सख्या ४६५

२ विसाह जातक, जातक सख्या ३४०

३ नानच्छन्द जातक, जातक सख्या, २८१

४ काक जातक, जातक सख्या, १४०

५ कुणाल जातक, जातक सख्या, ५३६

६ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/३/१

७ कटाहक जातक, जातक सख्या १२५

८ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१

९ निमि जातक, जातक सख्या, ५४१

१० दीघ–निकाय ३/८

कभी–कभी स्वामी द्वारा अपने दासो के साथ कठोर व्यवहार करने का उल्लेख आता है। एक दासी पुत्र सेठ के यहा अपनी योग्यतानुसार भण्डारी का काम देखने लगा परन्तु उसे इस बात का शक था कि ये सेठ 'मुझसे हमेशा भण्डारी का काम नही लेगे। दोष देखकर ताडना देगे, बाध कर दाग देगे, दास बनाकर काम लेगे।'[१] श्रावस्ती मे कोसलराज प्रसेनजित के यहॉ महायज्ञ होने वाला था। दास, नौकर और मजदूर लाठी एव भय से धमकाये गये एव आसू गिराकर रोते हुए उनसे काम लिया जा रहा था।[२] महावेसन्तर जातक मे अवयस्क दास एव दासी के साथ एक ब्राह्मण क्रूर व्यवहार करता है।[३] महावग्ग मे उल्लेख आया है कि एक श्रेष्ठी भार्या, चिकित्सा हेतु नाक मे डाले गये घी को जो मुह से बाहर निकलता है दास–कर्मकरो के उपयोग (पैर मे मलने) हेतु रख देती है।[४]

दास–दासियो को दान तथा उपहार मे दिया जाता था एव उनका क्रय–विक्रय भी होता था। जुण्ह कुमार ने एक ब्राह्मण को सात सौ दासियॉ दान मे दी थी।[५] साकेत के श्रेष्ठीभार्या का ठीक किये जाने पर उसने प्रसन्न होकर जीवक को एक दास एव दासी दिया था।[६]

दास दासी के कभी कभी अपने स्वामी के यहा प्रेम–सबध एव विवाह हो जाया करते थे। राजगृह के श्रेष्ठी के पुत्री का अपने दास के साथ प्रेम सबध था। परन्तु श्रेष्ठी पुत्री माता पिता से भयभीत होकर दास को अपना स्वामी मान घर से भाग गयी। कालान्तर मे दो पुत्रो की माता होने पर श्रेष्ठी पुत्री वन पिता के घर के द्वार खडी थी तो श्रेष्ठी ने कहला भेजा "उन

---

१ कटाहक जातक, जातक सख्या १२५

२ सयुत्त–निकाय, **यपुंजसुत्त**, हि०अ०, पृ० ७२, दीघ–निकाय १/२

३ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या, ५४७

४ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१

५ जुण्ह कुमार जातक, जातक सख्या, ४५६

६ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१

दोनो ने हमारा बडा अपराध किया। इसलिए वह हमारी आखो के सामने खडे नही हो सकते। धन लेकर वे जाय एव बच्चो को छोड जाये।"[1] परन्तु इन सम्बन्धो को प्राय समाज मे अच्छा नही माना जाता था।[2]

दास–दासियो के प्रति उदार व्यवहार भी कभी–कभी किया जाता था। एक जातक कथा मे वर के रूप मे इच्छा की गयी है 'वह द्वेष जिसके पैदा होने से दासो का नाश होता है मुझमे न रहे।'[3] अगुत्तर निकाय मे मनुष्यो (दास दासियो) के व्यापार को अनुचित कहा गया है। महात्मा बुद्ध ने उस यज्ञ की निन्दा की जिसमे जीव–हिसा हुई तथा दासो–नौकरो ने दण्ड तर्जित, भय–तर्जित हो, अश्रुमुख होकर, रोते हुए सेवा की।[4] श्रमण गौतम दास–दासी के ग्रहण से विरत थे ये उनका आरम्भिक शील था। भगवान् शृगाल (सिगाल) गृहपति के पुत्र को उपदेश देते हुए कहते है[3]– "गृहपति–पुत्र! पाच प्रकार से आर्थिक (मालिक) को दास–कर्मकार रूपी निचली दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये (१) उनकी शक्ति के अनुसार कर्मान्त (काम) देने से। (२) भोजन–वेतन (भत्त–वेतन) प्रदान से (३) रोगी–सुश्रूषा से (४) उत्तम रसो (वाले पदार्थो) को प्रदान करने से (५) समय पर छुट्टी (वोसग्ग) देने से।"[5] निश्चत ही भगवान् बुद्ध का दासो के प्रति जो उदार उपदेश थे उनका कुछ न कुछ प्रभाव समाज पर आवश्य पडा होगा।

दासो को उनकी दारुता के बन्धन से मुक्त किये जाने के भी कुछ उदाहरण मिलते है। एक जातक कथा के अनुसार सपरिवार प्रव्रजित होने वाले ब्राह्मण ने अपने दासो को मुक्त कर दिया था।[6] स्वामी को पर्याप्त धन देकर भी दासता से मुक्त हुआ जा सकता है।[7] प्रव्रजित

---

१ चुल्लसेट्ठि जातक, जातक सख्या, ४

२ भद्दसाल जातक जातक सख्या, ४८

३ जातक सख्या ४८०

४ दीघ–निकाय १/३

५ दीघ–निकाय ३/८

६ सोणनन्द जातक, जातक सख्या, ५३२

७ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७

राष्ट्रपाल जब भिक्षा मागते हुए अपने पूर्व घर पर जा पहुचे तो इसकी सूचना घर की दासी ने राष्ट्रपाल की माता को दी। इस पर अत्यन्त प्रसन्न होकर राष्ट्रपाल की माता ने उस दासी को दासता से मुक्त कर दिया।[1]

वैद्य

चिकित्सा–कार्य द्वारा जीविकोपार्जन करना एक सम्मानजनक पेशा था। बुद्धकालीन कुछ चिकित्सको ने बडी ख्याति एव सम्मान अर्जित की। राजगृह के जीवक कौमारभृत्य ने तक्षशिला के सुप्रसिद्ध चिकित्सक से शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा समाप्त कर तक्षशिला से वापस राजगृह लौटते समय, साकेत के श्रेष्ठी–भार्या के सात वर्ष पुराने शिर–दर्द, जिसे दिगत–प्रसिद्ध वैद्य भी ठीक नही कर सके थे, उपचार किया। इस प्रथम चिकित्सा कार्य के बदले उसे सोलह हजार, दास, दासी एव अश्व–रथ प्राप्त हुआ। वह मगध–नरेश बिम्बसार की सेवा मे नियुक्त था। राजा के रनिवास एव बुद्ध–प्रमुख भिक्षु सघ की परिचर्य्या उसका प्रथम कर्तव्य था। जीवक की ख्याति सुदूर देशो मे फैल चुकी थी। उज्जैन–नरेश प्रद्योत ने पाडु–रोग से पीडित हो, अपना दूध मगध नरेश बिम्बसार के पास भेजकर उपचारार्थ जीविक की माग की थी।[2]

---

१ मज्झिम निकाय, सुत्तन्त सख्या, ८२, हि०अ०, पृ० ३३२

तेन खो पन समयेन साकेते सेट्ठिभरियाय तवस्सि सीसाबाधो होर्ति वहू महनता दिसापामोक्खा वेज्जा आगन्त्वा नासक्खिसु अरोग काते। अथ खो जीवको कोमारमच्चो सेट्ठिभरियाय सत्त्वस्सिक सीसावाध एकेनेव तत्थुकम्मेन अपकड्ठि। अथ खो जीवको कोमारमच्चो तानि सोलससहस्सानि आदाय दास च दासि च अस्सरथ च येन राजगह तेन पक्कानि। उपसकड्कनित्वा अभय राजकुमार एतदवोच– "इदमे, देव पक्मकम्म सोलससहस्सान्ति दासो च दासी च अस्सरथो व। तेन खो पन समयेन उज्जेनिय रञ्ओ पज्जोतस्स पण्डुरोगावाधो होति। अथ खो राजा ज्जातो रञ्जो मागधस्य सेनियस्स बिम्बसास्स सन्तिके इत पाहेसि– मच्ह खो तादिसो आबाधो, साधु देवो जीवन वेज्ज आणापेतु, सो मे तिकिच्छिस्सती ति।

२ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१

वैद्य शल्य क्रिया करते थे। भगवान् बुद्ध के पैर पत्थर–खण्ड से आहत होने पर जीवक ने तथागत के पाव की शल्य–चिकित्सा कर, खराब खून निकाल, सडा हुआ मास काट दवाई लगा, उसे निरोग किया।[1] एक भिक्षु को भगदर रोग था। आकाश–गोत्र वैद्य ने उसका शस्त्र–कर्म (चीडफाड) किया।[2] वाल रोग विशेषज्ञो को दारक तिकिच्छका कहा जाता था। मज्झिम–निकाय के सुनक्खत्तक सुत्तन्त मे[3] आपरेशन एव उसके बाद घाव की हिफाजत की प्रक्रिया का बडे विस्तार से उल्लेख आया है। "जैसे, सुनक्खत। कोई पुरुष गाढे विष के बुझे शल्य से विधा हो। उसके यार–दोस्त भाई–बन्द शल्यकर्ता भिषक् को ला उपस्थित करे। वह शल्यकर्ता भिषक् शस्त्र के घाव के मुख को चारो ओर से काट दे, फिर ऐषणी (औजार) से खोजकर शल्य को निकाल दे, फिर नि शेष जान किन्तु स–शेष विष को दूर करे। (फिर) वह (रोगी को) ऐसा कहे– हे पुरुष। तेरा शल्य निकल गया, विष–दोष नि शेषकरके हटा दिया गया, अब मुझे खतरा नहीं (किन्तु) (१) तू पथ्य (रुप्पाय) भोजन को ही खानाद्ध अ–पथ्य भोजन के खाने से, कही तेरा घाव बहने न लगे। (२) समय–समय पर घाव को धोना (३) समय–समय पर व्रण के मुख पर लेप करना, मसय–समय पर व्रण मुख न धोने से, समय–समय पर व्रण मुख के न लेप करने से, कही पीब–लोहू तेरे व्रण मुख मे न भर जाये। (४) हवा–धूप मे चलना–फिरना मत हवा धूप मे चलने–फिरने से कहीं मैल–टूड तेरे व्रण–मुख (घाव) मे न चले जाये। हे पुरुष। (५) घाव की हिफाजत करना, ।"

---

१ चुल्लहस जातक सख्या, ५३३

२ विनयपिटक, महावग्ग, हि०अनु०, पृ० २३०

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो भगन्दलावाधो होति। आकासगोतो वेज्जो सत्थकम्म करोति।

३ मज्झिम–निकाय, सुनक्खत सुत्तन्त, ३/१/५, हि०अ०, पृ० ४४७

चिकित्सा जड–मूल से भरी मुह बन्द थैलियॉ अपने पास रखते थे। रोगी को वे पोटलियो मे बाध कर दवा देते थे।[1] चिकित्सक की फीस का उल्लेख स्थान–स्थान पर आया है।[2] एक स्थान पर तरुण चिकित्सक राजा से कहता है "मुझे वैद्य की फीस की आवश्यकता नहीं । मै चिकित्सा करूगा। आप केवल औषध का मूल्य दे दे।[3] कभी–कभी चिकित्सक चिकित्सा के नाम पर ठगी भी करते थे। इसी कारण ब्रह्मजाल सुत्त मे ऐसी विद्या को तिरिच्छानविज्जा अर्थात् गलत् विद्या की सज्ञा दी गयी है।[4]

नहापित (नाई)

लोगो की हजामत एव केश बनाने का कार्य नाई करता था। **गगमाल जातक** मे राजा के गगमाल नामक नाई का उल्लेख है जो राजा की हजामत बनाने के लिए छुरे एव चिमटी का प्रयोग करता था।[5] कभी–कभी नाई राजा के व्यक्तिगत सेवक के रूप मे भी कार्य करते थे। वैशाली नरेश का नाई राजपरिवार की हजामत बनाने, उसके केशो को सवारने के साथ उनके मनोरजन के लिए शतरज बिछाता एव उनके और भी सभी कार्य करता।[6] प्रतीत होता है नाई अपने शागिर्द के साथ, धनी–मानी व्यक्तियो को स्नान भी कराते थे।[7] आतुमा मे भूतपूर्व हजाम (नहापित) भिक्षु के दो पुत्र थे जो अपनी पडिताई और कर्म मे सुन्दर, प्रतिभाशाली, दक्ष, शिल्प मे परिशुद्ध थे। जब भगवान आतुमा आये तो भिक्षु अपने पुत्रो से भगवान को भोजन के लिए आमन्त्रित करने को कहा। विनयपिटक के इस प्रसग से स्पष्ट होता है कि नाई झोली मे

---

१ दस ब्राह्मण जातक, सख्या ४६५

२ अलीनचित्त जातक सख्या, १५५

३ काम जातक सख्या, ४६७

४ दीघ–निकाय, सारनाथ, हिन्दी अनुवाद, पृ० ५१

५. गङ्गमाल जातक सख्या, ४२१

६ सिगाल जातक सख्या, १५२

७ दीघनिकाय, हिन्दी अनुवाद, पृ० २६

हजामत का समान लिये घर–घर मे फेरा लगाते थे। नाई को अपने कार्य के बदले लोग तेल, नमक, तडुल आदि खाद्य पदार्थ देते थे।[1] विनयपिटक मे उपालि हजाम का उल्लेख है जो चिरकाल से भगवान का सेवक रहा जिसे भगवान ने पहले प्रव्रजित कराया पीछे शाक्य कुमारो को।[2] आलारिक (बावर्ची) सेठ, राजा एव धनसमपन्न व्यक्तियो के यहा भोजन बनाने के लिए आलारिक (बावर्ची) रखे जाते थे। ये अपने स्वामी का चित्त प्रसन्न करके नाना ईनाम प्राप्त करते थे। सयुत्त–निकाय मे कहा गया है कि पण्डित होशियार रसोइया राजा या राजमत्री को नाना प्रकार के सूप परोस कर कपडा भी पाता है, तलब और इनाम भी पाता है।[3]

रसोइया भोजन बनाने के साथ उससे सम्बन्धित अन्य कार्यो को भी निबटाता था। कुसराजा मद्राजा की पुत्री प्रभावति के प्रेम मे वशीभूत हो प्रधान रसोइये के शिष्य के रूप मे उसके यहा रहता था। कुसराजा प्रात काल लकडी चीरता, काछ को अच्छी तरह बाधे, झुककर बरतन धोता, वैहगी से पानी लाता एव भोजन तैयार करता।[4]

पाषाण शिल्पी

भवन निर्माण से सम्बन्धित पत्थर का काम करने वालो को पाषाण कोत्तका कहते थे। इसी तरह ईटो का काम करने वाले इट्ढवड्ठक कहलाते थे। ये बडे–बडे स्तम्भो का निर्माण करते थे।[5] मज्झिमनिकाय मे पत्थर का काम करने वाले इन कलाकारो को पचकागथपति (स्थपति या थवई) कहा गया है।[6] अठ्ठकथा के अनुसार वसूला, कुलहाडी, रुखानी, हथौडा और काले सूत की नली रखने के कारण इन्हे पचकाग कहा जाता था। बब्बु जातक मे उल्लेख आया है कि बोधिसत्व एक बार पत्थर–कट कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर वह अपने शिल्प मे

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ६/६, ११, हिन्दी अनु०, पृ० २५४
अथ खो सो वुड्ढपब्बजितो ते दारके एतदवोच– "भगवा किर, ताता, आतुम आगच्छति महता भिक्खुसङ्गेन सिद्धि अड्तेलसेति भिक्खुसतेहि। गच्छथ तुम्हे, ताता खुरमण्ड आदाय नालियावापकेन अनुधकरक अनुधरक आहिण्डथ लोण पि, तेल पि, तण्डुल पि खादनीय पि सहरथ, भगवतो आगतस्स यागुपान करिस्सामा ति।"

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ७/१/२, हि०अ०, पृ० ४७६

३ सयुत्त निकाय, ५/४५/१/८

४ कुस जातक सख्या, ५३१

५ जातक फॉसबाफल, जि० १, पृ० ४७८

६ मज्झिम–निकाय, नालदा, पालि प्रकाशन, द्वितीय, ६/१/१ पञ्चङ्गोथपति

पारगत हो गये। पहले जहाँ गाँव था पर अब वह उजड गया था, वहाँ जाकर पत्थर उखाड कर उन्हे तराशते थे।[1] राजगृह का श्रेष्ठी जोतिक पत्थर निर्मित महल मे रहता था, जिसकी भव्यता देखकर कुमार अजातशत्रु ने ईर्ष्या का अनुभव किया।

नलकार

बास को टोकरी, चटाई आदि बनाने वालो की सज्ञा नलकार थी। श्रावस्ती के समीप एक नलकार ग्राम था।[2] एक जातक कथा मे प्रपात–युक्त पर्वत की छायो दो पिता–पुत्र नलकारो के चटाई बुनने का उल्लेख है।[3]

दर्जी

दर्जी लोगो के वस्त्र सिलने का कार्य करते थे। महाउम्मग्ग जातक मे उल्लेख आया है कि बोधिसत्व ने सारे गाव वालो के कपडे सिलकर एक दिन मे ही एक हजार का अर्जन किया।[4] गाव की अपेक्षा नगर की दर्जी अधिक फैशनेबुल वस्त्र सिलते थे। कटाहक नामक दासी–पुत्र जो एक सेठ को धोखा देकर, उसका दामाद बन गया था गाव के दर्जियो के सिले वस्त्र को नापसन्द करता था।[5]

मालाकार

माला तत्कालीन प्रसाधन की एक आवश्यक वस्तु थी। अलकरण के प्रसगो मे फूल–माला का उल्लेख सहज ही दृष्टिगत होता था।[6] इसके अतिरिक्त पूजा–अर्चना मे भी मालाओ का प्रयोग किया जाता था।[7] माला बनाने वालो की सज्ञा मालाकार थी। बुद्धकालीन भारत मे

---

१ बब्बु जातक सख्या, १३७

२ मज्झिम निकाय, २/५/१, हि०अ०, पृ० ४१६

३ गामणीचण्ड जातक सख्या, २५७

४ महाउम्मग्ग जातक सख्या, ५४६

५ कटाहक जातक सख्या, १२५

६ अलंकरण के लिए

७ जातक सख्या, ४७६

मालाकारी एक विकसित शिल्प थी। विनयपिटक के चुल्लवग्ग मे मालाओ के विभिन्न रूपो का उल्लेख है– इकहरी बॅटी माला, दोनो और से बॅटी माला, मजरिका– (मजरी), विधूतिका, वटसक (अवतसक), आवेल (आपीड) एव उस्च्छद।[1]

जीवकोपार्जन के अन्य साधन

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे उपरोक्त शिल्पो–व्यवसायो के अतिरिक्त जीवकोपार्जन के अन्य साधनो का भी विस्तृत उल्लेख मिलता है। अगविद्या, उत्पादविद्या, स्वप्नविद्या, लक्षणविद्या, मूषिक–विष विद्या, अग्नि–हवन, दर्वी–होम, तुष–होम, तण्डुल–होम, घृतहोम, तैल–होम, मुख मे घी लेकर कुल्ले से होम, रुधिरहोम, वास्तुविद्या, क्षेत्रविद्या, शिव विद्या, भूतविद्या, भूरि विद्या, सर्पविद्या, विष विद्या, विच्छू के झाड–फूक की विद्या, मूषिक विद्या, पक्षि विद्या, शर परित्राण (मन्त्र जाप जिससे लडाई मे वाण शरीर पर न गिरे) एव मृगचक्र।[2] इन विद्याओ मे या तो विष को दूर करने के झाड–फूक के उपाय, मत्र–जाप तथा अनुमान का प्रयोग अथवा उसके सम्बन्ध मे लक्षणो आदि से जानकारी कराने मे जो चपलता, चतुराई, तिलस्म और जादूगरी के पुट दिये थे, इसलिए इन्हे हीन विद्या की सज्ञा दी गयी है।[3]

दूसरो का मनोरजन कर जीविकोपार्जन करने वालो का भी उल्लेख मिलता है। वाराणसी के एक गाव मे पाटल नट रहता था वह अपनी भार्या को ले शहर जा नाच–गा, उत्सव मना धनार्जन करता था।[4] सयुत्त निकाय मे तालपुत्र नटग्रामणी का उल्लेख मिलता है।[5]

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १/३/१, हिन्दी अनुवाद, पृ० ३४६

२ दीघ निकाय, १/१/३
अड्ग निमित्त उप्पात सुपिन लक्खण भूसिकच्छिन्न अग्गिहोम दब्बिहोन थुसहोन कणहोन तण्डुलहोन सप्पिहोम तेलहोम मुखहोन लाहितहोन अड्गविष्जा वत्थुविज्जा खेत्तविज्जा सिवविज्जा भूतविज्जा भूरिविज्जा अहिविज्जा विसविज्जा विच्छिकविज्जा मूसिकविज्जा सकुणज्जिा वायसविज्जा पक्कज्सान सरपस्तिाण मिगचक्क।

३ प्राचीन पूर्वोत्तर भार, प्रभा त्रिपाठी, पृ० २८५

४. पदकुसल माणव जातक सख्या, ४३२

५ सयुत्तनिकाय, ४/४०/१/२

गन्धर्व वीणा आदि वाद्यो को वजाकर लोगो का मनोविनोद करते थे। गुत्तिल–गन्धर्व सुप्रसिद्ध वीणा वादक था।[1] मल्ल–युद्ध (पहलवान–युद्ध) देखने मे लोग बडी रुचि दिखाते थे।[2] स्त्रियॉ भी पहलवान (मल्ली) होती थी।[3]

दीघ निकाय के ब्रह्मजाल सुत्त मे इन दर्शनो (खेल–तमाशो) की एक सूची मिलती है।

१ नृत्य
२ गीत
३ वाजा
४ नाटक
५ लीला
६ ताली
७ ताल देना
८ घडे पर तबला बजाना
६ गीत–मण्डली
१० लोहे की गोली का खेल
११ बॉस का खेल
१२ धोपन
(उस समय का एक खेल)
१३ हस्ति युद्ध
१४ अश्वयुद्ध
१५ महिष युद्ध
१६ वृषभ युद्ध
१७ बकरो का युद्ध
१८ भेडो का युद्ध
१६ मुर्गो का लडाना
२० बत्तक का लडाना
२१ लाठी का खेल
२२ मुष्टि युद्ध
२३ कुश्ती
२४ मारपीट का खेल
२५ सेना
२६ लडाई का चाले

परन्तु इन कलाओ का बहुत सम्मान नही दिया जाता था। श्रमण एव ब्राह्मण को इससे दूर रहने के लिए कहा गया था।

---

१ गुत्तिल जातक सख्या, २४३

२ घ्रत जातक सख्या, ४५४

३ विनयपिटक, चुललवग्ग, १०/४/१२

४ दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त, १/१/२
जच्च गीत वदित पेक्ख अक्खान पाणिस्सर वेताल कुम्भथूण सोमनक चण्डाल वस धोवन हत्थियुद्ध अस्सयुद्ध महिसयुद्ध उसमयुद्ध अजयुद्ध मेण्डयुद्ध कुक्कुटयुद्ध वट्टकयुद्ध दण्डयुद्ध मुट्टियुद्ध निब्बुद्ध उयुयोधिक वलग्गं सेनाब्यूह अनीकदस्मन इति वा इति, एवरूपा विसूकदस्सन पटिविरतो समणो गोतको ति।

अध्याय-५

व्यापार एवं वाणिज्य

व्यापार एवं वाणिज्य

बुद्धकालीन भारत को व्यापारिक दृष्टि से नयी दिशाओ मे प्रगति करते हुए हम पाते है। इस युग मे न केवल अन्तर्देशीय व्यापार उन्नत हुआ, बल्कि विदेशो से भी प्रगाढ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए। देश के बडे–बडे व्यापारियो (सेठो) के पास अपार धन–सम्पदा थी। श्रावस्ती के प्रसिद्ध व्यापारी अनाथपिण्डिक ने जेत राजकुमार का उद्यान, गाडियो पर सोने की मोहर ढुलवाकर, पूरी भूमि पर स्वर्ण–मुहरे बिछवाकर खरीदा था।[१] साकेत गे सेठ धनजय ने अगुत्तर–निकाय की अट्ठकथा के अनुसार, अपनी पुत्री विशाखा के लिए ६ करोड मूल्य से महालता नामक आभूषण बनवाया था और उसके स्नान–चूर्ण के मूल्य के लिए ५४०० गाडी धन दिया था। राज्य मे इन धनाढ्य सेठो का होना प्रतिष्ठापूर्ण माना जाता था। कोशल नरेश प्रसेनजित् के राज्य मे कोई बडा सेठ नही था इसिलए उसकी प्रार्थना पर मगध नरेश बिम्बसार ने अपने राज्य के प्रसिद्ध सेठ धनजय को कोसल मे बसने के लिए भेज दिया, जिसने साकेत मे जाकर अपना व्यवसाय आरम्भ किया।[२]

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ६/३/१,

२ डॉ० भरतसिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ५३४,

व्यापार मे लाभ की पूरी सम्भावना थी। सुत्त–निपात मे कहा गया है जैसे प्यासा मनुष्य शीतल जल की इच्छा करता है, वैसे ही व्यापारी महालाभ की[1] व्यापार एव कृषि–कर्म की तुलना करते हुए, व्यापार मे कृषि की अपेक्षा समस्याये कम बतायी गयी है और कहा गया है कि इसमे सफल होने पर लाभ भी अधिक होता है।[2]

चुल्लसेट्ठि जातक मे एक रोचक कथा मिलती है, जिसमे एक कुलपुत्र ने गली के मरे चूहे से अपना व्यापार आरम्भ करके चार माह मे ही लाखो रुपये अर्जित किये। भगवान् बुद्ध के शब्दो मे "(चतुर) मेधावी (पुरुष) थोडी सी भी आग को फूँक मारकर बढा लेने की तरह, थोडे से भी मूलधन से अपने को उन्नत कर लेता है"[3] अगुत्तर निकाय दुकानदान के तीन प्रमुख गुणो का उल्लेख करता है। (१) दृष्टिसम्पन्न व्यापारी वस्तुओ के खरीदने के ढग से सम्बन्धित गुण है, (२) क्षमतासम्पन्न उसे कहते थे जो क्रय–विक्रय के योग्य हो जाते थे (३) एव दुकानदान को दृढ विश्वासी होना चाहिए।"[4]

---

१ तसितो वुदक सीत महालाभ व वाणिजो
छाय धमम्माभितत्तो व तुरिता पब्बतमारुहु
सुत्त–निपात पारायणवग्गो, वत्थुगाथा, ५/१

२ कसि यो माणव, कमट्ठान महट्ठ महाकिच्च महाधिकरण महासमारम्भ सम्पज्जमान महप्फल होति। वणिज्जा मेव यो, माणव, कमट्ठान अप्पट्ठ अप्प किच्च अप्पाधिकरण अप्पसमारम्भ महप्फल होति।
– म० नि० ४६/१/२

३ अप्पकेनापि मेधावी पाभतेन विचक्खणो,
समुट्ठापेति अत्तान अणु अग्गि व सन्धम।
चुल्लसेट्ठि जातक, जातक सख्या ४,

४ अगुत्तर –निकाय, तृतीय ३/२/१०

व्यापार के क्षेत्र मे साझेदारी भी दिखाई पडती है। कूट व्यापारी और पण्डित व्यापारी, दो श्रावस्ती निवासी व्यापारी साझा व्यापार करके, पूर्व से पश्चिम घूमते हुए बहुत मुनाफा कमा कर लौटे।[1] महावणिज जातक मे कहा गया है कि नाना राष्ट्रो से आये हुए व्यापारियो ने 'समिति' बनाई और एक को प्रधान बना धन कमाने के लिए चल पडे।[2] सेरिव देश के दो व्यापारी नील वाहिनी नदी पार करके अन्धपुर नामक नगर मे गये। जहॉ उन्होने नगर की गलियो को आपस मे बॉट लिया। बोधिसत्व अपने हिस्से की गलियो मे सौदा बेचते, दूसरा बनिया अपने हिस्से की गलियो मे।[3]

परन्तु व्यापारियो की इस साझेदारी के आधार का कुछ स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालिक लाभ एव सुविधा के लिए व्यापारी आपस मे समझौता कर लेते थे।

ऋण ने भी व्यापार को प्रोत्साहित किया। जो व्यक्ति ऋण लेकर व्यापार करता था वह सफलता की अवस्था मे ऋण को लौटाने के बाद भी अत्यधिक धन कमा लेता था जिससे

---

१ कूटवाणिज जातक, सख्या २१८,

२ वाणिजा समिति कत्वा नाना रट्ठातो आगता
धनहाराय पक्कमिसु एक कत्वान गामणि।।
महावाणिज जातक, जातक सख्या ४६३,

३ अतीते इतो पञ्चमे कप्पे बोधिसत्तो सेखिरट्ठे सेरिवो नाम कच्छपुटवाणिजो अहोसि/ सो सेरिवा नाम एकेन लोलकच्छपुटवाणिजेन सद्धि वोहारत्थाय गच्छन्तो नीलवाहिनि नाम नींदउत्तरित्वा अन्धपुर नाम नगर पविसन्तो नगरवीथियो भाजेत्वा अत्तनो पत्तवीथिया भण्ड विक्किणन्तो चरि। इतरोपि अत्तनो पत्तवीथि गण्हि/— सेरिवाणिज जातक, सख्या ३,

उसके परिवार का पालन–पोषण सुविधापूर्वक हो जाता था।[1] सम्पन्न श्रेष्ठी छोटे व्यापारियो को ऋण देते थे। श्रावस्ती के महासेट्ठी अनाथपिण्डिक ने बहुत से व्यापारियो को, हाथ की लिखित लेकर, अट्ठारह करोड धन ऋण दिया था। महासेट्ठी व्यापारियो से वह धन नही मॉगता था।[2] सूद पर पैसे देना, व्यापार मे धन लगाना समाज मे प्रचलित था, परन्तु भिक्षुणियो के लिए इन सब कार्यों को करना निषिद्ध था।[3]

बढइयो ने भी तुम्हारे लिए चारपाई बनायेगे, तुम्हारे लिए पीढा बनायेगे, तुम्हारे लिए घर बनायेगे, कह लोगो से बहुत ऋण लिया था। किन्तु कुछ भी करके नही दे सके। कर्जख्वाहो से पीडित होकर बढइयो ने अपना ग्राम छोडकर अन्यत्र जाने का निश्चय किया।[4]

व्यापारियो को राजकीय सहायता के रूप मे भी धन प्राप्त होता था। राजा महाविजित को ब्राह्मण पुरोहित ने सलाह दी "राजन! जो कोई आपके जनपद मे वाणिज्य करने का उत्साह रखते है, उन्हे आप .पूॅजी (प्राभृत) दे। (इस प्रकार) वह लोग अपने काम मे लगे, राजा के जनपद को नहीं सतायेगे। आप को महान् (धन–धान्य की) राशि (प्राप्त) होगी, जनपद (=देश) भी पीडा–रहित, कटक–रहित क्षेम–युक्त होगा।"[5]

---

१ अखिलेश्वर मिश्रा, शोध प्रबन्ध, पृष्ठ १५१,

२ बहु वोहारुपजीविनोपिस्स हत्थतो पण्णे आरोपेत्वा अट्ठारसकोटिसख धन इण गण्हिसु। ते महासेट्ठि न आहरुपेति/– खदिरगार जातक, सख्या ४०

३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ५२१

४ समुद्दवाणिज जातक,

५ दीघ–निकाय, कुटदन्त–सुत्त १/५

व्यापारी कभी–कभी अधिक धन अर्जित करने के लोभ मे पडकर छल–कपट का सहारा ले लेते थे। एक सेठ ने बीस हजार प्रतिशत लाभ प्राप्त किया, जिसमे एक हजार कर्षापण गाडी पर रखने, ले जाने, रक्षको एव प्रतिहारो को घूस देने मे व्यय किया।[1] राजदरबार मे हाथी, घोडे, मणि, सुवर्ण आदि विभिन्न वस्तुओ का मूल्य निश्चित करने वाले अर्घ–कारक ने सरहद्दी घोडे के व्यापारी से रिश्वत लेकर **तण्डुल-नलिका** का मूल्य भीतर–बाहर (=सब) वाराणसी बताया।[2] धन के लोभ से व्यापारी तराजू की डण्डी मारते थे वे इस प्रकार के कूटकर्म करके उसे वैसे ही छिपाते थे जैसे मछली पकडने वाला मछली पकडने के काटे को।[3] इसी प्रकार अन्यत्र एक व्यापारी सुवर्ण की थाली को मुफ्त लेने के चक्कर मे सुवर्ण थाली की स्वामिनी के साथ दुर्व्यवहार करता है।[4]

ऐसा प्रतीत होता है कि लोगो को अर्थशास्त्र सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाती थी। विनयपिटक के महावग्ग मे उल्लेख आया है कि– उपालि के माता–पिता के मन मे ऐसा हुआ 'यदि उपालि लेखा सीखेगा तो उसकी अँगुलियॉ दुखेगी। यदि उपालि गणना (=हिसाब) सीखे तो उसकी जॉघ दुखेगी यदि उपालि रूप को सीखेगा तो उसकी ऑखे दुखेगी।'[5] यहॉ पर लेखा एव गणना का अर्थ तो स्वत स्पष्ट है 'रूप' को अर्थ मुद्रा शास्त्र या सर्राफी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे रूपाध्यक्ष नामक अधिकारी का उल्लेख आया है जो मुद्रा–निर्माण विभाग से सम्बन्धित था।

---

१ जातक कालीन भारतीय सस्कृति, पृष्ठ १६२,

२ तण्डुलनालि जातक, सख्या ५,
"किमग्घति तण्डुलनालिकाय
अस्सान मूलाय वदेहि राज!
वाराणसि सन्तरवाहिरन्त
अयमगघति तण्डुलनालिका।।"

३ निमि जातक, जातक संख्या ५४१,

४ सेरिवाणिज जातक, सख्या ३,

५ विनयपिटक, महावग्ग, १/३/६,

व्यापारिक केन्द्र (वाजार)

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य से हमे बाजारो का विवरण प्राप्त होता है। शहरो मे विभिन्न वस्तुओ की दुकाने सजी रहती थी जो मिलकर एक वाजार का रूप धारण कर लेती थी। मिथिला नगरी सुविभक्ता और अन्दर अनेकानेक दुकानो वाली थी।[1] विनयपिटक के चुल्लवग्ग मे हर्रापाक (पसारी) की दुकान का उल्लेख मिलता है।[2] वाजार शहरो के अतिरिक्त गॉवो मे भी लगते थे। गॉव मे उत्पादित वस्तुओ की विक्री प्राय गॉव के बाजार मे ही हो जाती थी। कभी–कभी बचे हुए माल को शहर पहुॅचा दिया जाता था।[3] बनारस मे हजार लोहारो वाला एक लोहार–गॉव था। आस–पास गॉव के लोग इस लोहार गॉव मे कुल्हाडी, फरसा, फाल, सूई एव नाना प्रकार के अस्त्र–शस्त्र बनवाने के लिए आते थे।[4]

भेड, सुअर, मछली, बकरी आदि पशुओ का वध करके इनके मॉस को दुकानो मे रखकर बेचा जाता था।[5] घ्रत जातक मे गन्धि (सुगन्धि) की दुकान का प्रसग आया है।[6]

---

१ कदाह मिथिलि फीत सुविभत्तन्तरापण/ महाजनक जातक, सख्या ५३६,

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १०/४/६

३ मेहता, प्री बुद्धिष्ट इण्डिया, पृ० २५१

४ सूची जातक,

५ निमि जातक, संख्या ५४१,

६ घ्रत जातक, सख्या ४५४,

प्रारम्भिक बौद्ध–साहित्य से स्पष्ट है कि एक विशिष्ट स्थान पर एक विशिष्ट वस्तु की पूरी एक वीथि (गली) होती थी जहॉ उस वस्तु का विक्रय होता था। श्रावस्ती मे कमल–गली थी जहॉ से स्थविर आनन्द ने नील–कमलो को खरीदा था।[1] वाराणसी की दन्तकार–गली मे हाथी दॉत की वस्तुऐ निर्मित की एव बेची जाती थी।[2] घ्रत जातक मे धोबी गली का उल्लेख मिलता है।[3] इसी प्रकार कभी–कभी एक ही प्रकार के व्यवसाय करने वालो का पूरा–पूरा एक गॉव बसा हुआ होता था जैसे मछुआरो का गॉव, बढइयो का गॉव एव लोहारो का गॉव आदि।

नगर–द्वार पर भी बाजार लगता था। हरी सब्जियॉ उत्तरी पाचाल के चार द्वार पर बेची जाती थी।[4]

छोटे–छोटे व्यापारी घूम–घूम कर फेरी लगाते हुए अपने सामानो को बेचते थे। वैहगी मे समान रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण कर उसका विक्रय किया जाता था। महाचण्डाल गामडे का एक चण्डाल प्रात काल आरण्य मे जा पके मधुर फलो से वैहगी भर, उन्हे बेचकर अपने परिवार का पोषण करता था।[5] आज के सब्जी–विक्रेता की तरह उस समय भी गाडियो मे माल रखकर बेचा जाता था। मस जातक मे एक शिकारी अपनी गाडी बहुत से मास से भरकर शहर मे उसे बेचने के लिए जाता दिखाई पडता है।[6]

---

१ पदुम जातक सख्या २६१,

२ कासाव जातक, सख्या २२१,

३ घ्रत जातक, सख्या ४५४,

४ अखिलेश्वर मिश्र, शोध प्रबन्ध पृष्ठ १५३,

५ अम्ब जातक, सख्या ४७४,

६ मस जातक, सख्या ३१५,

कुछ बनिये लोगो के दरवाजे–दरवाजे आवाज देते हुए अपना माल बेचते थे। सेरिव नामक देश मे दो बनियो का गली–गली आवाज देते हुए सौदा बेचने का वर्णन आया है। ये फेरी वाले थैली मे अपना सौदा एव नाप–तौल हेतु तराजू अपने साथ लिए रहते थे।[1]

अन्तर्देशीय एवं विदेशी व्यापार-

स्थल मार्ग

व्यापारिक प्रगति मे मार्गो की विशिष्ट भूमिका होती है। प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य से स्पष्ट है देश के सभी प्रमुख नगर एव व्यापारिक केन्द्र थल तथा जल–मार्गो द्वारा एक दूसरे से सम्बद्ध थे और आगे बढकर ये मार्ग भारत को दूसरे देशो के साथ सम्बद्ध करते थे।

बुद्धकालीन भारत के व्यापार पर जब हम विचार करते है तो हमे अनेको बार माल से लदी हुई ५०० गाडियो का समूह एक स्थान से दूसरे स्थान व्यापार हेतु जाता हुआ दिखाई देता है। विनय–पिटक मे वेलठ्ठकच्चान (=कात्यायन) गुड के घडो से भरी पॉच सौ गाडियो के साथ राजगृह से अधकविद जाने वाले रास्ते पर जाता है।[2] दीघ–निकाय के पायासिराजञ्ञ–सुत्त मे पॉच–पॉच सौ गाडियॉ (कुल एक हजार) अपने दो मालिको को नेतृत्व मे पूर्व देश से पश्चिम देश (=जनपद) को जा रही थी।[3] जातको मे तो ऐसे चित्रो की भरमार है।

---

१ सेरिवाणिज जातक, सख्या ३,

२ विनय–पिटक, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ २३६,

३ दीघ–निकाय, पायासिराजञ्ञ सुत्त २/१०, हि० अनु० पृष्ठ २०७

स्पष्ट है कि व्यापारी समूह देश के एक कोने से दूसरे कोने तक जाते थे। ये यात्री विभिन्न राजमार्गो, महापथो एव महामार्गो से अपने इष्ट स्थान पर जाते थे।

बुद्धकाल का सबसे प्रसिद्ध तथा प्रचलित महापथ वह था जो पूर्वी भारत को पश्चिमी भारत से जोडता था।[1] यही मार्ग 'उत्तरापथ मार्ग' कहलाता था। यह मार्ग बिहार राज्य के राजगृह से चलकर उत्तर–पश्चिम मे गन्धार राष्ट्र की राजधानी तक्षशिला तक पहुॅचता था। राजगृह से प्रारम्भ होने वाला यह महामार्ग वैशाली, नालदा, पाटलिपुत्र, वाराणसी, प्रयाग, कान्यकुब्ज, साकास्य, सोरो, वेजर, मथुरा, इन्द्रप्रस्थ, शाकल से होता हुआ तक्षशिला पहुॅचता था।

राजगृह का जीवक कौमारभृत्य राजगृह से सुप्रसिद्ध वैद्य के पास तक्षशिला सम्भवत इसी मार्ग का अनुसरण करके गया था। यद्यपि उसकी इस यात्रा का कोई स्पष्ट विवरण नही मिलता है, परन्तु लौटते समय जीवक साकेत होते हुए राजगृह आया था, जहॉ उसने श्रेष्ठी–भार्या के सात वर्ष पुराने सिर–दर्द को ठीक कर दिया। मूल स्र्वास्तिवाद के विनय–वस्तु मे हमे जीवक की इस यात्रा का पूरा विवरण मिलता है।[2] इस ग्रन्थ के अनुसार जीवक तक्षशिला से चलकर पहले भद्रङ्कन नगर मे आया,[3] फिर वहॉ से उदुम्बरिका पहुॅचा।[4] उदुम्बरिका से जीवक रोहीतक (वर्तमान रोहतक) आया।[5] वहॉ से चलकर वह मथुरा आया[6] और फिर यमुना के तट पर गया।[6] 'यहॉ से चलने के बाद वह वैशाली पहुॅचा[8] और फिर क्रमश यात्रा करते हुआ राजगृह पहुॅचा।

---

१ दीघ–निकाय के पायासिराञ्ञ सुत्त, अपण्णक जातक आदि मे यात्रियो द्वारा इसी महापथ का प्रयोग किया गया है।

२ भरतसिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ५३८

३ ततो जीवकोऽनुपूर्वेण भद्रकर नगरमनुप्राप्त ।
गिलगित मेनुस्किप्ट्स, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३२

४ सोऽनुपूर्वेण उदृम्बरिकामनुप्राप्त । वही, पृष्ठ ३३

५ ततो जीवको रोहीतकमनुप्राप्त । वही पृष्ठ ३३

६ ततो जीवकोऽनुपूर्वेण मथुरामनुप्राप्त । वही, पृष्ठ ३५

७ ततो जीवकोऽनुपूर्वेण यमुनातटमनुप्राप्त । वही पृष्ठ ३६

८. सोऽनुपूर्वेण वैशाली गत । वही, पृष्ठ ३७

इस प्रकार जीवक का मार्ग तक्षशिला से प्रारम्भ होकर भद्रकर, उदुम्बरिका, रोहीतक, मथुरा, वैशाली होकर राजगृह पहुँचा था। यद्यपि यह विवरण भी पूरा नही है, फिर भी इससे हम राजगृह से तक्षशिला जाने वाले मार्ग के बीच महत्वपूर्ण नगरो का परिचय अवश्य प्राप्त कर लेते है।

भगवान बुद्ध ने अपना बारहवॉ वर्षावास वेरजा मे किया। इसके बाद उन्होने जिस मार्ग का अनुसरण किया वह इस उत्तरापथमार्ग का एक अग था। वेरजा (मथुरा एव सोरेय्य के मध्य) मे वर्षावास के उपरान्त वे क्रमश सोरेय्य, सकस्स और कण्ण्कुज्ज नामक स्थानो से होते हुए प्रयाग पहुँचे, जहॉ वे गगा को पार करके वाराणसी पहुँचे।

यह महामार्ग राजगृह से तक्षशिला तक ही सीमित नहीं था वरन् आगे बढकर जल एव थल मार्ग द्वारा यह भारत को विदेशो से जोडता था। पूर्व मे राजगृह चम्पा से स्थलीय मार्ग से सम्बन्धित था एव चम्पा से जलीय मार्ग द्वारा ताम्रलिप्ति तक आवागमन होता था। ताम्रलिप्ति से समुद्री मार्ग द्वारा व्यापारी सुवर्णद्वीप (दक्षिणी बरमा) तक जाते थे। बाद मे चीन से भारत आने–जाने का यही सर्वप्रमुख मार्ग बना।

उत्तर मे यह महामार्ग तक्षशिल से आगे बढकर पश्चिमी एव मध्य एशियाई देशों की ओर चला जाता था। इस प्रकार यह 'उत्तरापथ' दो दिशाओ पूर्व एव उत्तर–पश्चिम के भारत के बाहर के ससार से भारत को सम्बद्ध करता था।

उत्तर से दक्षिण-पूर्व को जाने वाला मार्ग-

यह मार्ग राजगृह से श्रावस्ती तक जाता था। इस मार्ग पर पडने वाले प्रमुख स्थान श्रावस्ती से प्रारम्भ करके सेतव्या, कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, भोगनगर, जम्बूगाम, अम्बगाम, हत्थिगाम, भण्डग्राम, वैशाली, नदिका, कोटिगाम, पाटलिगाम, नालन्दा और राजगृह थे।

भगवान् बुद्ध की अन्तिम यात्र इसी महामार्ग से हुई थी। राजगृह मे वर्षावास करने के बाद भगवान् बुद्ध नालन्दा पहुँचे, यहाँ से चलकर पाटलिगाम पहुँचे जो गगा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित था। इस समय सुनीध एव वस्सकार नामक मगध–महामात्य वज्जियो का आक्रमण रोकने के लिए वहाँ नगर वसा रहे थे। जिसे देखकर भगवान् ने भविष्यवाणी की "आनन्द! जितने भी आर्य–आयतन (आर्यो के निवास) है जितने भी वणिक्–पथ (=व्यापार–मार्ग) है उनमे यह पाटलिपुत्र पुट–भेदन (माल की गॉठ जहाँ तोडी जाय) अग्र (=प्रधान) नगर होगा।"[१] जहाँ उन्होने भिक्षुओ को चार आर्य–सत्यो का उपदेश दिया। फिर भगवान् ने वैशाली मे अम्बपाली नामक गणिका का आतिथ्य स्वीकार किया।[२]

वैशाली से भगवान् भण्डगाम, अम्बगाम (=आम्रगाम) **जम्बूगाम** (**=जम्बूग्राम**) होते हुए भोगनगर पहुँचे। जहाँ उन्होने आनन्द–चैत्य मे बिहार किया एव भिक्षुओ को चार महाप्रदेश का उपदेश दिया।[३] इसके बाद भगवान पावा गये जहाँ चुन्द कर्मार (=सोनार) ने उत्तम खाद्य–भोज्य और बहुत सा शूकर–मार्दव (सूकर–मद्दव) से भिक्षु सघ सहित महात्मा बुद्ध का स्वागत किया।[४] भोजन खाने के पश्चात् भगवान् को खून गिरने की पीडादायक बीमारी उत्पन्न हुई। इसी स्थिति मे उन्होने कुसीनारा की ओर प्रस्थान किया। कुसीनारा मे मल्लो के शालवन उपवत्तन मे तथागत ने महापरिनिर्वाण मे प्रवेश किया।[५]

---

१ दीघ निकाय, २/३/३/२

२ दीघ निकाय २/३/३/४

३ दीघ निकाय २/३/३/६

४ दीघ निकाय २/३/३/८

५. दीघ निकाय २/३/४

राजगृह से तक्षशिला तक जाने वाला महामार्ग, नालन्दा एव पाटलिपुत्र होकर गुजरता था। नालन्दा एव पाटलिपुत्र, उत्तर मे दक्षिण पूर्व को जाने वाले मार्ग मे भी पडते थे। अत ये दोनो स्थान उत्तर–पश्चिम के प्रमुख नगरो के साथ वैशाली, कपिलवस्तु एव श्रावस्ती से भी जुडे थे।

नालन्दा से एक सडक गया को भी जाती थी जो ताम्रलिप्ति, गया एव वाराणसी मार्ग को जोडती थी।

उत्तर से दक्षिण-पश्चिम जाने वाला मार्गः-

यह मार्ग 'दक्षिणापथ' भी कहलाता था जो उत्तर मे श्रावस्ती से प्रारम्भ होकर दक्षिण मे प्रतिष्ठान (पैठन) तक जाता था। इस मार्ग के मध्य मे पडने वाले स्थान प्रतिष्ठान, माहिष्मती, उज्जैनी, गोनद्ध, विदिशा, वनसाह्वय या वनसव्हय, कौशाम्बी, साकेत एव श्रावस्ती थे।

बावरी ब्राह्मण कोसलनरेश प्रसेनजित् का पुरोहित था। वह सन्यासी होकर, अपने शिष्यो के साथ कोसल जनपद के रम्य नगर (श्रावस्ती) से दक्षिणापथ को गया। वहॉ गोदावरी नदी के तट पर निवास करने लगा।[1]

---

१ सुत्त–निपात ५/१

कोसलान पुरा रम्मा, आगमा दक्खिणापथ,

आकिञ्चञ्ञ पतथयानो, ब्राह्मणो मन्तपारगू।।

सो अस्सकस्स विसये, अलकस्स समासने।

वसी गोदावरी कूले, उञ्छेन च फलेन च।

बावरी ब्राह्मण के अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक, मेत्तगू, धोतक, उपसीव आदि सोलह सदाचारी ब्राह्मण शिष्यो ने इसी दक्षिण–पश्चिम से उत्तर जाने वाले महामार्ग का अनुसरण करके, राजगृह मे भगवान् बुद्ध का दर्शन प्राप्त किया। वे पहले प्रतिष्ठान[१] गये वहाँ से माहिष्मती,[२] फिर उज्जयिनी,[३] गोनद्ध[४], विदिशा,[५] वन नगर[६] 'फिर वहाँ से कौशाम्बी,[७] साकेत[८] तत्पश्चात् उत्तम नगर श्रावस्ती[९] पहुँचे[१०]।

---

१ पैठन

२ मध्यप्रदेश मे स्थित माहिष्मती

३ वर्तमान उज्जैन, मध्यप्रदेश

४ गोधपुर का नाम है– अठ्ठकथा

५ वर्तमान भेलसा, मध्यप्रदेश

६ तुम्बनगर को कहते हैं वर्तमान तुम्बेन, मध्यप्रदेश।
कोई–कोई 'वनश्रावस्ता' भी कहते है– अठ्ठकथा।

७ कोसम, जिला इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

८ अयोध्या, उत्तरप्रदेश

९ सहेट महेट, जिला बहराइच, उत्तरप्रदेश

१० सुत्त–निपात ५/१,
वावरि अभिवादेत्वा, कत्वा च न पदक्खिण।
जटाजिनधरा सब्बे, पक्कामु उत्तरामुखा।।
अलकस्स पतिठ्ठान, पुरिम माहिस्सति तदा।
उज्जेनि चापि गोनद्ध, वेदिस वनसण्हय।।
कोसम्बि चापि साकेतं, सावत्थि च पुरुत्तम।
. . .. ।।

इस मार्ग पर पडने वाली कौशाम्बी नगरी व्यापारिक मार्ग द्वारा एक ओर वाराणसी से जुडी हुई थी तो दूसरी ओर राजगृह से। माहिष्मती से एक मार्ग भरूकच्छ को भी जाता था। इसी मार्ग के द्वारा उज्जैनी (उज्जयिनी) पश्चिमी समुद्र तट से भरुकच्छ और सुप्पारक जैसे बन्दरगाहो से जुडी हुई थी।

उपर्युक्त तीनो महामार्गो के अतिरिक्त अन्य कई छोटे–छोटे मार्ग भी इस काल मे विद्यमान थे। पाणिनि ने वारिपथ, स्थलपथ, रथपथ, करिपथ, अजपथ, शकुपथ, राजपथ, सिहपथ, हसपथ, देवपथ (अन्तिम दो का सम्बन्ध वायुमार्ग से है) का उल्लेख किया है। परन्तु मार्ग सरल एव सुगम्य नहीं थे। वे अधिकाशत ऊबड–खाबड थे और प्राय जगली या रेगिस्तानी क्षेत्रो से गुजरते थे। टी० डब्लू० राइस् डेविड्स अपनी पुस्तक 'बौद्ध भारत' (बुद्धिष्ट इडिया) मे मार्गो के विषय मे कहते है "उस समय पक्की सडक या पुल नही थे। गाडियॉ जगलो से होकर किसानो द्वारा बनाई पगडडियो के रास्ते एक गॉव से दूसरे गॉव धीरे–धीरे लडखडाती हुई जाया करती थी। उनकी गति दो मील प्रति घटे से अधिक न होती थी। छोटे नालो को तो ये गाडियॉ छिछले स्थानो पार कर लेती थी, किन्तु बडी नदियॉ नाव से पार की जाती थी।"[1]

आज से ढाई हजार वर्ष से भी पूर्व काल मे सुदूरस्थ प्रदेशो की यात्रा करना एक जोखिमपूर्ण कार्य था। व्यापारियो को अनेकानेक कठिनाइयो का सामना करना पडता था। अपनी सकुशल वापसी के लिए व्यापरी प्रस्थान के पूर्व देवी–देवताओ की प्रार्थना करते थे। वे व्यापार के लिये जाते समय, प्राणियो को मार, देवताओ को बलि चढा, 'हम (यदि) बिना विघ्न–वाधा के (अपनी) अर्थ–सिद्धि करके लौटे, तो फिर आपको बलि चढायेगे' कह मिन्नत मान (=आयाचना) कर जाते थे। फिर बिना विघ्न–वाधा के अर्थ (=मतलब) पूरा कर, लौट आने

---

१ टी० डब्लू० राइस् डेविड्स, बौद्ध भारत, हि० अनु० ध्रुवनाथ चतुर्वेदी,

पर, 'यह देव–कृपा से हुआ' सोच, बहुत से प्राणियो को मारकर, मिन्नत पूरी करने (=आयाचना) से मुक्त होने के लिए बलि–कर्म करते।'[1] जल रहित लम्बे मार्ग व्यापारियो के सामने एक बडी समस्या थे। काशी का एक व्यापारी पॉच सौ गाडियो पर सामान लाद कर साठ योजन वाली मरु–भूमि मे जा रहा था। उस मार्ग की रेतीली भूमि सूर्योदय के समय से ही भौर के आग की भॉति इतनी गर्म हो जाती थी कि उस पर चला नही जाता था। इसलिए उस कान्तार को पार करने वाले, लकडी, पानी, तिल, चावल सबको गाडियो पर लाद, रात को ही चलते थे। (वह) उषा (अरुणोदय) के समय गाडियो को घेरे मे खडी कर, उन पर मण्डप तनवा, समय रहते ही भोजन समाप्त कर, छाया मे बैठे–बैठे दिन बिताते थे। सूर्यास्त होने पर शाम का भोजन खाकर, भूमि के ठडी होने पर, गाडियो को जुतवा चल देते थे। यह यात्रा समुद्र–यात्रा जैसे होती थी। (उसमे भी) दिशा–प्रदर्शक (=थल नियामक) की जरुरत रहती थी। वह दिशा–प्रदर्शक तारो के आधार पर काफिले को दिशा–निर्देश करता था।[2]

ऐसे जल–शून्य मार्गो मे व्यापारी विशालकाय मटको मे पानी भरकर साथ ले जाते थे।[3] जिन स्थानो पर मार्ग मे पानी पाया जाता था वहॉ व्यापारियो को कई बार कुअे (गढे) आदि खोदकर जल प्राप्त करना पडता था। एक बार एक चतुर व्यापारी एक पत्थर के नीचे पानी का अनुमान कर अपने सेवक से उस पत्थर पर चोट करने को कहा। उस पत्थर पर घाव करते ही पानी का विशालकाय स्रोता निकल पडा। सभी व्यापारियो ने पानी पीकर अपनी प्राणरक्षा की। खिचडी–भात पकाया और बैलो को भी खिलाया पिलाया।[4]

---

१ आयाचितमत्त जातक, सख्या १६,

२ वण्णुपथ जातक, सख्या २,

३ अपण्णक जातक, सख्या १,

४. वण्णुपथ जातक, सख्या २,

चोर–डाकुओ का भय मार्गो मे सदैव विद्यमान रहता था। एक व्यापारी के नेतृत्व मे श्रावस्ती से पॉच सौ गाडियो का काफिला व्यापार के लिए चला। मार्ग मे एक स्थान पर रात्रि मे जब सब व्यक्ति सो रहे थे तो बडी सख्या मे चोर पत्थर–मुगद्र आदि नाना प्रकार शस्त्र लेकर, व्यापारियो को लूटने के विचार से उन्हे घेर कर खडे हो गये परन्तु एक व्यक्ति के पूरी रात जागते रहने के कारण चोरो को अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिली।[1]

वनो मे यात्रियो की रक्षा एव सहायता के लिए वन–रक्षक होते थे। खुरप्प जातक मे पॉच सौ वन–रक्षको के गॉव का उल्लेख आया है। ये जगल के किनारे निवास करते थे एव पारिश्रमिक लेकर मनुष्यो को जगल पार कराते थे। व्यापारी उनके गॉव मे जाकर उनको उनका पारिश्रमिक दे निर्विघ्न जगल पार कराने के लिए कहते थे।[2] सकट पडने पर, चोरो द्वारा व्यापारियो के काफिले पर आक्रमण होने पर वन–रक्षक बडी वीरता प्रदर्शित करते हुए, अपने प्राणो की भी बाजी लगाकर सार्थो को मार्ग पार कराते थे।

पूरे प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे सुदूरस्थ देशो की यात्रा व्यापारी एक बडे समूह मे ही करते दिखाई पडते हैं। मार्ग मे चोरी–डकैती आदि का भय व्याप्त रहता था इस कारण भी व्यापारी एक साथ सगठित होकर यात्रा करते थे।

कभी–कभी अनभिज्ञता के कारण विषैले फल, फूल, पत्ते खाकर व्यापारियो जान–माल की बडी हानि उठानी पडती थी। बनारस से पश्चिम की ओर जाते हुए जगली मार्ग मे व्यापारी–समूह ने फलो से लदा किम्पक्क वृक्ष देखा। उसके टहने, शाखाऍ, पत्ते तथा फल, आकार, वर्ण, रस और गन्ध सब देखने मे बिल्कुल आम के सदृश ही थे।

---

१ जागर जातक, सख्या ४१४

२ खुरप्प जातक, जातक संख्या २६५,

३ वही; महासुतसोम जातक, संख्या ५३७,

कुछ आदिमियो ने वर्ण, गन्ध, रस से आकर्षित होकर, उसे आम का फल समझकर खाया, कुछ ने सार्थवाह (काफिले के नेता) की अनुमति लेना उचित समझाा। सार्थवाह ने, जो फल लिये खडे थे, उनसे वह फल फेकवा दिया, जो खा लिये थे, उन्हे वमन करा करके दवाई दी। उनमे से कुछ तो निरोग हो गये, लेकिन जो बहुत पहले खा चुके थे, वे मर गये। एक साथ यात्रा करने वाले व्यापारियो का समूह 'सार्थ' कहलाता था। उस समूह मे एक प्रमुख व्यक्ति होता था जो 'सार्थवाह कहलाता था जो अपनी चतुरता एव कुशलता से यात्रियो को सकुशल मार्ग पार करवाता था।

बौद्ध साहित्य मे स्थल मार्ग की पॉच प्रकार की बॉधाओ का उल्लेख है।

१ चोरो का कान्तार– जिस मार्ग पर चोरो का दखल हो, वह चोर–कान्तार कहा जाता है।

२ व्याल (=हिसक जन्तुओ) का कान्तार– सिह आदि व्यालो से अधिकृत मार्ग व्याल–कान्तार कहलाता है।

३ भूतो का कान्तार– भूतो आदि अमनुष्यो का खतरा जिस मार्ग पर हो वह भूतो का कान्तार कहा जाता है।

४ निर्जल (=निरुदक)– जल–शून्य मार्ग निर्जल कान्तार कहलाता है।

५ अल्पभक्ष कान्तार– खाने–पीने लायक कन्दमूल आदि से शून्य मार्ग अल्पभक्ष कान्तार कहलाता है।[1]

---

१ अपण्णक जातक, सख्या १,

स्थल मार्ग मे व्यापारिक एव घरेलू उपयोग के लिए बैलगाडी ही तत्कालीन आवागमन का सर्वप्रमुख साधन थी। थेरगाथा मे कहा गया है कि बोझ से लदी हुई गाडी को उत्तम बैल खीचा करते थे। अतिभार होने की अवस्था मे भी वे तोडकर भागते नही थे।[1] एक धनी ब्राह्मण ५०० गाडियॉ लाद व्यापार करता हुआ पूर्वान्त से अपरान्त जाता था। वह स्वय सुसज्जित हो, श्वेत–वृषभ जुते रथ मे बैठ, अपने सारे काफिले को आगे कर, स्वय मार्ग मे सहायक पुरुषो से घिरा पीछे–पीछे चलता था।[2] नन्दिविसाल जातक एव कण्ह जातक से स्पष्ट रूप से प्रगट होता है कि माल से लदी भारी गाडियो को वैल खीचा करते थे।[3] टी० डब्लू० राइस डेविड्स अपनी 'बुद्धिष्ट इण्डिया' कमे कहते है, (यात्रियो) काफिले, जिनमे छोटी–छोटी दो पहियो वाली दो बैलिया–गाडियो की लम्बी कतार हुआ करती थी, उस समय की एक उल्लेखनीय विशेषता थी।[4]

व्यापारिक दृष्टिकोण से बैल के अतिरिक्त अन्य जिन पशुओ का उल्लेख मिलता है उनमे घोडे, गदा, खच्चर, ऊँट एव हाथी उल्लेखनीय है। अनुसासिक जातक मे वाराणसी के राजमार्ग मे विभिन्न खाद्य–वस्तुओ से भरी गाडियो को बैलो के अलावा घोडे एव हाथी द्वारा खींचे जाने का उल्लेख है।[5]

---

१ यथापि भद्दो आजञ्यो, धुरे युत्तो धुरस्सहो
मथितो अतिभारेन, सथुग नातिवत्ताति। थेरगाथा ६५६

२ महासुतसोम जातक, सख्या ५३७,

३ नदिविसाल जातक, सख्या २८, कण्ह जातक सख्या २६,

४. टी० डब्लू० राइस डेविड्स, बुद्धिष्ट इण्डिया, पृष्ठ ६७,

५ अनुसासिक जातक, संख्या ११५,

जल मार्ग

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे जल मार्ग द्वारा आन्तरिक एव बाह्य दोनो व्यापारो का उल्लेख है। जलमार्ग का तात्पर्य नदियो एव समुद्र से है। देश के अन्दर व्यापार करने का उत्तम माध्यम नदियॉ थी। विदेशी व्यापार मे मुख्यत सामुद्रिक जल मार्ग के ही माध्यम से किया जाता था।

देश के बडे नगरो के विकास मे नदियो ने भी अपना महत्वपूर्ण योग दिया था। बडे नगरो मे मुख्यत काशी, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, वैशाली, चम्पा आदि नगर गगा, सरयू, गडक एव इन नदियो के सगम पर बसे होने के कारण व्यापारिक रूप से अधिक महत्वपूर्ण हुए।

गगा एव यमुना के सगम पर बसे प्रयोग का व्यापारिक महत्व अत्यधिक था। यह जलीय मार्ग का एक प्रमुख केन्द्र था। यहॉ से वाराणसी को जाने वाले मार्ग चुनार होते हुए आता है। गगा के तट पर स्थित बनारस भी जलीय मार्ग से व्यापार का प्रमुख नगर था। जातको मे विदेह से गन्धार जाने वाले मार्ग का भी उल्लेख है।[1] मेहता महोदय का विचार है कि यह मार्ग जलीय मार्ग था जो नदियो के माध्यम से वाराणसी होते हुए जाता था।[2] इसी प्रकार प्रयाग से मथुरा का मार्ग भी यमुना नदी के व्यापारिक महत्व को स्पष्ट करता है।[3] गगा नदी के मुहाने से लेकर चम्पा, पाटलिपुत्र, वाराणसी और सहजाति तक माल एव यात्रियो का आवागमन होता था। समुद्दवाणिज जातक मे वाराणसी के वड्ढकिगाम के १००० बढइयो का परिवार कर्जदारो से मुक्ति पाने के लिए गगा नदी के ही मार्ग द्वारा समुद्र के एक उर्वर द्वीप की ओर पलायन कर गया था।[4] महाजनक जातक और सख जातक मे क्रमश चम्पा और वाराणसी (मोलिनी) के व्यापारियो का सुवर्णभूमि (दक्षिणी बरमा) जाने का उल्लेख है।[5] ये व्यापारी गगा नदी द्वारा पहले ताम्रलिपि पहुॅचते थे और फिर वहॉ से सुवर्ण्णभूमि जाते थे।[6]

---

१ जातक तृ०, पृ० ३६५

२ मेहता– प्री बुद्धिष्ट इण्डिया, पृ० २२६

३ जातक ष०, पृ० ४४७

४ समुद्दवाणिज जातक, सख्या ४६६

५ महाजनक जातक, सख्या ५३६, सख जातक, सख्या ४४२,

६ भरतसिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ५४३,

समुद्री–मार्ग से विदेशी व्यापारिक सम्बन्धो पर विभिन्न जातक कथाओ से अच्छा प्रकाश पडता है।

सुप्पारक जातक से स्पष्ट है कि भारतीय व्यापारी खुरमाल (बेबिलोन के आस–पास का समुद्र), अग्निमाल (लाल सागर), वलभामुख (भूमध्यसागर), नलमाल (नहर जो लाल सागर एव नील नदी को मिलाती थी), कुशमाल (अफ्रीका के उत्तरी पूर्वी किनारे के नुबिया नामक स्थान के आसपास के समुद्र से मिलाया गया है)[१] तक समुद्री यात्राये करते थे। बावेरु जातक[२] से भारत एव बेबीलोन के मध्य होने वाले व्यापारिक सम्बन्धो पर स्पष्ट रूप से प्रकाश पडता है। इसमे भारतीय पक्षियो कौआ एव मोर का बेबिलोन मे अच्छी कीमत लेकर निर्यात की बात कही गई है।

महाजनक जातक एव शखजातक मे भारतीय व्यापारियो की सुवण्णभूमि यात्रा का उल्लेख है।[३] वालाहस्स जातक मे हमे व्यापारियो को तम्बपण्णि (ताम्रपर्णि–लका) नगर मे जाते देखते है।[४] इससे भारत एव श्रीलका के मध्य व्यापारिक सम्बन्धो पर प्रकाश पडता है।

भारत के पश्चिमी समुद्री तट पर भ्ररुकच्छ,[५] सुप्पारक[६] सुप्रसिद्ध बन्दरगाह थे। अन्य बन्दरगाहो मे करम्बिय,[७] गम्भीर[८] एव सेखि[९] वन्दरगाहो का उल्ख जातक कथाओ मे आया है।

---

१ वही, पृष्ठ १५५,

२ बावेरु जातक, सख्या ३३६,

३ महाजनक जातक, सख्या ५३६, शख जातक, सख्या ४४२,

४ वालाहस्स जातक, सख्या १९६,

५ सुप्पारक जातक, जातक सख्या ४६३,

६ बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ४८६,

७ पण्डर जातक, जातक सख्या ५१८,

८ लोसक जातक, जातक सख्या ४१

९ बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल, पृष्ठ ५४५,

जलमार्ग विशेषकर सामुद्रिक जलमार्ग से यात्रा करना स्थलमार्ग से अधिक सकटपूर्ण था। नौकाओ के टूट जाने या उनमे छेद हो जाने पर सभी यात्रियो के प्राण सकट–ग्रस्त हो जाते थे। प्रतीत होता है कि इन जहाजो की सरचना अधिक मजबूत नही होती थी स्वर्ण–भूमि जाने वाली नौका, जिसमे ७०० व्यक्ति सवार थे, समुद्र मे सात सौ योजन जाकर टूट गयी। महाजनक ने घी–शक्कर भरपेट खाकर, तेल से सने वस्त्र पहनकर जहाज के मस्तूल से समुद्र मे छलॉग लगा ली। वाकी यात्री मच्छ एव कच्छुओ का शिकार वन गये। इस जातक कथा मे 'भगवान भी उसी की सहायता करते है जो स्वय अपनी सहायता करता है'– यह सूक्ति चरितार्थ होती है। महाजनक बिना समुद्र–तट देखे, अपनी प्रयत्नो की समाप्ति सीमा पूर्णत अदृश्य देखते हुए भी, यथा–शक्ति यथा–बल मनुष्य को अपना कर्तव्य करना चाहिए ऐसा मानकर लगातार सप्ताह भर तैरता रहता है और अन्त मे मणि–मेखला नामक देवी उसकी प्राणरक्षा करती है। इसी प्रकार की कथा शख जातक मे भी आती है जहॉ मणि मेखला नामक देवी शख नामक सदाचारी व्राह्मण की प्राण रक्षा करती है। श्री सिलवॉ लेवी का कहना है कि मणि–मेखला देवी का पीठ कावेरी के मुहाने पर स्थित पुहार मे था। देवी की हैसियत से उसका प्रभाव कन्याकुमारी से निचले वर्मा तक था।[१]

कभी–कभी नौकाये तूफानी अथाह जल–राशि मे फॅस जाती थी। साता सौ यात्रियो वाली नौका वलभामुख नामक समुद्र मे फॅस गयी। चारो ओर पानी इस तरह उछल रहा था मानो चारो ओर के तट टूट गये हो, ऊॅची–ऊॅची लहरे प्रपात की तरह प्रतीत हो रही थी। कानो के पर्दे को फाडने वाली एव हृदय को चूर–चूर कर देने वाली डरावनी आवाजे आ रही थी।[२]

विशालकाय जलचरो से भी मार्ग सक्रमित रहता था। मरुकच्छ से चले व्यापारियो की नौका मगरमच्छो ने तोड दी।[३] सीमा से अधिक भार हो जाने पर भी व्यापारियो की नौका समुद्र मे समा जाती थी।[४]

---

१ मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ० ५६,

२ सुप्पारक जातक

३ सुसन्धि जातक, जातक सख्या ३६०,

४ वाणिजान यथा नावा अप्पमापमरा गरु, अतिभार समादाय अण्णवे अवसीदति।।– महानारद कश्यप जातक, सख्या ५४४, श्लोक ६५

सामुद्रिक व्यापारी तटदर्शी पक्षी लेकर सामुद्रिक यात्राये करते थे। अगुत्तर–निकाय मे कहा गया है कि 'सामुद्रिक व्यापारी तटदर्शी पक्षी को लेकर नौका को समुद्र मे छोडते थे। उन्हे जब नौका पर बैठे–बैठे तट नही दिखाई देता था, तो वह तटदर्शी पक्षी को छोडते थे। वह विभिन्न दिशाओ मे भ्रमण करता था। यदि उसे चारो दिशाओ मे किसी एक दिशा की ओर भी तट दिखाई दे जाता तो वह उसी ओर चला जाता, यदि उसे किसी ओर तट नही दिखाई देता तो वह नाव पर लौट आता।[१] रात्रि के समय नाविक तारो के आधार पर दिशा–निर्धारण करता था।[२]

चुल्लसेट्ठि जातक से ज्ञात होता है कि व्यापारियो की सहायता के लिए राज्य की ओर से स्थलपथकर्मक (स्थल–मार्ग के कर्मचारी) एव जलपथकर्मिक (जल–मार्ग के कर्मचारी) नियुक्त होत थे।[३]

सम्पूर्ण जलमार्गी यात्राओ मे नाविको की अति महत्वपूर्ण भूमिका होती थी।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि व्यापारिक दृष्टिकोण से जल एव थल दोनो ही मार्गो का महत्वपूर्ण स्थान था। मार्ग मे कठिनाइयो की परवाह किये बिना यात्री सुदूरस्थ प्रदेशो मे आवागमन किया करते थे। बडे–बडे व्यापारी ही नही छोटे व्यापारी, साधु सन्यासी, विभिन्न करतब दिखाने वाले एव विशेषकर विद्यार्थियो की सुदूर यात्राओ का प्रसग सहज ही द्रष्टव्य है।

---

१ अगुत्तर निकाय, हि० अ०, तृतीय, पृष्ठ ७३,

२ वण्णुपथ जातक,

३ चुल्लसेट्ठि जातक, जातक सख्या ४,

व्यापारिक वस्तुऐ-

विनयपिटक एव सुत्तपिटक के अध्ययन से यह स्पष्ट है जीवनोपयोगी सभी वस्तुए बाजार मे उपलब्ध रहती थी। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है हमे पूरे प्रारम्भिक पालि साहित्य मे माल से लदी हुई गाडियो के एक विशालकाय समूह (जिनकी सख्या परम्परागत रूप से ५०० बतायी गयी है) व्यापार हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हुए देखते है। यद्यपि प्राय यह स्पष्ट नही है कि उनमे कौन सी वस्तुए लदी होती थी। इस काल तक उत्पादन कार्य बडे पैमाने पर होने लगा। कसि-भारद्वाज के यहाँ ५०० हलो की खेती होती थी।[1] अन्यत्र एक ग्रामवासी के पास पाँच सौ फालो के होने की बात ज्ञात होती है।[2] इतने हल-फाल के उपयोग के लिए निश्चय ही विशाल भू-सम्पत्ति एव कर्मकरो की आवश्यकता होती होगी। इन सबसे जो उपज होती होगी उसका स्वत उपभोग के बाद बडी मात्रा मे व्यापारिक दृष्टिकोण से भी सदुपयोग किया जाता होगा। वाराणसी के पिलियसेठ के यहाँ एक हजार गाडी लाल चावल छटवाकर कोठेमे रखा था।[3] इससे ये अनुमान लगाना उचित ही प्रतीत होता है कि बडी सख्या मे व्यापार के लिए जाती हुई जो गाडियाँ हमे दिखाई देती है उनमे अन्न एक महत्वपूर्ण व्यापारिक वस्तु रहा होगा।

धान्य का सुदूर क्षेत्रो मे व्यापार किये जाने का स्पष्ट प्रमाण भी पालि ग्रन्थो मे मिलते है। अकतञ्ञु जातक मे एक प्रत्यन्त (देश) वासी सेठ अनाथपिण्डिक का मित्र, अपने प्रत्यन्त देश की पैदावार से पाँच सौ गाडियाँ भरकर, अपने आदमियो को कहा- "भो! जाओ! इस सामान को श्रावस्ती ले जाकर, हमारे मित्र बडे सेठ अनाथपिण्डिक की उपस्थिति मे वेच कर, इसके बदले मे सामान ले आओ।"[4] राजमार्ग पर धान, मूँग आदि से भरी हाथी, घोडे, वैलो वाली गाडियो के

---

१ सुत्त-निपात, १/४,

२ जातक सख्या २१८,

३ जातक सख्या १३१,

४ अकतञ्ञु जातक, सख्या ९०,

आने का उल्लेख आया है।[1] वेलट्ठकच्चान (= कात्यायन) सभी गुड के घडो से भरी पॉच सौ गाडियो के साथ राजगृह से अधकविद व्यापार हेतु जाता है।[2] सालक जातक मे वाराणसी के एक धान्य व्यापारी के कुल का उल्लेख है।[3] इसी प्रकार अन्यत्र भी धान्य व्यापारियो का उल्लेख आया है। स्पष्ट है कि अनाज व्यापार का एक प्रमुख वस्तु था।

अनाज के अलावा अन्य कृषि खाद्य–उत्पादो का भी वाजार मे क्रय–विक्रय होता था। सब्जी बेचने वाले कुजडे कहलाते थे। कुदाल–पण्डित नामक कुजडा साग, लौकी, कद्दू (तथा अन्य) सब्जी तरकारी बोकर एव वेचकर जीवन व्यतीत करता था।[4] एक ढोगी तपस्वी ने राजोद्याान मे एक ओर सब्जी–तरकारी लगाकर, व्यापारियो के हाथ उसे वेच कर, कार्षापण तथा मासक एकत्र किया था।[5] श्रावस्ती–निवासी उपासक नाना प्रकार की जडी–बूटी तथा लौकी–कद्दू आदि बेचकर गुजारा करता था।[6] फलो का विक्रय भी होता था।[7]

अन्तर्देशीय एव विदेशी व्यापार मे कपडे विशेष कर सूती कपडे का विशिष्ट स्थान था। वस्त्र निर्माण के क्षेत्र मे सबसे अधिक ख्याति काशी को प्राप्त थी। यही कारण है कि बनारसी कपडे सख्यातीत गाडियो मे लादकर विक्रय के लिए सुदूर देशो मे भेजे जाते थे।[8] लाल वस्त्रो से लदी पॉच सौ गाडियो को साथ लिए वाराणसी के एक व्यापारी का श्रावस्ती जाने का

---

१ अनुसासिक जातक, सख्या ११५,

२ विनयपिटक, हि० अनु०, पृष्ठ २५६,

३ सालक जातक, सख्या २४६

४ कुदाल जातक, सख्या ७०,

५ सोमनस्स जातक, सख्या ५०५,

६ पण्णिक जातक, सख्या १०२,

७ जातक संख्या ४७४,

८ उदयनारायण राय, प्राचीन भारत मैं नगर तथा नगरजीवन, पृष्ठ १२६,

उल्लेख है, जो बीच मे नदी पार न कर सकने के कारण किनारे पर ही माल वेचने के लिए रुका रहा।[1] काशी के सूती एव रेशमी वस्त्रो के अतिरिक्त क्षौम, कपास, कम्बल (ऊनी), सन् एव भॉंग के वस्त्रो का भी क्रय विक्रय होता था। गन्धार के ऊनी कम्बल[2] की भी समाज मे मॉग थी। उद्डीयान[3] तथा शिवि[4] अपनी ऊनी शालो के लिए प्रसिद्ध थे।

व्यापारी मुख्यत रेशम, मलमल, बारीक कपडे, चाकू–छुरी, अस्त्र–शस्त्र, जरदोजी, और कसीदे, कम्बल, सुगन्धित वस्तुऍ, औषधियॉ, हाथीदॉत और उसकी बनी वस्तुऍ, जवाहिरात और सोने (और कभी–कभी चॉदी) का व्यापार किया करते थे।[5] सोना, चॉदी, तॉबा, कॉसा आदि धातुओ का भी व्यापार किया जाता था। सुवर्णकार सुवर्ण के वेणी, ग्रेवेयक, कण्ठाहार, कुण्डल, ॲगूठी, पाजेब, कायूर आदि अलकरणो का निर्माण करते थे। स्वर्णमय चरणपादुका, चॅवर, जजीर, माला, कुण्डल, हस्ताभरण, मेखला, ध्वजा आदि पुरुषो द्वारा धारण की जाती थी। धन–सम्पन्न व्यक्तियो के पशु–गौ, अश्व हाथी भी स्वर्णलकारो से सजाये जाते थे। दैनिक जीवनोपयोगी थाली, तश्तरी, कलश का निर्माण भी सुवर्णकार करता था। रजतमय वस्तुओ का विवरण पालि साहित्य मे अधिक नहीं आया है तथापि सुवर्णकार रजत थाली, चरणपादुका, पलॅग, कर्णमलहरी आदि का निर्माण करते थे। इन बहुमूल्य धातुओ से निर्मित वस्तुओ का क्रय–विक्रय प्राय समाज के धनाढ्य वर्ग के द्वारा ही किया जाता था।

---

१ धम्मपद्दट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४२६,

२ महावेस्सन्तर जातक, सख्या ५४७,

३ जातक ४, ३५२,

४. जातक ४,४०१

५. बौद्ध भारत, हि० अ०, पृष्ठ ६८,

लोहा एक सस्ती एव उपयोगी धातु था। इसलिए ही भगवान बुद्ध ने भिक्षुओ को लोहे के पात्रो के प्रयोग की आज्ञा दी थी।[1] काशी मे एक हजार लोहारो का गॉव था।[2] आस–पास के गॉव के मनुष्य लोहार–गॉव से छुरी, कुल्हाडी, फरसा, फाल, सूई आदि वनवाने के लिए आते थे। कृषि उपयोगी विभिन्न औजार के साथ–साथ शिकार एव युद्ध के लिए विभिन्न आयुध वर्छी, तलवार, छुरी, वाण, कवच तथा घरेलू उपयोग के तवे, थाली कमण्डल, कडाही आदि इस काल मे बडे पैमाने पर उपयोग मे आती थी।

सुप्पारक जातक[3] एव विनय पिटक[4] से स्पष्ट है कि दक्षिणी मे सागर एव उसके तटवर्ती देशे मे समुद्री व्यापारी हीरे, सोना, चॉदी, नील–मणि, विल्लौर, मोती, शख, शिला, लोहिताक, (रक्तवर्णमणि), मणि, मसाणगल्ल (एक मणि) की खोज मे जाते थे।

बावेरु जातक से स्पष्ट है कि भारतीय मोर आदि पक्षियो का पश्चिमी देशो को निर्यात कर काफी मुनाफा कमाते थे।[5]

चन्दन, सुगन्धि एव पुष्पमालाओ की भी पूजा एव प्रसाधान हेतु बडी मॉग थी। सौन्दर्य बर्धन हेतु चन्दन लेप का अनेकत्र उल्लेख आया। काशी का चन्दन विशेष प्रसिद्ध था।

शराब का व्यापार भी होता था। वारणी जातक से ज्ञात होता है कि अनाथपिण्डिक का एक मित्र शराब का व्यापार करता था। वह अपने शागिर्द की मदद से, तेज शराब बनाकर लोगो से हिरण्य, सोना आदि लेकर उसे वेचता था। उसकी शराब की दुकान के पास बहुत से ग्राहक

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ६/५/३

२ सूची जातक

३ सुप्पारक जातक

४ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/१/२,

५ बावेरु जातक

इकठ्ठे हो गये थे।[1] शराब के व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण भी करते थे। दो शराब विक्रताओं ने वाराणसी, वाराणसी से साकेत से श्रावस्ती जाकर मदिरा बेची।[2]

मिट्टी के पात्रों का तत्कालीन समाज में एक बड़ा बाजार था।[3] मिट्टी के वर्तनों के अलावा इसके खिलौनों की भी लोकप्रियता थी। उत्तरापथ के घोड़े श्रेष्ठ नस्ल के होते थे अतः राजा महाराजाओं (धनाढ्य) वर्ग इनका ग्राहक था।

समाज में लोग मांसाहार के शौकीन थे पशु–पक्षियों का मॉस बड़े पैमाने में विक्री के लिए बाजार पहुँचता था। मंस जातक से ज्ञात होता है कि शिकारी, गाड़ी में बहुत सा माँस लिये वेचने जा रहा था।[4] जगह–जगह मॉस की दुकानें लगी होती थी। भेड़, सुअर, मछली, बकरी, भैंस आदि मारने वाले इन पशुओं का वध करके, इनका माँस दुकान पर सजा कर बेचते थे।[5]

विनिमय के साधनः-

प्राचीन भारत में भी विनिमय का साधन एक–समान नहीं था। वल्कि एक ही समय में विनिमय का साधन विभिन्न समुदाय और क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न था। प्राचीन काल में विनिमय की दो प्रणालियाँ विकसित हुई थी। (१) वस्तु विनिमय प्रणाली (२) क्रय–विक्रय प्रणाली।

आरम्भ में मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित थी जिनकी पूर्ति वह स्वयं करता था। सभ्यता के विकास के साथ–साथ उसकी आवश्यकताऐं भी बढ़ी और उनमें सबकी पूर्ति स्वयं करना उसके लिए असम्भव हो गया। इसलिए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसे दूसरे लोगों पर निर्भर होना पड़ा। वह अपने द्वारा उत्पादित वस्तु दूसरों को देकर उनसे अपनी आवश्यकता की वस्तुऐं प्राप्त करने लगा। यह विनिमय का पहला रूप था जिसे वस्तु–विनिमय प्रथा कहा गया।

---

१. वारणी जातक;

२. कुम्भ जातक, जातक संख्या ५१२;

३. तृतीय अध्याय में 'मृण्भाण्ड कला' शीर्षक में यह बात स्पष्ट है।

४. मंस जातक;

५. निमि जातक;

अर्थतत्र के विकास के साथ–साथ वस्तु–विनिमय प्रणाली मे अनेक कठिनाइयॉ उत्पन्न हो जाती है।[1] उत्पादक किसी एक सीमित वाजार के लिए वस्तु–उत्पादन न करके सम्पूर्ण देश एव विदेशो के लिए भी वस्तुऐ उत्पादित करता है। ऐसी अर्थ–व्यवस्था मे वस्तु–विनिमय कठिन हो जाता है और विकास कार्य मे वाधा आने लगती है। वस्तु विनिमय प्रणाली मे बहुत समय भी नष्ट होता है। उदाहरण के लिए एक जुलाहे को एक जोडी जूते की आवश्यकता है। जब जुलाहे को ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जिसको कपडे की आवश्यकता है और विनिमय मे उसके पास देने के लिए जूते भी हो। हो सकता है कि जूते बनाने वाले को कपडे की नही परन्तु गेहूॅ की आवश्यकता हो, यह कार्य और भी कठिन तब हो जाता है जब जुलाहे को एक नही दस–पॉच वस्तुओ की आवश्यकता है। वस्तु–विनिमय के कार्य मे एक और कठिनता है कुछ वस्तुऍ ऐसी है जिनकी इकाई बडी होती है और उनके छोटे–छोटे टुकडे नही किये जा सकते। जैसे किसी बढई ने मेज बनाई हो और उसको आटा,कपडा, जूते की आवश्यकता हो। बढई को इस सम्बन्ध मे तीन व्यक्तियो से सम्पक्र करना पडेगा। परन्तु वह मेज का विनिमय आटा, कपडा, जूते के मालिको से किस प्रकार करेगा? मेज के टुकडे–टुकडे करने पर तो मेज की उपयोगिता ही समाप्त हो जायेगी।

इसके अतिरिक्त इस प्रथा मे उधार का लेन–देन सम्भव नहीं होगा और मूल्य सचय की असुविधा होती हे। इन्हीं सब असुविधाओ के कारण आर्थिक विकास के साथ वस्तु–विनिमय के साथ–साथ कोई विशेष माध्यम समाज मे स्वीकार किया जाता है जिसके द्वारा लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुओ का लेन–देन करते हैं। इसी माध्यम के द्वारा वस्तुओ का क्रय–विक्रय होता है, इसी को क्रय–विक्रय प्रणाली कहते है।

१.मजू अग्रवाल, शोध प्रबन्ध, पृष्ठ ८१.

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य से स्पष्ट है कि बुद्ध–काल मे यद्यपि वस्तु–विनिमय के द्वारा अदला–बदली का रिवाज था तथापि साधारणत समाज मे सिक्को का प्रचलन था। सर्वाधिक प्रचलित सिक्का कार्षापण था। कहापण (कार्षापण) बुद्ध–काल का एक अति प्रचलित सिक्का था और जिस प्रकार आज हम साधारणत धन के लिए पैसे शब्द का प्रयोग कर देते है, उसी प्रकार बुद्ध–काल मे लोग कहापण का प्रयोग करते थे।[1] विभिन्न बौद्ध–ग्रन्थो एव जातक कथाओ मे कार्षापण के बहुसख्यक प्रसग आये है।

वावेरु जातक मे व्यापारियो ने सौ कार्षापण लेकर कौआ एव एक हजार कार्षापण लेकर वहॉ के निवासियो को मोर बेचा था।[2] चुल्लसेट्ठि जातक से स्पष्ट है कि चुल्लअन्तेवासिक ने सोलह कार्षापण मे राजकीय कुम्हार के पास लकडी वेची थी।[3]

स्वर्ण मुद्राये भी बुद्ध–काल मे प्रचलित थी। मुद्राये हिरण्य, निष्क नामो द्वारा जानी जाती थी। विनयपिटक मे श्रावस्ती के धनाढ्य श्रेष्ठि अनाथपिण्डिक हिरण्य से धरती को ढक कर जेतवन का क्रय करते हैं।[4] कुहक जातक मे उल्लेख आया है कि एक दुष्ट तपस्वी ने गृहस्थ के सोने के सौ सिक्के चुरा लिये थे। जुण्ह कुमार ने एक ब्राह्मण बौद्ध भिक्षु को प्रायश्चित स्वरूप हजार से अधिक सुवर्ण–निष्क दिये। पेतवत्थु मे एकदम स्पष्ट रूप से कहा गया है "वहॉ प्रेतलोक मे कृषि नही है और न गो–रक्षा (पशुपालन) वहॉ है। न यहॉ का सा वाणिज्य–व्यापार है और न हिरण्य के द्वारा क्रय–विक्रय।"[5]

---

१ भरतसिह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पृष्ठ ५४८,

२ वावेरु जातक,

३ चुल्लसेट्ठि जातक,

४ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ६/३/१,
अनाथपिडिकों गहपति सकटेहिहिरञ्ञ
निब्बाहणेत्वा जेतवन कोटिसथार सथरापेति।

५ न हि तत्थ कसी अत्थि गोरक्ख एत्त न विज्जति
वणिज्जा तादिसी नत्थि हिरण्णेन कयक्कय
पेतवत्थु, खु० नि० खण्ड २, १५.१६

काशी का बहुमूल्य वस्त्र एक लाख कार्षापण का था। आचार्य बुद्धघोष ने कार्षापण को चॉदी का सिक्का माना है। पुरातात्विक साक्ष्यो से स्पष्ट है कि छठी शदी ई० पू० मे भारत मे आहत सिक्के प्रचलित थे जो चॉदी एव तॉबे के थे। किन्तु चॉदी के सिक्के ही अधिक सख्या मे पाये गये है। सम्भव है कि कहापण चॉदी के साथ–साथ तॉबे के भी बनते थे। इन आहत सिक्को पर अकित चिन्हो से तत्कालिन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश पडता है। मत्स्य–सरित, शख–चिन्ह अकित मुद्राऐ सामुद्रिक व्यापार की ओर सकेत करती है। इन मुद्राओ मे समाजोपयोगी पशुओ वृषभ, अश्व, हाथी, ऊॅट, वकरा, कुत्ता आदि का भी चित्रण मिलता है। यद्यपि सबसे अधिक अकन सूर्य का हुआ है जो धार्मिक विश्वासो एव प्रकृति से सम्बन्ध को प्रगट करता है।

साहित्य मे कार्षापण के अतिरिक्त अर्द्धकार्षापण,[१] पाद कार्षापण,[२] मासक, अर्द्धमासक[३] काकणिका[४] का भी उल्लेख आया है। काकणिका सम्भवत उस समय का सबसे छोटा सिक्का था। चुल्लसेट्ठि जातक मे एक मृत चूहे का मूल्य एक काकणी बताया गया है।

आर्थिक संगठन-

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे प्रथम बार शिल्प–उद्योगो तथा व्यापार–वाणिज्य के क्षेत्र मे सगठन, सहकारिता एव सहयोग की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ऐसे व्यवसायिक सगठनो को श्रेणी या पूग की सज्ञा से अभिहित किया गया है। पूग शब्द का प्रयोग किचित् रूप से ही किया गया है, श्रेणी शब्द ही अधिक प्रचलित था। एक जातक कथा मे अठारह प्रकार के शिल्पकारो के सघ का उल्लेख मिलता है।[५] किन्तु इन सब का नामोल्लेख यहॉ नही

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग १२/१/१

२ वही,

३ सेरिवणिज जातक, सख्या

४ चुल्लसेट्ठि जातक

हुआ है, केवल चार श्रेणियो का स्पष्टत वर्णन है–(१) बढई की श्रेणि (२) धातुकारो की श्रेणि (३) चर्मकारो की श्रेणि (४) चित्रकारो की श्रेणि। इससे स्पष्ट है कि बढई, धातुकार, चर्मकार एव चित्रकार, इन चार प्रकार के कारीगरो की सघ या श्रेणियॉ निश्चित रूप से सुस्थापित था। टी डब्लू० राइस् डेविड्स बुद्ध–काल मे निम्निलिखित अठारह प्रकार की श्रेणियो का अनुमान करते हैं[1]।

१ बढई की श्रेणी
२ धातु का काम करने वालो की श्रेणी
३ पत्थर का काम करने वाली की श्रेणी
४ जुलाहे की श्रेणी
५ चर्मकारो की श्रेणी
६ कुम्हारो की श्रेणी
७ हाथीदॉत का काम करने वालो की श्रेणी
८ रगरेज की श्रेणी
६ सुनारो की श्रेणी
१० मछुआरो की श्रेणी
११ कसाइयो की श्रेणी
१२ शिकारियो की श्रेणी
१३ रसोइयो एव हलवाइयो की श्रेणी
१४ नाई तथा चम्पी करने वालो की श्रेणी
१५ माला बनाने एव फूल बेचने वालो की श्रेणी
१६ मल्लाहो की श्रेणी
१७ नलकारो की श्रेणी
१८ रगकर्मियो की श्रेणी।

परन्तु इस काल मे केवल उपरोक्त अठ्ठारह प्रकार की शिल्पकारियॉ प्रचलित नही थी। विधुर जातक मे माली, धोबी, गान्धी, कपडे बेचेने वाले, स्वर्णकार, मनियारे, रसोइये, नट, नर्तक, गायक, ताली बजाकर गाने वाले, घडे वजाने वाले, कूदनेवाले, पहलवान, जादूगर, नगर की शोभा रूप, वैतालिक, नाई आदि व्यवसाइयो का उल्लेख मिलता है।[2] दीघ–निकाय मे हमे

---

१ टी० डब्लू० राइस डेविड्स, बौद्ध भारत, हि० अनु० भुवनाथ चतुर्वेदी, पृष्ठ ६३,

२ विधुर जातक, जातक सख्या ५४५,

अनेकत्र विभिन्न व्यवसाइयो की सूची दिखाई पडती है। एक स्थान पर विविध शिल्पो की गणना की गई है।[1] मगधराज अजातशत्रु भगवान बुद्ध से पूछते है 'भन्ते। यह भिन्न–भिन्न शिल्प–स्थान (विद्या, कला) है –

१ हस्ति आरोहरण (=हाथी की सवारी)	२ अश्वारोहण,
३ रथिक	४ धनुर्ग्राह
५ चेलक (=युद्धध्वज–धारण)	६ चलक (=व्यूह रचना)
७ पिडदायिक (=पिड बॉटनेवाला)	८ उग्र राजपुत्र (=वीर राजपुत्र)
६ महानाग (=हाथी से युद्ध करने वाले)	१० चर्म (=ढाल)–योधी
११ दासपुत्र	१२ आलारिक (बावर्ची)
१३ कल्पक (=हजाम)	१४ नहापक (=नहलानेवाले)
१५ सूद (=वाचक)	१६ मालाकार
१७ रजक	१८ पेशकार (रगरेज)
१६ नलकार	२० कुभकार
२१ गणक	२२ मुद्रिक (=हाथ से गिननेवाले)

इन व्यवसायियो की गणना के बाद अजातशत्रु कहता है "और जो दूसरे भी इस प्रकार के भिन्न–भिन्न शिल्प हैं," उपरोक्त सवाद स्पष्ट करता है कि प्रचलित शिल्पो की सख्या बहुत अधिक थी। हो सकता है इनके भी सघ रहे हो परन्तु इसके विषय कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

---

१. दीघ–निकाय, सामञ्ञफल सुत्त १/२.

एक व्यवसाय का अनुसरण करने वाले एक स्थान पर रहने लगे। बुद्ध कालीन भारत मे विभिन्न उद्योगो का स्थानीयकरण लक्षित होता है। वाराणसी के पास हजार परिवारो वाला बढइयो का ग्राम था।[1] वाराणसी के ही समीप एक अन्य पॉच सौ बढइयो वाला बढई–ग्राम था।[2] इसी प्रकार अन्यत्र भी बढई ग्राम का उल्लेख मिलता है।[3] सूची जातक मे हजार–घर वाला लोहारो का गॉव उल्लिखित है।[4] काशी के द्वार पर एक कुम्भकार ग्राम था।[5] श्रावस्ती के समीप एक नलकार ग्राम था।[6] नदी के दोनो तटो पर पॉच–पॉच सौ कुलो का निषाद–ग्राम था।[7] चोर डाकुओ की भी अपनी वस्ती होती थी।[8]

ग्रामो के अतिरिक्त एक प्रकार का व्यवसाय करने वालो का निवास कभी–कभी पूरी गली मे रहता था। दन्तकार–गली मे हाथीदॉत की वस्तुए बनायी एव वेची जाती थी।[9] श्रावस्ती मे कमल–गली थी जहॉ पुष्प एव मालाये बिकते थे।[10] घ्रत जातक मे धोबी–गली का प्रसग आया है।[11] विभिन्न व्यवसायियो के स्थानीयकरण से इन उद्योगो के सगठन मे सहायता मिली होगी।

विविध व्यवसायी वशक्रमानुगम व्यवसाय मे लगे थे। इससे उन्हे अपने कार्य मे प्रवीणता तो हासिल हुई एव एक श्रेणी के वे स्वत वशानुक्रम मे सदस्य बने रहे। एक ही व्यवसाय के अपनाने के कारण परिवार को उसी व्यवसाय जैसे लोहर–कुल, कुम्भकार कुल, सार्थवाह कुल, नाविक कुल,[12] आदि के नाम से जाना जाता था।

---

१ समुद्दवाणिज जातक, सख्या ४६६,

२ अलीनचित्त जातक, सख्या १५६,

३ फन्दक जातक, सख्या ४०८, तच्छ सूकर जातक, सख्या ५४६,

४ सूची जातक,

५ जातक सख्या ४०८,

६ मज्झिम निकाय, हि० अ० पृष्ठ ४१६,

७ सामजातक, सख्या ५४०,

८ सतिगुम्ब जातक, सख्या ५०३,

९ जातक सख्या २२१,

१० पदुम जातक, जातक सख्या २६१,

११ घ्रत जातक,

१२ सुप्पारक जातक, सख्या ४६३,

प्रत्येक श्रेणी सगठन का एक प्रधान होता था जिसे जेट्ठक या प्रमुख कहा जाता था। प्रमुख शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत कम ही हुआ है। हजार घर वाले लोहार–गॉव मे एक प्रधान था।[१] हजार बढई वाले वड्ढकिगाम मे पॉच–पॉच सौ बढठयो के ऊपर एक जेट्ठक था।[२] भरुकच्छ नामक पत्तन ग्राम मे वोधिसत्व ज्येष्ठ–नाविक के पुत्र होकर पैदा हुए।[३]

इसी प्रकार कम्मार–जेट्ठक, मालाकार–जेट्ठक, सार्थवाह–जेट्ठक का उल्लेख मिलता है। यहॉ तक कि चोर–डाकू भी सगठित समूह मे रहने लगे थे। इनके भी 'जेट्ठक' होते थे। सतपत्त जातक मे वर्णित है कि वोधिसत्व पॉच सौ चोरो के सरदार बन, वटमारी तथा सेध लगाते हुए जीविका चलाई।

शिल्पियो के अलावा व्यापारियो की भी श्रेणियॉ होती थी। जिनके प्रधान धनशाली सेठ होते थे उनके पास अकूत सम्पदा होती थी एव वे ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत करते थे।

राजदरबार मे इन श्रेष्ठियो का बडा सम्मान था। राजाओ से उनके मित्रवत् सम्बन्ध होते थे तथा उनके यहॉ उनका आमन्त्रण निमत्रण होता था। श्रावस्ती का श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक, जो राजगृह के श्रेष्ठी का बहनोई था, किसी काम से राजगृह गया। उस समय राजगृह के श्रेष्ठी ने सघ–सहित बुद्ध को दूसरे दिन के लिए निमत्रण दे रखा था। इसलिए वह इस निमत्रण की तैयारी मे व्यस्त था। तब अनाथपिण्डिक गृहपति ने सोचा "पहिले मेरे आने पर यह गृह–पति सब काम छोडकर मेरे ही आव–भगत मे लगा रहता था आज विक्षिप्त सा दासो एव कमकरो को आज्ञा दे रहा है (महाभोज की तैयारी हेतु) – – – क्या इस गृहपति के (यहॉ) – – – लोग बाग सहित मगध–राज श्रेणिक बिम्बसार कल के लिए निमत्रित किये गये है?[४] वाराणसी के श्रेष्ठी का पुत्र 'महाधनकुमार' एव वाराणसी नरेश का पुत्र दोनो लगोटिया यार थे।[५] श्रेष्ठी राज्य पूजित एव नगर पूजित होते थे।[६]

---

१ सूची जातक,

२ समुद्दवाणिज जातक, जातक सख्या ४६६

३ सुप्पारक जातक, सख्या ४६३,

४ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ६/३/१

५ अट्ठान जातक, जातक संख्या ४२५,

६ सुधाभोजन जातक, जातक संख्या ५३५,

श्रेष्ठी का पद प्राय पैतृक होता था।[1] श्रेष्ठि–परिवार मे उत्पन्न वोधिसत्व, वयस्क होने पर श्रेष्ठी का पद पाकर चुल्लसेठी नाम से प्रसिद्ध हुए।[2] परन्तु अन्य व्यक्ति भी श्रेष्ठी का पद पा सकते थे। कुण्डकपूर्व जातक मे राजा प्रसन्न होकर एक दरिद्र व्यक्ति को श्रेष्ठी का पद देते है।[3] सामान्य तौर पर धनाढ्य व्यक्ति को ही श्रेष्ठी पद दिया जाता था।[4] श्रेणी–प्रमुखो को राज्य की प्रशासन व्यवस्था से सम्बद्ध किये जाने के भी प्रमाण मिलते है। वाराणसी का श्रेष्ठी तीन वार राजा की सेवा मे जाता था।[5] राजकीय सेवा मे नियुक्त 'उच्च पदाधिकारियो मे उसकी भी गणना होती थी[6] एव अन्य राजदरबारियो के साथ वह भी राजदरबार मे पीठासीन होता था।[7] उरग जातक मे कोशल राजा के दो श्रेष्ठी, राजसेवक एव महामात्य के पद पर नियुक्त थे[8] निग्रोध जातक मे पोत्तिक नामक जेट्ठक को मगध के राजा ने भाडागारिक नियुक्त किया तथा अन्य व्यापारिक/व्यवसायिक श्रेणियो (की गतिविधियो पर नजर रखने) का भी दायित्व सौपा था। श्रेष्ठी के नीचे 'अनु–श्रेष्ठी' का पद होता था।[9]

प्रतीत होता श्रेणी–मुख्यो को कुछ न्यायायिक अधिकार भी प्राप्त थे। एक स्थल पर श्रेणी–प्रमुख द्वारा एक मछुआरे की पत्नी को शारीरिक एव अर्थदण्ड देने का विवरण है।[10] समाज एव प्रशासन मे श्रेणी का महत्व सघादिसेस के उस नियम से स्पष्ट होता है जिसमे चोरी आदि अपराध की हुई भिक्षुणी यदि सन्यास लेने की इच्छुक हो तो उसे राजा, सघ, गण, पूग के साथ–साथ श्रेणी को भी सूचित करना होता है।[11] बडे–बडे श्रेष्ठी छोटे व्यापारियो को कारोबार के लिए भी प्रोत्साहित करते थे। श्रावस्ती के व्यापारी अनाथपिण्डिक ने व्यापारियो से हाथ की लिखित लेकर, अट्ठारह करोड धन ऋण दिया था तथा महासेट्ठी इस धन की वापसी के लिए उनसे तगादा नही करता था।[12]

---

१ वही,
सुधाभोजन जातक, जातक सख्या ५३५,
२ चुल्लसेट्ठि जातक
३ कुण्डकपूर्व जातक, जातक सख्या १०६,
४ सुधाभोजन जातक, जातक सख्या ५३५,
५ जातक सख्या ४२५,
६ कुरुधम्म जातक, जातक सख्या २७६, जातक सख्या ५३६,
७ महाजनक जातक, जातक सख्या ५३६,
८ उरग जातक, सख्या १५४,
६ विनयपिटक, हि० अ० पृ० ८८,
१० उभतोभट्ठ जातक, सख्या १३१,
११ विनयपिटक, भिक्खुनी–पातिमोक्ख, २/२, हि० अ० पृष्ठ ४४,
१२. खादिरगार जातक, सख्या ४०,

अध्याय-६

खान-पान, वस्त्राभूषण एवं मनोरंजन के साधन

खान-पान, वस्त्राभूषण एवं मनोरंजन के साधन

खान-पान

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य से बुद्धयुगीन समाज मे प्रचलित भोज्य प्रदार्थो की अच्छी जानकारी मिलती है। इस विषय मे विनयपिटक एव सुत्तपिटक के विभिन्न भागो मे जातक ग्रन्थ विशेष रूप से उपयोगी है। लोग शाकाहार के साथ–साथ मासाहार के भी पर्याप्त शौकीन थे। साथ मे विभिन्न पेय पदार्थो का भी प्रयोग किया जाता था।

शाकाहारी भोज्य पदार्थ-

बौद्ध साहित्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अन्नो मे सर्वप्रमुख फसल धान थी। इसकी अनेकानेक किस्मो शालि[1], व्रीहि[2], तण्डुल[3], नीवार[4], सॉवा[5], टागुन[6] तथा कोदो[7] आदि का उल्लेख मिलता है।

---

१ महावेस्सन्तर जातक, दीर्घ–निकाय, पृ० २७५, पृ० २४३, २३७, मूगपक्ख जातक, जातक, सख्या ५३८

२ मज्झिम–निकाय, हि०अ०प्र० ३७

३ विनय पिटक, ६/६/४

४ दीर्घ–निकाय, १/८, मज्झिम निकाय, हि०अ० पृ० ६२

५ सुत्त–निपात, हि०अ० पृ० ६६

६ सुत्त–निपात, हि०अ०पृ० ६६

७ मज्झिम–निकाय, हि०अ०पृ० ५०; दीर्घ–निकाय, हि०अ०पृ० २३७

जिनमे शालि को सबसे श्रेष्ठ माना जाता था। सुगन्धित एव स्वाष्टि शालि भात विभिन्न प्रकार के व्यजनो विशेषकर मास के साथ देना एक उत्तम भोज्य था।[1] कजूस विलारि कोसिय सेठ ने ब्राह्मणो को वैलो के लिए पका भात भोजन मे दिलवाया। ब्राह्मणो के गले मे भात अटक जाने पर भिक्षुक विहोश हो गये तब सेठ ने अपनी मर्यादा बचाने के लिए, उन बाह्मणो को मृत जान उनके पात्रो मे नाना प्रकार के रसो के साथ शालि भात परोसा[2]। शालि–भात घृत मिश्रित होने पर और भी स्वादिष्ट हो जाता था। स्थविरी को उदर पीडा होने पर स्थविर कोशल–नरेश के यहॉ से रोहित मछली का सूप एव नवीन घृत–मिश्रित शालि भात लाये।[3] दीर्घ–निकाय के चक्कवत्ति–सीहनाद–सुत्त मे कहा गया है कि यदि पापकर्मो मे इसी प्रकार वृद्धि होती गयी तो उस समय मनु यो का कोदो (= कुदूस) ही श्रेष्ठ (अग्र) भोजन होगा **जैसा कि इस समय शालिमासौदन प्रधान भोजन है।**[4] अच्छे धान की विशिष्टता होती थी कि वह कण एव तुष से रहित हो तथा सुगन्धयुक्त हो।[5]

---

१ दीर्घ–निकाय, हि०अ०पृ० ४१, महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७

२ विलारि कोसिय जातक, सख्या ४५०

३ सुफ्त जातक, २६२,

४ दीघ निकाय ३/३ हि अ० पृष्ठ २३७

५ दीघनिकाय, अञ्ञज सुत्त ३/४

तडुल चावल की बहुप्रचलित किस्म थी। बौद्ध ग्रन्थो[1] विशेषकर विनयपिटक[2] मे इसका बहुत उल्लेख आया है। दुर्भिक्ष के समय भिक्षुओ को विभिन्न खाद्य सामाग्री के साथ तडुल को आराम मे रखने एव हाथ से पकाने की अनुमति थी। ग्रामवासी बहुत सा नमक, तेल, तडुल आदि सामान गाडियो मे रखकर बौद्धसघ को भोजन देने के लिए अपनी बारी का इन्तजार करते थे।[3] मेडक गृहपति ने तडुल से ही उत्तम खाद्य–भोज्य तैयार करवाकर, साढे बारह सौ भिक्षुओ को गर्मधार दूध के साथ भोजन करवाया था।[4] नीवार[5], सावा[6], टागुन[7], कोदो[8] अपेक्षाकृत निम्नकोटि के चावल माने जाते थे।

चावल से साधारण रूप से तैयार होने वाले भात के अतिरिक्त अन्य भी विविध प्रकार के व्यजन बनाये जाते थे जिनमे 'यवागु' का विशिष्ट स्थान था। चावल मे अधिक पानी मिलाकर सम्भवत खिचडी या दलिया रूप मे यवागु निर्मित किया जाता था।

१– मज्झिम निकाय, हि० अ० पृ० ३७, विनय पिटक, महावग्ग, ६/६/६

२– विनयपिटक, महावग्ग, ६/३/१०

३– विनयपिटक, महावग्ग, ६/५/२

४– विनयपिटक, हि०अ० ६/६/३

५– महावेस्सन्तर जातक, दीघ–निकाय, कस्सप–सीहनादसुत्त १/८

६– दीघ–निकाय, १/८

७– सुत्त–निपात, २/२

८– मज्झिम–निकाय, हि०अ०पृ० ५०

भोजन के रूप मे यवागु तो ग्रहण ही किया जाता था प्राय प्रात काल के जलपान मे भी इसका प्रयोग होता था। अनाथपिण्डिक प्रात काल जेतवन विहार मे भिक्षुओ के लिए यवागु ले जाता था।[1] इन्द्रिय जातक[2] मे एक कथा आयी है कि एक प्रव्रजित अच्छा भोजन न पाने पर अपनी पूर्व–भार्या के पास चला जाता है जहॉ वो भिक्षुक का स्वागत यवागु, भात और सूप, व्यन्जन से करती है। विनयपिटक के महावग्ग मे भगवान बुद्ध यवागु के दस गुणो का उल्लेख करते हैं[3]

१– यवागु देने वाला आयु का दाता होता है,

२– वर्ण (= रूप) का दाता होता है,

३– सुख का दाता होता है,

४– बल का दाता होता है,

५– प्रतिभा का दाता होता है।

६– पीने पर क्षुधा को दूर करता है।

७– प्यास को दूर करता है।

८– वायु को अनुकूल करता है।

९– पेट को साफ करता है।

१०– न पचे को पचाता है।

१– खदिरगार जातक, जातक सख्या ४०,

२– इन्द्रिय जातक, जातक सख्या ४२३;

३– विनयपिटक, महावग्ग, ६/४/३

ब्राह्मण! खिचडी के ये दस गुण है।"

भलीभॉति पके हुए (गाढे दूध) दूध मे थोडा सा चावल डालकर खीर(पायस) बनाया जाता था जो एक खर्चीला व्यजन था। खीर मे घी, मधुर शक्कर एव कभी–कभी मधु का मिश्रण भी किया जाता था। एक दरिद्र कन्या के पिता को रक्तातिसार हो गया था। बिना पानी के दूध–घी–मधु तथा शक्कर से बनी खीर उसकी दवाई थी। परन्तु दरिद्रता के कारण वे उसे प्राप्त नही कर पा रहे थे।[1] सुजाता ने भगवान बुद्ध को दिव्य खीर का पान कराया था। दीघ–निकाय मे कन एव भूसी से रहित शुद्ध सुगन्धित चावल को दूध मे पकाने का उल्लेख उत्तम भोज्य पदार्थ के रुप मे है।[2] कसिभारद्वाज ने भगवान बुद्ध को कासे की बडी थाल मे खीर परोसी थी।[3]

चावल के पुअे (पूडे) भी बनाये जाते थे।[4] जो स्वाद मे मीठे होते थे। राजगृह के अति कजूस श्रेष्ठी को, मार्ग मे कुलथी भरे पूडे खाते एक नागरिक को देख उसे भी, पुडे खाने की इच्छा हुई। परन्तु इस डर से कही नौकर–चाकर पत्नी–बच्चो आदि घरवाले भी पुडे खायेगे अपनी पत्नी को ले सात मजिले प्रसाद मे ऊपर महातल्ले पर पुआ पकवाने के लिए गया। पुआ को मीठी पूडी की भाति कडाई मे छानकर बनाया जाता था तथा इसकी पिष्टी कनखी चावल, थोडा दूध, घी, मधु, गुड को सान कर बनायी जाती थी।[5] पुआ बच्चो का लोकप्रिय खाद्य था।[6]

---

१ सन्थव जातक, जातक सख्या १६२, जातक प्रथम, हि०अ०, पृ० १३१

२ दीघ–निकाय, हि०अ०, २७६

३ सुत्त–निपात, कसिभारद्वाज सुत्त, १/४

४ विनयपिटक, हि०अ०, पृ० २५, बब्बु जातक, जातक स० १३७,

५ इल्लीस जातक, जातक संख्या ७८,

६ मूगपक्ख जातक, जातक संख्या ५३८;

चावल से एक अन्य पदार्थ (खाजा) भी बनाया जाता था।[1] कुराडकपूव जातक मे एक दरिद्र मनुष्य द्वारा शास्ता के लिए खाजा बनाने का वर्णन है।[2]

चावल के अतिरिक्त अन्य अन्नो का भी विभिन्न पदार्थ बनाया जाता था। जौ एव गेहूँ को पीसकर आटा बनाया जाता था एव उसकी रोटी बनायी जाती थी।[3] जौ का भात भी गरीब लोग खाते थे।[4] विभिन्न अन्नो को पीसकर बनाये जाने वाले सत्तु की चर्चा भी साहित्य मे अनेक स्थानो पर आती है। सत्तू के लिए कहा गया है कि यह सात प्रकार के अन्नो को पीसकर बनाया जाता था।[5] सत्तु के सम्बन्ध मे यह बात उल्लेखनीय है कि प्राय पाथेय (मार्ग के भोजन) के रूप मे इसका प्रयोग प्रचलित था। एक ब्राह्मण भिक्षाटन द्वारा धन इकट्ठा करने हेतु जब घर से निकलता है तो ब्राह्मणी चमडे की थैली मे उसे मार्ग मे भोजन हेतु सत्तु देती है।[6]

१– कुण्डककुच्छि सिन्धव जातक, जातक सख्या २५४, कलजातक, जातक सख्या ५४, ब्रहाछत्त जातक जातक सख्या ३३६,

२– कुराडकपूव जातक, जातक सख्या १०६

३– प्रभा त्रिपाठी, प्राचीन पूर्वोत्तर भारत, पृ० २१७

४– महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६,

५– प्राचीन पूर्वोत्तर भारत, पृ० २१८

६– सत्तुभस्त जातक, जातक सख्या ४०२

सुदरुथ स्थान पर हाथी–दात के लिए हाथी के शिकार पर जाने वाले शिकारी के लिए रानी सत्तु आदि भोजन का प्रबन्ध करती थी।[1] महावेस्सन्तर जातक मे मधु–मिश्रित सत्तु को स्वादिष्ट भोजन कहा गया है।[2] सत्तु आजकल के फास्ट–फूड (शीघ्र तैयार होने वाला भोज्य) के समान था जिसे बिना किसी कठिनाई के मार्ग आदि मे मीठा (एव सम्भवत नमक के साथ भी) मिश्रित कर खाया जाता था।

मीठे भोज्य पदार्थ

मीठे भोज्य पदार्थों मे लड्डू, गुड, शहद, शक्कर, खाड आदि का उल्लेख मिलता है। लड्डू के लिए मधुपिन्ड[3], मधुगोलक[4] एव मोदक[5] शब्दो का प्रयोग मिलता है। तपस्सु एव भल्लिक नामक दो बनजारे उत्कल देश से उरुबेला पहुँचे जहाँ उन्होने सप्ताह भर पूर्व बुद्धपद को प्राप्त भगवान बुद्ध को लड्डू (मधुपिड) एव मट्ठे (मन्थ) से स्वागत किया। यही तपस्सु एव भल्लिक ससार मे बुद्ध एव धर्म के प्रथम उपासक हुए। कुल्माष के लड्डु भी बनाये जाते थे श्रावस्ती के एक माली के पुत्री ने शास्त्रा को कुल्माष के लड्डु भेट किये थे।[6] महाउम्मग्ग जातक मे तिल के लड्डुओ का उल्लेख आया है।[7] पिसे तिल एव चावल से भी कोई मीठा भोज्य बनाता था जिसे सम्भवत श्राद्ध आदि मे चढाया जाता था।[8]

---

१ छद्दन्त जातक, जातक सख्या ५१४

२ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७,

३ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/४, मज्झिम–निकाय, १/२/८

४ विनयपिटक, महापग्ग, ६/४/३

५ सयुत्त निकाय, १, पृ० १४८, अगुत्तर–निकाय, १, पृ० १३०, ३, पृ० ७६

६ कुम्मासपिराड जातक, जातक सख्या ४१५

७ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६

८ कच्चानि जातक, जातक संख्या ४१७

गुड भोजन को मीठा बनाने वाले तत्वो मे सर्वप्रमुख था।[1] विभिन्न व्यजनो मे इसका प्रयोग करके भोजन को मीठा एव सुस्वादु बनाया जाता था।[2]

शहद का प्रयोग भी प्रचलित था।[3]

मिठाइयो मे खाजा भी लोकप्रिय था। जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

सब्जियॉ

पालि साहित्य से सब्जियो के विषय मे भी कुछ सूचना प्राप्त होती है। लौकी[4], कद्दू[4], कटहल[5], साग[6], पेठा[7], लहसुन[8], भसील[9], कमलनाल[10] आदि प्रमुख तरकारियॉ थी साग को सादे आहार के रूप मे ग्रहण किया जाता था।[11]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ६/४/५, महावग्ग ६/६/४, खदिरगार जातक जातक सख्या ४०, सयुक्त निकाय १/७/२/३

२ इल्लीस जातक

३ खदिरगार जातक, जातक सख्या ४०, वि०पि० महावग्ग, ६/३/११, महासीलव जातक, जातक सख्या ५१

४ पणिणाक जातक, जातक सख्या १०२, कुदाल जातक, जातक सख्या, ७०

५ अम्ब जातक, जातक सख्या १२४, महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७

६ कुदाल जातक, जातक सख्या ७०

७ छद्दन्त जातक, जातक सख्या ५१४

८ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७, विनयपिटक हि०अ० पृ० ५२

९ विनयपिटक, महावग्ग, ६/३/११

१० विनयपिटक, महावग्ग, ६/३/११

११ दीघ–निकाय, १/८, हि०अ० पृ० ६३, ६४

तेल तथा मसाले

तिल[1] तथा सरसो[2] से मुख्यत तेल प्राप्त होता था। इनका स्थान–स्थान पर उल्लेख आया है। इसके अतिरिक्त अरण्डी[3] (रेडी) और अलसी[4] (तीसी) से भी तेल प्राप्त होता था।

भोजन तैयार करने हेतु विभिन्न प्रकार के मसालो का प्रयोग किया जाता था। विनयपिटक के महावग्ग मे विभिन्न प्रकार के नमक–सामुद्रिक नमक, काला नमक, सेधा नमक, वानस्पतिक (नमक) बिलाल (एक प्रकार का नमक) का उल्लेख मिलता है।[5] अन्य मसालो मे हींग[6], हल्दी।[7] हर्रा[8], बहेडा[9], पिप्पली[10], मिर्च[11], राई[12], अदरख[13], जीरा[14] आदि का भी उल्लेख मिलता है।

---

१ विनयपिटक, महावग्गा ६/३/११, सुत्त–निपात, ३/१०

२ विनयपिटक, चुल्लवग्गा, ६/२/१, हि०अ० पृ० ४५३, महावेस्सन्तर जातक,

३ जातक सख्या १०६

४ दीघ–निकाय, हि०अ० पृ० २६४, ३/७

५ विनयपिटक महावग्गा, ६/१/८

६ विनयपिटक, महावग्ग, ६/१/७

७ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या

८ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/६

९ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/६

१० विनयपिटक, महावग्ग, ६/१/६

११ कुम्भजातक, जातक सख्या ५१२

१२ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७

१३ विनयपिटक, महावग्ग, ६/१/३ हि०अ० पृ० २१६, लोल जातक, जातक संख्या २७४

१४ लोल जातक, जातक सख्या २७४

यूस अथवा जूस

दाल को जूस या यूस कहते थे। बौद्ध ग्रन्थो मे विभिन्न प्रकार की दालो मूँग[1], मटर[2], उडद[3], अरहर[4], कुल्थी[5], मसूर आदि के उल्लेख मिलते है। सम्पूर्ण भोजन का दाल एक आवश्यक अग था। भात एव यवागु के साथ प्राय दाल (सूप) भी परोसा जाता था।

मज्झिम निकाय मे भगवान बुद्ध कहते है कि मैने निराहार रहने का विचार त्याग कर यह सोचा कि– "क्यो न मै थोडा–थोडा आहार ग्रहण करुँ। पसर भर मूग का जूस या कुलथी का जूस या मटर का जूस या अरहर का जूस।" कुल्थी के पुए भी बनाये जाते थे।[6] यह सम्भवत आधुनिक कचौडी की भॉति होगा। स्पष्ट है कि पकी दाल हल्के आहार के रूप मे भी ग्रहण की जाती थी। दाल को स्वादिष्ट बनाने के लिए दाल मे आम की फारियॉ भी डाली जाती थी।[7]

गोरस

आहार मे दूध एव उससे बने विभिन्न पदार्थो का महत्वपूर्ण स्थान था। दूध, दही, तक्र (छाछ) नवनीत (मक्खन) एव घी का बौद्ध साहित्य मे स्थान–स्थान पर उल्लेख है जो इसके लोकप्रिय होने का प्रमाण है।[8] मेडक गृहपति ने भगवान् बुद्ध सहित साढे बारह सौ भिक्षुओ को साढे बारह सौ गायो का धार–उष्ण दूध पिलाया था।[9] घी विभिन्न वस्तुओ को छानने–छौकने

---

१ मज्झिम निकाय, १/१/१०, सुत्त–निपात ३/१०, विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/४

२ मज्झिम निकाय, २/४/५, सुत्त निकाय ३/१०, सयुत्त–निकाय १/६/१/१०

३ मज्झिम निकाय, १/१/१०, विनयपिटक ६/६/४

४ मज्झिम निकाय, २/४/५

५ मज्झिम निकाय, २/४/५,
महावेस्सन्तर जातक, इल्लीस जातक, जातक सख्या ७८,

६ इल्लीस जातक, सख्या ७८,

७ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/१/७

८. विनयपिटक , महावग्ग, ६/६/३, दीघ–निकाय, हि०अ० पृ० ३५०, सयुक्त–निकाय, हि०अ० पृ० ४४४

९ विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/३

के अतिरिक्त भात आदि मे मिश्रित कर भोजन को सुस्वादु बनाने के काम आता था।[1] भगवान बुद्ध ने भिक्षुओ को उपर्युक्त पच गोरसो का प्रयोग करने के अनुमति दी थी।[2] दूध से स्वादिष्ट खीर बनायी जाती थी।[3] गाय एव भैस के अतिरिक्त बकरी का दूध भी लोग पीते थे।[4]

फल

विभिन्न फलो का व्यवहार किया जाता था।

आम[5], जामुन[6], अगूर[7], बेर[8], खजूर[9], ऑवला[10], केला[11], नारियल[12], कैथा[13], फाल्सा[14], नीबू[15], सिघाडा[16], बेल[17] आदि का प्रयोग किया जाता था।

---

१ इल्लीस जातक,

२ विनयपिटक, वही

३ जातक प्रथम, हि०अ० पृ० १३१,

४ धूमकरी जातक,

५ विनयपिटक, हि०अ० पृ० २५६, दीघ–निकाय, हि०अ० पृ० १५

६ अम्ब जातक, जातक सख्या १२४, महावेस्सन्तर जातक, सख्या ५४७,

७ विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/६ महावेस्सन्तर जातक, वालोदक जातक,

८ सुत्त–निपात, ३/१०,

९ महावेस्सन्तर जातक,

१० सुत्त–निपात, ३/१०, कुम्भ जातक, जातक सख्या ५१२,

११ विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/६, सुयक्त निकाय, १/३/२, जातक सख्या ५१४,

१२ महावेस्सन्तर जातक,

१३ महावेस्सन्तर जातक,

१४ विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/६

१५ जातक सख्या ५१४,

१६ महावेस्सन्तर जातक

१७ सुत्त–निपात ३/१०

पेय पदार्थ

अन्न, मास, सब्जी एव फल के साथ–साथ प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे अनेक प्रकार के पेय पदार्थो की चर्चा भी आती है। ये पेय पदार्थ दो प्रकार के होते थे एक तो साधारण पेय पदार्थ– जिसके पीने से किसी प्रकार का नशा नहीं होता था। दूसरे प्रकार के पेय पदार्थ मादक पेय पदार्थ थे।

साधारण पेय पदार्थ

विनयपिटक के महावग्ग मे विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थो का प्रसग आया है। भगवान बुद्ध जब आपण पहुँचे तो केणिय जटिल ने बहुत सा पान (पीने की चीज) तैयार करा बुद्ध–सहित सघ को अपने हाथ से पान करवाकर सतर्पित किया। इस सबध मे भगवान् ने भिक्षुओ को निम्नलिखित पेय पदार्थो की अनुमति दी– "भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कि आठ पानो (पेय वस्तुओ) की–

१ आम्रपान

२ जम्बूपान

३ चोचपान

४ मोच (– केला) पान

५ मधु–मान

६ अगूर का पान

७ सालूक (–कोई का जल)

८ फारुसक (– फाल्सा) पान

इसके बाद भिक्षुओ को अनाज के फल के रस को छोड सभी फलो के रस का पान की अनुमति दी गयी।[1]

---

१. विनयपिटक, महावग्ग, ६/६/६

स्पष्ट है कि लोग विभिन्न फलो का शरवत बना कर पीते थे। इनमे सबसे अधिक प्रिय आम्र–रस[1] एव अगूर का रस[2] था। अब्भन्तर जातक मे आम्र–रस निर्माण की पूरी प्रक्रिया दी गयी है। प्रव्रजित राहुल माता की उदर–वायु अशान्त होने पर राहुल को, अस्वस्थ्य भिक्षुणी को देने हेतु कोशल नरेश ने आमो का छिलका उतार कर उसमे शक्कर मिला अपने हाथो से भली भॉति मसलकर, पात्र भर कर दिया।

फलो के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के पत्तो एव फूलो का रस भी पीया जाता था। भिक्षुओ के लिए ढाक के रस को छोड सभी पत्तो का रस, एक महुए के फल के रस को छोड सभी फूलो के रस एव अख का रस पीने की अनुमति थी।[3] जातक कथाओ मे तपस्वीयो एव प्रव्रजितो के अत्यन्त साधारण भोजन के सम्बन्ध मे बिना नमक के, बिना छौके, केवल पानी मे उबाले पत्तो का प्रेम पूर्वक खाने का प्रसग आया है।[4] महाकपि जातक मे खॉड के शरबत का उल्लेख आया है।[5]

मज्झिम निकाय मे दही, मधु, घी, खॉड (काणिज) को एक मे मिलकर अतिसार के रोगी को पीने को दिया गया है। महासुतसोम जातक चावल के द्वारा निर्मित वारुण नामक पेय का सौ से अधिक क्षत्रियो द्वारा पान करने का उल्लेख आया है।

---

१ अब्भन्तर जातक, जातक सख्या २८१

२ वालोदक जातक, जातक सख्या १८३

३ विनयपिटक, महावग्ग ६/६/६

४ केसव जातक, जातक सख्या ३४६, मूगपक्ख जातक, जातक सख्या ५३८, अकित्ति जातक, जातक सख्या ४८०

५ महाकपि जातक, जातक सख्या ४०७

मादक पेय पदार्थ

बौद्ध कालीन भारत मे प्रचलित मद्यपान की लोकप्रियता पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त साक्ष्य मिलते है। सुरापान का अपना एक अलग उत्सव भी होता था जिसे सुरा–उत्सव कहा जाता था।[१] जिसमे पुरुषो के साथ–साथ स्त्रीयॉं एव प्रव्रजित भी सुरा का आनन्द लेते थे। श्रावस्ती मे सुरा–उत्सव की घोषणा होने पर पॉंच सौ स्त्रियो ने तेज सुरा तैयार कर उत्सव मनाने का सकल्प किया।[२] इसी प्रकार वाराणसी के सुरा–उत्सव मे 'प्रव्रजितो को शराब दुर्लभ होती है', ऐसा सोच कर उन्हे अत्युत्तम शराब उपलब्ध कराई गई।[३]

सुरापान उत्सव के अतिरिक्त अन्य त्यौहारो, उत्सवो एव प्रसन्नता के विशेष अवसरो पर लोग मद्यपान करते थे। प्रवजित पुत्र वेस्सन्तर के वापस राजधानी आने के खुशी के मौके पर शिविनरेश ने आज्ञा दी कि 'जिन मार्ग से मेरा पुत्र आये उस मार्ग मे गॉंव–गॉंव मे सुरा तथा मेरय के सौ-सौ घडे रखे जाये।[४] देवेन्द्र शक से फुसती देवी ने वर मॉंगा– मै वहॉं (सिविराज) जन्म लूॅं, जहॉं 'शराब पीओ, मास खाओ'' कहकर आदमियो को प्रबोधित किया जाता हो।[५] मद्य के विभिन्न प्रकारो का उल्लेख साहित्य मे मिलता है जैसे सुरा[६], मेरथ[७], कबूतरी शराब[८], तुषोदक[९], वारुणी कच्ची शराब को मेरय कहा जाता था, किन्तु अन्नो से बनने वाली हल्की शराब सुरा के नाम से प्रसिद्ध थी।

---

१ सिगाल जातक, जातक सख्या १४२

२ कुम्भ जातक, जातक सख्या ५१२

३ सुरापान जातक, जातक सख्या ८१

४ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७

५ वही

६ विनयपिटक, हि०अ० पृ० २७, जातक सख्या ४५६

७ विनयपिटक, हि०अ० पृ० २७, जातक सख्या ४५४

८. सुरापान जातक, जातक सख्या ८१,

९ दीघ–निकाय, १/८ हि०अ० पृ० ६३

साहित्य मे आये मद्यपान के विभिन्न प्रसगो के बावजूद इसे एक सात्विक कार्य के रूप मे नही देखा जाता था। भगवान बुद्ध ने विभिन्न स्थानो पर भिक्षुओ के लिए इसका निषेघ किया।[1] परन्तु दवा के रूप मे तेलपाक मे मद्य डाने की अनुमति दी थी। परन्तु जो तेल मे अधिक मद्य डाले उसके लिए दण्ड की व्यवस्था थी। तेल मे मद्य इस अनुपान मे मिलाना चाहिए कि मद्य का रग, गन्ध और रस न जान पडे। अधिक मद्य डालकर पकाये हुए तेल से शरीर की मालिश की जा सकती थी।[2] वाराणसी के कुलीन तरूण को अपने मित्रो की सगति मे सुरापान की लत पडगयी थी। पिता के बार–बार आग्रह करने पर भी जब वह इसे छोड नहीं सका तब उसके पिता ने न्यायालय मे जाकर 'अपुत्र' होने की घोषणा कर उसे देश निकलवा दिया। वह आगे चलकर निराधार हो, दरिद्र हो, चीथड पहन, हाथ मे ठठा ले भीख मागता हुआ, एक दीवार के पास पडा–पडा मर गया।[3]

इसी प्रकार मद्यपान से कई धनपति भी बर्बाद हो गये। अस्सी करोड धन वाले महाधनक नामक श्रेष्ठी ने शराब आदि नाना व्यसनो मे अपन सब धन विनष्ट कर दिया।[4] अनाथपिण्डिक का भानजा माता–पिता से प्राप्त चालीस करोड धन सुरापान मे नष्ट कर अन्त मे स्वय विनाश को प्राप्त हो गया।[5]

---

१ विनयपिटक, भिक्खु–पातिमोक्ख, हि०अ० पृ० २७, सुरापान जातक, पृ० ८१

२ विनयपिटक, महावग्ग, ६/२/१

३ महासुतसोम जातक, जातक सख्या ५३७

४ रूर जातक, जातक सख्या ४८२,

५, भद्रघट जातक, जातक सख्या २९१,

सुरापान के व्यसनी धन के न होने पर अनैतिक साधनो से अपनी इच्छा पूर्ति का प्रयत्न करते थे। शराबियो ने पैसा समाप्त हो जाने पर शराब की वाटी मे विहोशी की दवा मिलाकर दुकान लगा ली एव मार्ग मे आते हुए महाश्रेष्ठी अनार्थपिण्डिक को लूटने की योजना बनायी।[1] शराबी नशे मे कभी कभी अशोभनीय हरकते करते थे। कुम्भ जातक मे सुरा के दोषो पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।[2] समुद्रवाणिज जातक मे उल्लेख आया है कि मूर्ख पॉच सौ बढइयो ने शराब के नशे मे गाते–नाचते खेलते मदमस्त होकर जहॉ–तहॉ पेशाब–पाखाना' कर दिया।[3]

शराब के व्यापारी के रूप मे बडे बडे सेठो का भी उल्लेख मिलता है। एक शराब का व्यापारी अनाथपिण्डिक का मित्र था। वह लोगो से हिरण्य, सोना आदि लेकर शराब वेचता था।[4] अगुत्तर–निकाय मे शराब की दुकानदारी करना अनुचित माना गया है।

मासाहार

बुद्धकालीन समाज मे शाकाहारी भोज्य पदार्थो के साथ साथ मासाहार भी बडे पैमाने पर ग्रहण किया जाता था। दीघ निकाय के चक्कवत्ति–सीहनाद–सुत्त मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'वर्तमान समय मे शालि भात के साथ मास प्रधान (उत्तम) भोजन है।'[5] मूगपक्ख जातक मे काशीराज कहते है, मै मास के साथ शुद्ध शाली के भात का भोजन करता हूँ अब पत्ते नही खा सकता हूँ।[6] यही तथ्य अन्यत्र भी स्पष्ट होता है।[7]

---

१ पुराणपति जातक, जातक सख्या ५३,

२ कुम्भ जातक, जातक सख्या ५१२,

३ समुद्रवाणिज्य जातक, जातक सख्या ४६६,

४ वारुणी जातक, जातक सख्या ४७,

५ १– दीघ–निकाय ३/३

६ मूगपक्ख जातक, जातक सख्या ५३८,
न चाह पण्ण भुज्जामि न हेत मठह भोजन
सालीन ओदन भुञ्जे सुचि मसूपसेवन।

७ केसव जातक, जातक सख्या ३४६,

मासाहार की सुलभता के कारण कभी–कभी लोग वही अपना निवास–स्थान बना लेते थे। कुछ प्रत्यन्त देशवासी जहॉ–जहॉ बहुत मॉस मिलता, वहीं वही गॉव वसा कर, जगल मे जा, घूम घूम कर मृगादि मार, मास ला अपने स्त्री–बच्चो को पालते थे जैसे– शिकारी,[1] निषाद,[2] चिडिमार,[3] मछुए[4] जिनकी जीविका ही मासाहार पर निर्भर थी, इनके अतिरिक्त राजा, महाराजाओ,[5] ब्राह्मणो[6] एव नवयुवको द्वारा भी पशु–पक्षी का शिकार कर मासाहार का आनन्द लिया जाता था। स्थान–स्थान पर मॉस की दुकाने लगी रहती थी।[7] इसके साथ साथ गाडियो पर मास लादकर[8] एव वैहगी[9] मे भर कर भी इसका विक्रय किया जाता था।

पशु-मांस

१- मृग-मांस-

पशुओ के मासाहार मे मृग–मास की विशिष्ट माग थी। बनारस का राजा बिना मृग–मास के भोजन नहीं करता था।[10] भल्लाटिक नामक राजा की इच्छा हुई कि वह अगार मे पका हुआ मृग–मॉस खाये। उसने अपना राज्य अमात्यो को सौंप, गगा मे गिरने वाली एक नदी देख

---

१ जातक सख्या ३१५,

२ जातक सख्या ५०१,

३ चुल्लहस जातक, जातक सख्या ५३३,

४ सयुत्त निकाय, हि० अ० ५४,

५ कुरगमिग जातक, जातक सख्या २१,

६ भूरिदत्त जातक, जातक सख्या ५४३,

७ निमि जातक, जातक सख्या ५४१,

८ मस जातक, जातक सख्या ३१५,

६ जातक सख्या ५४३,

१० निग्रोध मृग जातक, जातक सख्या १२,

उसी के साथ साथ चल, मृग – सुअर आदि मार, उनका अगार–पका मास खाता हुआ इधर–उधर विचरण किया।[1] चुल्लधनुग्गह जातक मे वटमारी करने वाले पचास चोरो के मृग–मास खाने' का उल्लेख है।[2]

वाराणसी का द्वार ग्रामवासी एक व्राह्मण, अपने सोमदत्त नाम के पुत्र के साथ जगल जा, मृणो को मार वैहगी पर मास रख वेचकर, जीविका चलाता था।[3] इसी प्रकार अन्यत्र भी मृग के शिकार एव मासाहार का उल्लेख मिलता है।[4]

सुअर मांस

पशुओ के मास मे सुअर–मासाहार का अनेकत्र प्रसग मिलता है। विवाह आदि मे सुअर मास का व्यजन परोसा जाता था।[5] सुअर का उत्तम मास प्राप्त करने हेतु उसे उत्तम खाद्य पदार्थ यवागु-भात खिलाया जाता था। भगवान बुद्ध ने जो अन्तिम आहार ग्रहण किया था उसमे सुअर मास भी था। चुन्द नामक कर्मारपुत्र ने पावा मे भगवान बुद्ध को भिक्षुसघ सहित उत्तम खद्यभोज्य एव बहुत सा शकर–मार्दव (= सूकर–मद्दव) का भोज दिया था। जिसको खाने के वाद भगवान् को खून गिरने की कडी बीमारी उत्पन्न हुई एव मरणान्तक पीडा होने लगी।[6]

१– भल्लाटिय जातक, जातक सख्या ५०४,

२– चुल्लधनुग्गह जातक, जातक सख्या ३७४,

३– भूरिदत्त जातक, सख्या ५४३,

४– इन्द्रिय जातक, जातक सख्या ४२३, सुवण्णमिग जातक, जातक सख्या ३५६,

५– मुनिक जातक, जातक सख्या ३०,

६– दीघ– निकाय, महापरिनिव्वाण–सुत्त २/३,

अन्य विविध पशुओ जैसे बैल,[1] बकरी,[2] श्रृगाल,[3] वानर,[4] गोह[5] आदि का मास खाया जाता था। दुर्भिक्ष के समय लोगो द्वारा हाथी, घोडे, कुत्ते, सॉप, सिह, वाघ चीते, भालू, लकडबग्घा का मास खाया जाता था जिसका भिक्षुओ के लिए निषेध था।[6]

पक्षी मांस-

पक्षीयो का मास भी लोग बडी रूचि के साथ ग्रहण करते थे। जातक कथाओ मे बटेर,[7] हस,[8] तित्तिर,[9] चील,[10] मोर,[11] मुर्गे,[12] कौवे,[13] के मास खाने का उल्लेख मिलता है।

१– गहपति जातक जातक सख्या १६६, सखपाल जातक, जातक सख्या,

२– तक्कारिय जातक, जातक सख्या ४८१,

३– सिगाल जातक, जातक सख्या १४२,

४– महाकवि जातक जातक सख्या ४०७,

५– पक्कगोध जातक, जातक सख्या ३३३,

गोध जातक, जातक सख्या १३८,

६– विनयपिटक महावग्ग, ६/४/२,

७– सम्मोदमान जातक, सख्या ३३,

वट्टक जातक, ११८,

८– हस जातक, जातक सख्या ५०२,

चुल्लहस जातक, जातक सख्या ५३३,

९ तित्तिर जातक, जातक सख्या ११७, कुम्भ जातक, जातक सख्या ५१२,

१० महाउक्कुस जातक, जातक सख्या ४६४

११ मोर जातक, जातक सख्या १५६

१२ सिरिजातक, जातक सख्या २८४, कुम्भ जातक, जातक सख्या ५१२

१३ पुण्णानदी जातक, जातक सख्या २१४

मत्स्य - मास

मत्स्य–मास के भी लोग शौकीन थे।[1] मछली पकडने के बाद प्राय नदी एव तालाब के किनारे बालू पर उसे रख देते थे फिर अगारो मे पका कर खाते थे। रोहित मछली का सूप एव नवीन घृत मिश्रित शाली भात बडे स्वाद से लोग खाते थे। चक्कवाक जातक मे मछली के विभिन्न प्रकारो जैसे पाठी, पावुस, वालस, मुज्ज तथा रोहित आदि मछलियो का उल्लेख मिलता है।[2]

मानव-मास

कही–कही तत्कालीन मानव की मास–लालसा अपने घिनौने रूप मे भी दिखाई देती है। वाराणसी नरेश को मानव–मास भक्षण की लत लग गयी थी। यद्यपि राजा को अपनी इस आदत की बडी कीमत चुकानी पडी। सेनापति एव राज्यवासियो ने राजा का देश निकाला दे दिया।[3] विनयपिटक मे सुप्रिया नामक परम श्रद्धालु उपासिका द्वारा एक भिक्षु को अपना मास खिलाने का प्रसग आता है।[4] जिस पर भगवान् ने भिक्षु को फटकारा एव मानव मास खाने वालो के लिए दण्ड की व्यवस्था की। मास सबधी बहुसख्यक प्रसगो मे स्पष्ट है कि मासाहार तत्कालीन समाज मे प्रचलित था एव बडे पैमाने पर उसका उपयोग किया जाता था। एक स्थान पर तो मासाहार धर्माचरण के अर्न्तगत उपदिष्ट किया गया है। देवेन्द्र शक्र एक स्थान

---

१ लोल जातक, जातक सख्या २७४, हरितमात जातक, जातक सख्या २३६, उभतोभट्ठ जातक, जातक सख्या १३६, मितचिनी जातक सख्या ११४ सिगाल जातक, जातक सख्या ११३

२ चक्कवाक जातक, जातक सख्या ४५१

३ महासुतसोम जातक

४ विनयपिटक, महावग्ग, ६/४/२

पर राजा को उपदेश देते हुए कहते है– हे राजन्! तुम मासोदन (पुलाव) खाओ, घी, खीर खाओ तथा मधु के साथ पुए खाओ। इस प्रकार धर्माचरण मे रत तुम आनन्दित रहकर स्वर्ग लोग को प्राप्त करोगे।[1] परन्तु मासाहार के बहुप्रचलन के होते हुए हमे इसके विरोध मे भी स्वर सुनाई देता है। सकिच्च जातक मे कहा गया है कि भेड को मारने वाले, सुअरो को मारने वाले, मछलियो को मारने वाले, हिरनो को मारने वाले शक्तियो से, लोहे के हथौडे से, तलवारो से तथा वाणो से मारे जाकरकर सिर नीचे पैर ऊपर क्षार नदी मे गिरते है।[2] इसी प्रकार का स्वर निमि जातक मे भी सुनायी पडता है– 'भेड मारने वाले, सूअर मारने वाले, मछली मारने वाले, बकरी–भेड ओर भैस मारने वाले जब इन पशुओ को मारकर उनका मास बेचने के लिए दुकानो पर फैलाते है, तो इन रुद्र कर्म करनेवालो के पाप–कर्म पकने पर वे ढेर होकर गिर पडते है।'[3]

यद्यपि दवा के रुप मे पशुओ की चर्बी का प्रयोग कर सकते थे। "भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चर्बी की दवाई की, (जैसे कि) रीछ की चर्बी, मछली की चर्बी, सोस की चर्बी, सुअर की चर्बी, गधे की चर्बी, काल से लेकर काल से पका काल से, तेल के साथ मिलकर सेवन करने की।"[4]

---

१ कुम्भ जातक, जातक सख्या ५१२,
मसोढन सप्पीपाञ्ज मुञ्च खादस्सु चत्व मधुना अपूये
एव तुव धम्मरतो जनिन्द अनिन्दतो सग्गमुपेहि ठान।।

२ सकिच्च जातक, जातक सख्या ५३०
ओरभिका सूकरिका मच्छिका निगवन्धिका, चोरा गोघातका लुछा अवण्णे वण्णकारका
सत्तीहि लोहकूटेहि नेत्तिसेहि उसूहि च, हञमाना खारनदि पपतन्ति अवसिरा।।

३ निमि जातक, जातक सख्या ५४१
ओरब्भिका सूकरिका च मच्छिका
पसु महिसञ्च अजेलकञ्च
हन्त्वान सूनेसु पसारयिसु
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पाप
तेमे जना विलकता सथन्ति।

४ विनयपिटक, महावग्ग, ६/१/२,

वस्त्र

प्रारम्भिक पालि साहित्य मुख्यत विनयिपटक एव जातको से बुद्धयुगीन समाज मे प्रचलित वेषभूषा पर प्रकाश पडता है। वस्त्र निर्माण के क्षेत्र मे पर्याप्त विविधता दिखाईदेती है। अनेक स्थानो पर ६ प्रकार के वस्त्रो की गणना एक साथ की गई है ये छे प्रकार के वस्त्र है।[१]

(१) क्षौम (अलसी की छाल का वस्त्र)

(२) कपास

(३) कौशेय (रेशमी वस्त्र)

(४) कम्बल (ऊनी वस्त्र)

(५) सन (का वस्त्र)

(६) भॉग (की छाल का वस्त्र)

---

१ विनय पिटक, महावग्ग, १/४/७

वही ८/२/१

वही १/२/६

सभी प्रकार के वस्त्रो मे काशी का कपडा सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था।[1] महाउम्मग्ग जातक मे लाख के मूल्य के काशी के वस्त्र का उल्लेख आया है।[2] यहॉ के अनेक प्रकार के वस्त्रो मे सूती एव रेशमी वस्त्र विशिष्ट रुप से विख्यात थे। इसी प्रकार शिवि के दुशाले भी बहुमूल्य थे। उज्जैन के शासक प्रद्योत ने वैद्य जीवक कौमारभृत्य के पास बहुत सौ हजार दुशाले के जोडो मे अग्र (श्रेष्ठ) शिवि के दुशाले का जोडा भेजा था।[3] वाहीत[4], खोम एव कोदुम्बर[5] प्रदेश के वस्त्रो की भी दूर–दूर तक मॉग थी।

वस्त्रो का मूल्य उनकी सूक्ष्मता एव मृदुता से ऑका जाता था। कौशेय (रेशम), कपास (सूती) अलसी एव कम्बल (ऊन) के बहुमूल्य वस्त्र बनाये जाते थे। कुशावती नरेश के ऐश्वर्य की प्रशसा करते हुए भगवान् बुद्ध कहते है कि यहॉ के राजा के पास क्षौम (अलसी), कपास, कौशेय तथा ऊन के सूक्ष्म चौरासी हजार करोड वस्त्र थे।[6] इसी प्रकार एक स्थान पर अलसी, कपास, कौषेय और कम्बल के सूक्ष्म एव मृदु विछौनो (आस्तरणो) और प्रावरणो (ओढनो) के दान का महात्म वर्णित है।[7]

काशिराज ने प्रसिद्ध वैद्य जीवक कौमार–भृत्य के पास पॉच सौ का क्षौम (=अलसी की छाल का बना हुआ कपडा) –मिश्रित कम्बल भेजा था जिसको जीवक ने भगवान बुद्ध को दान कर दिया था।[8] इन छे प्रकार के वस्त्रो मे सन का कपडा साधारण एव सस्ता माना जाता था।[9]

---

१ सुयत्त निकाय, ५/४३/५/१०

२ महाउम्मग्ग जातक जातक सख्या ५४६,

३ विनयपिटक *महावग्ग* ८/१/१

४ मज्झिम निकाय २/४/८

५ जातक सख्या ५४७, जातक सख्या ५३६

६ दीघ निकाय, महासुदस्सन सुत्त,२/४

७ दीघ निकाय, लक्खणसुत्त३/७

८ विनय पिटक, महावग्ग, ८/१/४

९ दीघ निकाय, पृ ठ ६३

तपस्वियो एव भिक्षुओ द्वारा कुश घास एव वल्कल (छाल) निर्मित वस्त्र भी प्रयोग किये जाते थे।[१]

अनेक प्रकार के पशुओ के चमडे से भी वस्त्र बनाये जाते थे। षडवर्गीय भिक्षु सिह–चर्म, व्याघ्र–चर्म एव चीते के चर्म इन तीन महाचर्मो को धारण करते थे एव उसे चारपाई एव चौकी के नाप के बराबर काटकर बिछाते थे।[२] गाय के चमडे का भी इसी प्रकार उपयोग करने का उल्लेख मिलता है।[३] भिक्षुओ के लिए कोई भी चर्म धारण करने की आज्ञा नहीं थी।[४] इन पशुओ के चमडे के अतिरिक्त भेड के चमडे, बकरी के चमडे, मृग के चमडे,[५] बैल के चमडे[६] का भी वस्त्र रूप मे उपयोग होता था। चमडे के वस्त्रो का उपयोग मुख्यत विछाने एव ओढने मे ही किया जाता था। कादलि मृग–चर्म मूल्यवान् माना जाता था।

वालो एव विभिन्न पक्षियो के पखो का भी प्रयोग वस्त्र–निर्माण मे किया जाता था। मनुष्य के केश के कम्बल, घोडे के बाल के कम्बल एव उल्लू के पख के बने वस्त्र का प्रसग दीघ–निकाय मे आया है।[७] विनयपिटक मे भी एक भिक्षु द्वारा इस प्रकार के वस्त्र पहनने का उल्लेख है।[८]

---

१ मक्कट जातक, जातक सख्या १७३,
दीघ–निकाय, हि० अ० पृ ठ ६३,

२ विनयपिटक, महावग्ग, ८/२/५,

३ वही, ८/२/६

४ वही,

५ विनयपिटक, महावग्ग, ५/३/१

६ मज्झिम–निकाय, हि० अ० पृ ठ ४६,

७ दीघ निकाय, हि० अ० पृष्ठ ६३

८ विनयपिटक, महावग्ग ८/८/३

पालि–साहित्य से वेशभूषा सम्बन्धी जो जानकारी प्राप्त होती है उसको दो भागो मे विभक्त करके अध्ययन किया जा सकता है (१) भिक्षु भिक्षुणियो एव ब्राह्मण तपस्वी की वेशभूषा (२) गृहस्थो की वेशभूषा। प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य से सामान्य गृहस्थो के पहनावे–ओढावे से अधिक स्पष्ट जानकारी भिक्षु–भिक्षुणियो मे प्रचलित वेशभूषा की होती है।

पुरुष वेशभूषा

बौद्ध भिक्षुओ के लिए भगवान बुद्ध ने तीन प्रकार के चीवरो की अनुमति दी थी।[1] (१) सघाटी (=दोहरी चादर) (२) अन्तरवासक (=लुगी), (३) उत्तरासग (=चादर)। सख्या मे तीन वस्त्र होने के कारण ही इसे ही त्रिचीवर कहा जाता था।[2]

एक स्थल पर छाल के चीवर के वारह गुण गिनाये गये है।[3]

(१) सस्ता, सुन्दर तथा विहित होना यह पहला गुण है।

(२) अपने हाथ से बनाया जा सकता है।

(३) जल्दी मैला नहीं होता है और धोने मे भी कठिनाई नहीं होती।

(४) उपयोग करते करते फटने पर सीने की आवश्यकता न होना।

(५) नया ढुढने पर आसानी से मिल सकना।

(६) तापस साधुओ के अनुकूल होना।

---

१ विनयपिटक, हि० अ० पृ० ९७
विनयपिटक, महावग्ग १/४/६

२ विनयपिटक, महावग्ग, ८/४/२

३ जातक प्रथम, पृष्ठ ११,

(७) चोरो के काम का न होना।

(८) पहनने वाले के लिए शौक का कारण नहीं होना।

(६) पहनने मे हल्का होना

(१०) चीवर रूपी समान (=प्रत्यय) के विषय मे सन्तोष,

(११) छाल (=वल्कल) से उत्पन्न होने के कारण धर्म की दृष्टि से निर्दोष होना

(१२) छाल का चीवर न ट होने पर उसके लिए परवाह न होना।

भगवान ने मगध के खेतो को मेड बॅधा, कतार बॅधा, मर्यादा बॅधा और चौमेड बॅधा देखकर आनन्द को भिक्षुओ के लिए इसी प्रकार के चीवर बनाने को कहा। आयुष्मान् आनन्द ने भगवान की इच्छा समझकर बहुत से त्रिचीवरो को काट, सिलकर पहनने योग्य बनाया। आनन्द के कृत्य पर प्रसन्न होकर भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओ को सम्बोधित किया।

"भिक्षुओ! आनन्द पडित है, आनन्द महाप्रज्ञ है जो कि उसने मेरे सक्षेप से कहने का विस्तार मे अर्थ समझ लिया। क्यारी भी बनाई, आधी क्यारी भी बनाई मडल भी बनाया, अर्ध मडल भी बनाया, विवर्त (=मडल और अर्धमडल दोनो मिलाकर) भी बनाया, अनुविवर्त भी बनाया, ग्रैवेयक (गर्दन की जगह चीवर को मजबूत करने की दोहरी पट्टी) जाघेयक (=पिंडली की जगह चीवर को मजबूत करने की दोहरी पट्टी) बाहुवन्त (=बॉह की जगह का चीवर का भाग) भी बनाया। छिन्नक (=काटकर सिला चीवर) शस्त्र–रक्ष (=मौटा–झौटा) और श्रमणो के योग्य होगा और प्रत्यर्थी (=चुरानेवालो) के काम का न होगा।

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सघाटी, उत्तरासघ और अन्तरवासक को छिन्नक (=काट कर सिला) बनाने की।"

प्रारम्भ मे भिक्षु–भिक्षुणियो के केवल पासुकूल (फटे–पुराने वस्त्रो) को धारण करने की अनुमति थी। विनयपिटक मे उरुबेला के चमत्कार के वर्णन मे एक प्रसग आया है जिसमे स्वय भगवान बुद्ध पुराने चिथडो को पुष्करिणी मे धोकर, शिला पर फैलाकर सुखाते हैं।[२]

कौमारभृत्य जीवक के अनुरोध पर[३] "भन्ते! भगवान् मेरे इस शिवि (=देश के दुशाले के जोडो को स्वीकार करे और भिक्षु–सघ को गृहस्थो के दिये चीवर (=गृहपति–चीवर) की आज्ञा दे।" तब भगवान् ने शिवि के दुशाले को स्वीकार किया तथा भिक्षुओ को आशा दी कि जो चाहे पासुकूलिक रहे जो चाहे गृहपति चीवर धारण करे।[४]

सघ को प्राप्त होने वाले चीवर के भिक्षु–भिक्षुणियो के मध्य बँटवारा करने के लिए पूरी व्यवस्था सुस्थापित की गई थी। इसके लिए भिक्षु–सघ मे विभिन्न कर्मचारियो–चीवर–प्रतिग्राहक[५] (=ग्रहण करने वाले), चीवर–निदहक[६] (चीवर को रखने वाला), भडागारिक[७] (=भडारी) का चुनाव होता था।

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ८/४/१

२ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/१४

३ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/१

४ विनयपिटक, महावग्ग, ८/१/२

५ वही, ८/२/२

६ वही, ८/२/३,

७ वही, ८/२/४,

खुजली, फोडा, आस्राव या स्थूलकक्ष का रोग होने पर भिक्षु को कोपीन (कडूक प्रतिच्छादन) धारण करने की अनुमति थी।[1] वरसात मे कपडो के जल्दी न सूखने से बरसात भर के लिए भिक्षु लुगी के तौर पर पहनने लायक एक और चीवर ले सकता है, इसे वार्षिक शटिका कहते थे। इसका प्रमाण (नाप) सुबुद्ध के बित्ते से लम्बाई छे बित्ता, चौडाई ढाई बित्ता होनी चाहिए थी।[2] ऊपर वर्णित त्रिचीवरो के अतिरिक्त कुछ भिक्षु कठिन चीवर नामक एक अन्य वस्त्र भी धारण करते थे। वर्षावास के अन्त मे गृहस्थो द्वारा एक सघाटी प्रदान की जाती थी जिसे सघ अपनी ओर से किसी सम्मानित भिक्षु को देता था इस चीवर की सज्ञा कठिन चीवर थी, क्योकि इसकी प्राप्ति कठिन थी।

पहनने के उपरोक्त वस्त्रो के अलावा भिक्षुओ द्वारा अन्य कार्यो के लिए भी कुछ वस्त्र प्रयोग किया जाता था बिछाने के लिए चादन[3], मुख–पोछने के लिए मुख–पोछन (अँगोछा)[4]

जनसाधारण पुरुषो के पहनावे मे मुक्ष्यत तीन वस्त्र होते थे–धोती (=अन्तरवासक), दुपट्टा (उत्तरासग) एव पगडी (उण्णीस)। अगुत्तर निकाय मे साधारण गुहस्थो के लिए वेठन (धोती) कचुक, निवासन तथा उत्तरासग धारण करने का विधान उल्लिखित है।[5] कचुक सम्भवत वक्ष को ढँकने वाला कोई कसा वस्त्र होता था। उत्तरासग ऊपर से धारण करने वाला वस्त्र था जिसे कई स्थल पर 'उत्तरीय' भी कहा गया है।

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ६/५/२

२ विनयपिटक हि० अ० पृष्ठ–३१,

३ विनयपिटक, महावग्ग, ८/५/१

४. विनयपिटक, महावग्ग, ८/५/३

५ अगुत्तर निकाय १, पृष्ठ १४५,

अन्तरवासक (=धोती) कटिप्रदेश के नीचे धारण किया जाता था। उसे कायबंधन (=कमरबन्ध) से बाँधा जाता था। ये विभिन्न प्रकार जैसे कलावुक (गोल), देड्डुभक (पानी के साँप के फन जैसा) मुरज (मृदंग जैसा), मद्दवीण (पांमग के आकार का), पट्टी एवं शूकर के ऑत जैसा।[१] भिक्षुओं को कमरबन्द धारण करने की अनुमति थी।एक बार एक भिक्षु बिना कमरबन्द बॉधे ही गॉव में भिक्षा के लिए गया, मार्ग में उसका अन्तरवासक खिसक गया जिससे लोगों द्वारा उसका उपहास किया गया। इसके बाद भगवान ने भिक्षुओं के लिए कमरबन्द आवश्यक कर दिया।[२]

विनयपिटक[३] में अन्तरवासक धारण करने की अनेक विधियों का उल्लेख है–

१. हस्तिशौंडिक (चोल देश की स्त्री की भॉति नाभी से नीचे तक लटकाना)

२. मत्स्यबालक (किनारी और छोर को चुनकर मछली की पूँछ की भॉति पहिनना)

३. चतुष्कर्णक (ऊपर दो, नीचे दो इस प्रकार चारों कोनों को दिखाते कपड़ों को पहिनना)

४. तालवृन्तक (ताल के पत्ते की भॉति चुनकर लटकाना)

५. शतवल्लिक (सैकड़ों चुन्नटों को दिखाते पहिनना)

गृहस्थों की भॉति उपरोक्त फैशन से वस्त्र पहिननें की भिक्षुओं को मनाही थी।

---

१. विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/४/३

२. वही।

३. विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/४/५

स्त्री-वेशभूषा-

भिक्षुणियॉ भी बौद्ध भिक्षुणियो की भॉति त्रिचीवर अर्थात् सघाटी, उत्तरासग (दुपट्टा) एव अन्तरवासक (धोती) धारण करती थी।[1] इन चीवरो के अतिरिक्त भिक्षुणियो को कचुक भी धारण करना आवश्यक था, जिसके बिना धारण किये वे गॉव मे प्रवेश नही कर सकती थी।[2] कचुक के विषय मे कोई विशेष सूचना प्रारम्भिक पालि साहित्य से नहीं मिलती है। विनयपिटक के चुल्लवग्ग मे भिक्षुणियो द्वारा धारण करने वाले एक अन्य वस्त्र सकच्चिक (=अगरखा) का भी उल्लेख मिलता है।[3]

स्नान के समय भिक्षुणियो को नग्न रहने पर दण्ड का विधान था। नहाते समय एक प्रकार की साडी जिसे "उदकसाटिका" कहा जाता था को पहनना आवश्यक था। इसका नाप बुद्ध के बित्ते से लम्बाई चार बित्ता और चौडाई दो बित्ता।[4]

भिक्षुणियॉ शरीर को भलीभॉति चारो ओर से ढँककर (परिमडल) वस्त्र पहनती थी। गृहस्थ के घर जाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था।[5]

साधारणत स्त्रियॉ अपना तन ढँकने हेतु साडी (अन्तरवासक), कचुक तथा ओढनी का प्रयोग करती थी। सम्भ्रान्त वर्ग की स्त्रियॉ महीन रेशमी साडी पहनती थी। मोटी एव मजबूत साडियो को "बालित्थग साटिका" कहा जाता था।[6] स्त्रियॉ लम्बे कमरबन्द (कायवन्ध) धारण

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १०/५/३,

२ विनयपिटक, हि० अ० पृ० ५८,

३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १०/५/३

४ विनयपिटक, पृ० ५३

५ विनयपिटक, हि० अ० पृ० ६७,

६ जातक, ३, पृ० ५५

करती थी। उसकी पोछ (=फासुका) लटकाती थी। ये कमरबन्द विभिन्न प्रकार के होते थे वीलिव (=वॉस के बने) पट्ट, चर्मपट्ट, दुस्स (=थान) पट्ट, दुस्स–वेणी (=कपडे को गूथकर), दुस्स–वट्टी (=झालर) चोल–पट्ट (=साडी का चुनाव), चोल–वेणी, चोल–वट्टी, सूत–वेणी, सूत की वट्टी।

ऋतुमती स्त्रियाँ आवसथ चीवर (ऋतुकाल के उपयोग के लिए कपडा) एव अणि–चोल (लोहू–सोख) का प्रयोग करती थी। इन्हे अपने स्थान पर स्थिर रखने के लिए ऐठे (सवेल्लिय) कटि सूत्र का प्रयोग करती थी।

सरभग जातक मे एक धनुर्धारी की वेशभूषा का वर्णन है जो कवच कचुक एव सिर पर उण्णीस (पगडी) धारण कर, मेढे के सीग वाले धनुष मे मूगे के रग की डोरी बाध, पीठ पर तूणीर कर, बाई ओर तलवार लटका कनात के अन्दर से बडी तेजी से वाहर आया।[1] इसी से मिलती जुलती वेशभूषा का वर्णन एक अन्य थान पर भी है।[2]

इस युग मे अपनी साज–सज्जा (श्रृगार) के प्रति कहीं–कहीं लोगो मे बडी सजगता दिखाई देती है। श्रेष्ठता के लिए प्रतिद्वन्द्विता करती कालकण्णी एव सिरी नामक दो कन्याये एक ही रग का वस्त्र, आभूषण एव श्रृगार धारण करती है। विरुपक्ष महाराज की पुत्री कालकण्णी नीला वस्त्र, नीला लेप एव नीलमणि के आभूषण से अपने को सॅवारती है तो धृतराष्ट्र महाराजा की कन्या सिरी सुवर्ण–वर्ण वस्त्र, सुवर्ण–वर्ण सुगन्धित लेप एव स्वर्णालकारो को धारण कर, गौरव–युक्त हो खडी होती है। इसी प्रकार मैचिग वस्त्राभूषण पहनावे के उल्लेख दीघ–निकाय के महापरिनिब्बाण–सुत्त मे मिलता है। भगवान् बुद्ध के वैशाली आगमन पर कोई लिच्छवि नागरिक नील–वर्ण वस्त्र एव नीले अलकार वाले, कोई पीले वस्त्र एव पीले अलकार वाले कोई लोहित वस्त्र एव लोहित अलकार वाले, कोई श्वेत वस्त्र एव श्वेत अलकार वाले होकर– उनसे भेट करने गये।[3]

---

१ सरभग जातक, जातक सख्या ५२२,

२. असदिस जातक, जातक संख्या १८१;

३ दीघ–निकाय, महापरिनिब्बाणसुत्त २/३

जूता- अनेक प्रकार के जूतो के प्रयोग की जानकारी प्रारम्भिक पालि साहित्य से मिलती है। जूते विभिन्न आकार–प्रकार (डिजाइन) के होते थे जैसे एडी को ढकनेवाले जूते, पुट–बद्ध (यूनानी लोगो के जैसे) जूते, पलिगुठिम (आजकल के 'बूट' की तरह सारे पैर को ढॉकने वाले)जूते, तीतर के पखो जैसे जूते, बिच्छू के डक की तरह नोकवाले जूते, एव मोर–पख सिले जूते। ये रग–विरगे होते थे। षड्वर्गीय भिक्षु नीले रग के जूतो, पीले रग के जूतो, लाल रग के जूते, मजीठिया रग के जूते, काले रग के जूते, महारग से रगे जूते, महानाम–(रग) से रॅगे जूतो को पहनते थे।[1]

इन जूतो पर चित्र अकित भी किये जाते थे। अनेक प्रकार के पशुओ के चमडे से जूते निर्मित किये जाते थे। सिह के चर्म व्याघ्र के चर्म, चीते के चर्म, हरिन के चर्म, उदबिलाव के चर्म, बिल्ली के चर्म, कालक के चर्म, उल्लू के चर्म से परिष्कृत जूतो का उल्लेख बौद्ध साहित्य मे आया है।[2] जातक कथाओ मे चर्मकार द्वारा चमडे को काटकर जूते बनाने का उल्लेख आया है।[3]

जूतो के अतिरिक्त ताल के पत्तो की, वॉस, तृण, मूँज, वल्वज, हिताल, कमल की पादुकाये भी पहनी जाती थी।[4] काठ की खडाऊँ का भी प्रचलन था।[5] रुईदार जूते[6] एव कम्बल (ऊन) की

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/४

२ विनयपिटक,महावग्ग, ५/१/६

३ काम जातक, जातक सख्या ४६७,

४ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/११

५ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/१०

६ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/५

पादुकाये[1] सम्भवत जाडे से रक्षा के निमित्त पहनी जाती थी। समृद्ध लोग सुवर्णमयी, रौप्यमयी, मणिमयी, वैदूर्यमयी, स्फुटिकमयी, कॉसमयी, कॉचमयी, रॉगे की, सीसे की, तॉबे की पादुकाये धारण करते थे।[2] वाराणसी के समृद्ध श्रेष्ठी का सुकुमार पुत्र यश सुनहला जूता पहनता था।[3]

भिक्षु भी जूतो का प्रयोग करते थे। प्रारम्भ मे भिक्षुओ को केवल एक तल्ले वाले जूते के प्रयोग की अनुमति थी परन्तु कालान्तर मे अनेक तल्ले वाले जूते के प्रयोग की आशा मिल गयी। परन्तु इसके लिए आव यक था कि बहुत तल्ला वाला जूता पहिनकर छोडा हुआ हो अर्थात् नया न हो। एक तपस्वी पाञ्चाल नरेश का आतिथ्य स्वीकार कर वापस हिमालय पर जाते हुए एक तल्ले वाले जूते की इच्छा करता है।[4] शख जातक मे एक उपासक द्वारा तथागत को हजार मूल्य का, दो अग्र–श्रावको को पॉच–पॉच सौ के एव पॉच सौ भिक्षुओ के सौ–सौ मूल्य के जोडे जूतो को दान देने का उल्लेख है।[5]

उचित रीति से न बनाने पर जूते कभी कष्ट का कारण भी बन जाते थे। "जिस प्रकार सुख के लिए खरीदे गए जूते गर्मी से तप्त होकर तथा पैर के तलुवे से पीडित होकर उसी आदमी के पैर को काट खाते हैं, उसी प्रकार जो नीच कुल का अनाय्र्य होता है वह जिस (आचाय्र्य) से विद्या तथा श्रुत ग्रहण करता है उसी को अपने ज्ञान (श्रुत) से खाता है। अनाय्र्य आदमी खराब जूते के समान समझा जाता है।"[6]

---

१ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/११, वि० पि० पृष्ठ ३५,६६

२ विनयपिटक, महावग्ग, ५/१/११

३ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/८
वही ५/१/११

४ ब्रह्मदत्त जातक, जातक सख्या ३२३,

५ शख जातक, जातक सख्या ४४२,

६ उपाहन जातक, जातक सख्या २३१;

आभूषण

प्रारम्भिक पालि साहित्य से तत्कालीन समाज मे प्रचलित आभूषण—प्रियता पर भी प्रकाश पडता है। विविध धातुओ एव बहुमूल्य रतनो के सयोग से मूल्यवान् आभूषणो का निर्माण किया जाता था। राजपरिवार एव श्रेष्ठि आदि धनाढ्य वर्ग के पास इस प्रकार के रतनो एव आभूषणो का बाहुल्य रहता था।[1] परन्तु समाज के सभी वर्ग इस प्रकार के मूल्यवान आभूषण नही धारण कर सकते थे। महाउम्मग जातक मे उल्लेख आया है कि एक गरीब स्त्री नाना धागो को गठियाकर बनी सूत की कण्ठी गले के धारण करती थी।[2] इसी प्रकार अन्यत्र भी एक दरिद्र परिवार के बालिका उत्सव मे अन्य बच्चो को आभूषण धारण करते देखकर उसके लिए विलाप करती है।[3] कौडियो मे छेद करके भी गहने बनाये जाते थे।[4]

शिरोभूषण

महावेस्सन्तर जातक मे सास द्वारा अपनी पुत्रवधू को माथे का बहुमूल्य आभरण दिये जाने का उल्लेख है।[5] थेरीगाथा मे वैशाली की प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली के स्वर्णमय अलकृत वेणी से विभूषित होने का सदर्भ प्राप्त होता है।[6]

---

१ महाजनक जातक, जातक सख्या ५३१, खण्डहाल जातक, जातक सख्या ५४२, महाहस जातक, जातक सख्या ५३४, सोरिवाणिज जातक, जातक सख्या ३

२ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४७

३ विनयपिटक, ६/३/३

४ काक जातक, सख्या ३६५

५ महावेस्सन्तर जातक, सख्या ५४७

६ थेरीगाथा, श्लोक न० २५५

स्त्रीयॉ अपनी केशराशि को बहुमूल्य धातुओ की चिमटी से सुसज्जित करती थी। एक स्थल पर अप्सरा द्वारा सोने की चिमटी को धारण करने उल्लेख मिलता है।[1] स्त्री एव पुरुषो द्वारा माथे पर ललाटिका नामक आभूषण धारण करने का उल्लेख मिलता है।[2]

राजपरिवारो एव धनाढ्य वर्ग के पुरुष 'मुकुट' धारण करते थे।[3] इनमे बहुमूल्य रत्नो को जड कर इसकी शोभा बढायी जाती थी। राजाओ द्वारा चूडामणि नामक एक अन्य आभूषण माथे पर धारण किया जाता था।[4]

कर्णाभरण

कान मे स्त्री एव पुरुष दोनो ही आभूषण धारण करते थे। अनेक प्रकार के कुण्डल निर्मित किये जाते थे। सयुत्त–निकाय मे मिट्टी का एव लोहे का बना सोने का पानी चढाया कुण्डल का प्रसग आया है।[5] ये विभिन्न आकार–प्रकार के होते थे। बनारस की महारानी किन्नरा सिह–आकृति का कुण्डल धारण करती थीं[6]। मणियो से युक्त कुण्डल मणिकुण्डल कहलाते थे।[7]

---

१ अलम्बुरा जातक, जातक सख्या ५२३

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १/३/१

३ जातक प्रथम, हि०अ० पृ० १२६

४ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६, जातक प्रथम, हि०अ० पृ० १३५, महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५२६

५ सयुत्त–निकाय, हि०अ० पृ० ७५

६ जातक सख्या ५३६

७ जातक सख्या ५०३, नानच्छन्द जातक, संख्या २८६

विनयपिटक मे कर्णाभूषणो मे बाली, पामग एव कर्णसूत का उल्लेख मिलता है। बाली सम्भवत साधारण बालियॉ रही होगी। पामग का समीकरण कर्णफूल से किया गया है। कर्णसूत्र कान का कोई पतला आभूषण होगा।[१]

ग्रीवा भरण

गले का आभूषणो मे प्राय स्वर्णमाला, रजतमाला, मोतियो की माला, ग्रैवेयक, निष्क, विविध प्रकार के कण्ठो का उल्लेख आता है। आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ के प्रताप से एक तिनके का टुकडा इतनी सुन्दर स्वर्णमाला मे परिवर्तित हो गयी जैसी स्वुर्णमाला मगधनरेश बिम्बसार के अन्त पुर मे भी नहीं थी।[२] जातक कथाओ मे अनेक बार बहुमूल्य स्वर्णमाला का उल्लेख है।[३] ग्रैवेयक भी बहुप्रचलित कण्ठाभरण था। प्रतीत होता है कि यह हसली सदृश्य आभूषण था। अगुत्तर निकाय मे भली भॉति तपा, साफ, कोमल, प्रभास्वर न टूटने वाले स्वुर्ण द्वारा ग्रैवेयक के निर्माण का प्रसग है।[४] महारानी फुसती ने अपनी पुत्रवधु माद्री के लिए सन्दूक–भर के गहने भेजे जिसमे रत्नो वाला ग्रैवेयक भी था।[५] बौद्ध भिक्षु गर्दन के पास चीवर को मजबूत करने के लिए दोहरी पट्टी सिला करते थे उसको भी ग्रैवेयक कहा जाता था।[६]

निष्क नामक गले के आभूषण जो पूर्वकाल से प्रचलन मे था बुद्धकाल मे भी लोकप्रिय था। कुसराज ने मद्र राजकुमारी की कुबडी सेविका से कहा कि यदि प्रभावती मेरी ओर देख लेगी, बात करेगी, खिलखिलाकर हॅसेगी तो मैं कुसावती पहुॅचने पर तेरे लिए निष्क आभूषण

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/१/३

२ विनयपिटक, महावग्ग ६/३/३

३ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६

४ अगुत्तर निकाय हि०अ० भाग १, पृ० २६१

५ जातक, जातक संख्या ५४७

६ विनयपिटक, महावग्ग, ८/४/३

स्त्रियॉ पैरो मे नुपुर धारण करती थी। थेरीगाथा मे आम्रपाली द्वारा पैरो मे स्वर्ण–नुपुर पहनने का वर्णन है।[1] पालि साहित्य मे पुरुषो द्वारा पैरो मे बहुमूल्य चरणपादुका एव खडाऊँ धारण करने का उल्लेख आता है। धनाढ्य वर्ग वेश कीमती चरणपादुका धारण करते थे। मिथिला नरेश सोने के पादुका पहनते थे।[2] विनयपिटक मे भी बहुमूल्य धातुओ एव पत्थरो की सुवर्णमयी, रौप्यमयी, मणिमयी, वैद्वर्यमयी, स्फटिकमयी चरण–पादुकाओ का प्रसग आया है।[3] इसी प्रकार सुन्दर, अलकृत खडाऊँ भी निर्मित की जाती थी भूरिदत्त जातक मे स्वर्ण–खचित, सुकृत, चित्रित खडाऊँ का वर्णन आया है।[4]

कटि आभूषण

कमर मे मेखला एव कटिसूत्र के धारण करने का उल्लेख मिलता है। जिसका प्रयोग स्त्री एव पुरुष दोनो ही करते थे। माद्री मणिमय मेखला से सुशोभित थी।[5] पचाल देश की महारानी स्वर्ण–वर्ण की मणिमेखला पहनती थी।[6] कुस जातक मे चारु–दर्शन स्वर्ण–मेखला–युक्त क्षत्रिय कुसराज का उल्लेख है।[7] विनयपिटक मे कटिसूत्र नामक कमर के आभूषण का प्रसग आया है जिसे भिक्षुओ को धारण करना निषेध था।[8]

---

१ थेरीगाथा, लोक न० २६६, सण्हनुपुर सुवण्णमण्डिता, सोभते तु जघा पुरे मम।

२ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६

३ विनयपिटक, महावग्ग, ५/२/११,

४ भूरिदत्त जातक, जातक सख्या ५४३

५ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७

६ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६

७ कुस जातक, जातक सख्या ५३१

८ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/१/२

मनोरंजन के साधन

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य से, प्रचलित आमोद प्रमोद के साधनो पर पर्याप्त प्रकाश पडता है जिनका अध्ययन निम्न रूप से किया जा सकता है–

नृत्य, गीत, वाद्य

नृत्य, गायन एव वादन मनोरजन का एक प्रमुख साधन था। धनाढ्य वर्ग एव राजाओं[1] के यहाँ इस प्रकार के सगीतमय कार्यकम आयोजित कर, इनका आनन्द लिया जाता था। सिद्धार्थ कुमार बडे ऐश्वर्य के साथ अपने महल मे जा, सुन्दर शैय्या पर लेटे थे, तब अलकारो से विभूषित, नृत्य–गीत आदि मे दक्ष देवकन्या के समान परम सुन्दरी स्त्रियो ने अनेक प्रकार के वाद्यो को लेकर, (कुमार को) घेर कर, खुश करने के लिए नृत्य, गीत और वाद्य आरम्भ किया।[2] वाराणसी के श्रेष्ठी का यश नामक कोमलगात पुत्र वर्षा के चार माह वर्षा–कालिक–प्रसाद मे विश्राम करते हुए स्त्रियो के गायन, वादन एव नृत्य का आनन्द लेता था।[3]

प्रसन्नता के अवसरो पर एव अतिथि सत्कार मे भी कुशल नर्तकियो द्वारा नृत्य आदि किया जाता था। कुमार बोधिसत्व के राज्याभिषेक के अवसर पर नृत्य, गीत एव वाद्य मे कुशल, उत्तम हाव–भाव वाली सोलह हजार नर्तकियो ने गाना बजाना किया था।[4] अतिथि पुण्याक की

---

१ विधुर जातक, जातक सख्या ५४५

२ जातक प्रथम, हि०अ० पृ० १३१

३ विनयपिटक, महावग्ग, १/१/८

४ पञ्चगरुक जातक, जातक सख्या १३२

परिचयर्या मे जिस प्रकार अप्सराये देव–लोक मे नाचती–गाती है, उसी प्रकार समलकृत नारियॉ एक से एक बढकर नाच–गान करने लगी।[1] उत्स्वो मे भी नाच–गाने आदि की बडी धूम रहती थी। जिनका अध्ययन आगे किया गया है।

गणिकाये गायन, वादन एव नृत्य की कलाओ मे बडी प्रवीण हुआ करती थी तथा लोगो का मनोरजन करती थी। विनयपिटक मे उल्लिखित है कि वैशाली की परम रुपवती गणिका आम्रपाली नृत्य–गीत एव वाद्य मे चतुर थी। इन कलाओ का विधिवत् प्रशिक्षण दिया जाता था। राजगृह की गणिका पद के लिए कुमारी सालवती का चयन हुआ एव वह थोडे काल मे ही नृत्य, गीत एव वाद्य मे चतुर हो गई।[2]

गन्धर्व, सूत एव मागध वर्गो के साथ सगीत अभिन्न रूप से सम्बन्धित था।[3] गन्धर्व–शिल्प (सगीत) मे पारगत को ज्येष्ठ गन्धर्व का पद मिलता था। ये राज दरबारो एव उत्सवो मे लोगो का अपनी कला के माध्यम से मनो–विनोद किया करते थे। उज्जैनी के ज्येष्ठ गन्धर्व का नाम मूसिल तथा बनारस के ज्येष्ठ गन्धर्व का नाम गुत्तिल कुमार था। इनके कार्यक्रम को देखने के

---

१ विधुर जातक, जातक सख्या ५४५

तथ्य नच्चन्ति गायन्ति

अण्हयन्ति वरा वर

अच्छरा विय देवेसु

नारियो समलकता।

२ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ८/१/१

३. गुत्तिल जातक, जातक सख्या २४३, महावेस्सन्तर जातक

लिए राजागण मे विधिवत् मण्डप आसन आदि लगाये गये जहॉं सारे नगर वासियो सहित राजा आमात्य गणो ने इनका कार्यक्रम देखा।[1] सूत एव मागध, नट भी नाच–गा कर अपनी जीविका चलाते थे। पदकुसल माणव जातक मे उल्लेख आया है कि पाटल नामक नट ने उत्सव मे वीणा के साथ नाच–गा कर धनोपार्जन किया।[2]

पालि साहित्य मे विभिन्न वाद्य–यन्त्रो के नाम मिलते है जैसे पाणी–स्वर, मृदग, मुरज, आलम्बर कुम्भ–थून, तूर्य्य, वीणा, भेरी, शख, ढोल, दण्डिन, मजीरा आदि। सम्भ्रान्त व्यक्तियो को प्रात काल जगाने के लिए विभिन्न वाद्य यन्त्र मधुर स्वर मे बजाये जाते थे। राजा एव राजपुत्रो के विभिन्न स्थानो पर प्रस्थान एव आगमन पर उनके आगे–आगे वाद्यो को बजाते हुए व्यक्तियो का एक समूह चलता था।[3] निर्वासित पुत्र वेस्सन्तर एव पुत्रवधु माद्री के वापस आने पर शिवि नरेश ने आशा दी कि 'जिस मार्ग से वे आये उस मार्ग पर नट, नर्तक, गायक, हस्त–सगीत वाले, कुम्भथून (ढोल) बजाने वाले उपस्थित हो। सभी वीणाये, भेरी और देण्डिम बजे। शख फूके जाये। एक पोक्खर (ढोल) बजे। मृदग, पणव, शख, गोध, परिवदेन्ति, दिन्दिमानि तथा कुटुम्बदिन्दिमानि बाजे बजे।'[4] उत्सवो मे भी विभिन्न वाद्य–यन्त्रो का घोष किया जाता था।

---

१ पदकुसल माणाव, जातक सख्या ४३२

२ सुधाभोजन जातक, जातक सख्या ५३५, सोननन्द जातक, जातक सख्या ५३२

३ भूरिदत्त जातक, जातक सख्या ५४३

४ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७

उत्सव

पालि साहित्य से स्पष्ट है कि लोग अनेक प्रकार के उत्सव एव समाजो (मेलो) का आयोजन करते थे जिसका आनन्द समाज के सभी लोग लेते थे। निश्चित अवसरो (ग्रह–नक्षत्रो) पर होने वाले उत्सवो के अतिरिक्त राज्य–प्रशासन भी समय–समय पर उत्सव होने की घोषणा करता था। महाजनक के राज्याभिषेक के अवसर पर नगर मे महान् उत्सव किया गया। राजभवन मे हाथियो को झोल आदि ओढाये गये, सुगन्धियॉ और मालाये फैलाई गई, खील, फूल, सुगन्धी तथा धूप की अधिकता से अधेरा सा करके, नाना तरह के भोजन तैयार किये गये। लोग राजा को भेट देने के लिये चान्दी सोने आदि के बर्तनो मे नाना प्रकार की खाने पीने आदि की सामग्री और फल–फल लिये जहॉ तहॉ इकट्ठे होकर खडे थे। एक ओर आमात्य मण्डल बैठा था एक ओर ब्राह्मण–गण, एक ओर श्रेष्ठी आदि। एक ओर उत्तम रुपवती नटियॉ। ब्राह्मणो मे स्वस्ति–वाचन तथा मगल पाठ करने वाले थे। जो मगल–गीत आदि मे कुशल थे उन्होने मगल गाने गाये। सैकडो बाजे बजे। ये सारा उत्सव राजभवन मे सम्पादित हुआ।[1] मिथिला नगरी के चारो ओर से शत्रुओ के घिर जाने पर एक विशेष चाल (योजना) के तहत महोषध पण्डित ने नगर मे उत्सव–भेरी बजवायी[2] एव नागरिको से कहा तुम आश्वस्त हो, सप्ताह भर तक गाला–गन्ध–विलेपन तथा पान–भोजन आदि तैयार कर उत्सव–क्रीडा करो। लोग इच्छानुसार पान करे, नाचे, बजाये, चिल्लाये तथा ताली बजाये। इसका खर्च मेरे सिर रहे। महोषध पण्डित पर अति प्रसन्न मिथिला नरेश ने नगर मे सप्ताह भर चलने वाले उत्सव की मुनादी करवा दी और घोषणा की– जो भी मुझसे स्नेह रखते हो,

---

१ महाजनक जातक

२ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६,

सभी पण्डित का सत्कार–सम्मान करे। 'सभी वीणा, भेरी दण्डिम बजे। मागध शख नाद करे। सुन्दर दुदभी बजे।'[1] इसी प्रकार अन्यत्र भी उत्सव की घोषण किये जाने पर उत्सव मनाने का प्रसग आया है।[2] गुत्तिल जातक मे प्रसग आया है कि उज्जैन मे उत्सव घोषित होने पर व्यापार के निमित्त गये बनारस के व्यापारी चन्दा करके बहुत सा माला गन्ध विलेपन आदि तथा खाद्य भोज्य ले क्रीडा–स्थान पर गये वहाँ उज्जैन मे विख्यात गन्धर्व मूसिल को वीणा वादन के लिए बुलवाया।[3] इन उत्सवो मे आमोद–प्रमोद के साथ–साथ धार्मिक कृत्य भी सम्पादित किये जाते थे। वाराणसी मे नक्षत्र (उत्सव) की घोषणा होने पर लोगो ने यक्षो की वलि दी। घोषित होने वाले इन उत्सवो के अतिरिक्त विशिष्ट तिथियो मे मनाये जाने वाले उत्सवो मे कार्तिक उत्सव एव सुरा–उत्सव विशेष लोकप्रिय थे।

कर्तिक उत्सव

शरद ऋतु की चाँदनी रात मे यह उत्सव आयोजित किया जाता था। राजगृह नगर मे कार्तिकोत्सव के अवसर पर नगर देवनगर की तरह अलकृत होता था। ऐसे अवसरो पर राजा–महाराजा सत्सग भी किया करते थे। जीवक की सलाह पर राजा ने बडे राजसी ठाट–बाट से आम्रवन जाकर भगवान् बुद्ध की सगति का लाभ उठाया।[4] शिवि राष्ट्र मे कार्तिकोत्सव मे उपस्थित होने पर, सूर्यास्त के पश्चात तथा पूर्णचन्द्र का उदय हो जाने पर, देवनगर की भाँति अलकृत नगर मे, चारो दिशाओ मे दीपको के जल जाने पर, सभी अलकारो

---

१ महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५४६,

२ भेरिवाद जातक, जातक सख्या ५६, कक्कारु जातक, जातक सख्या ३२६, पदकुसल माणाव जातक, जातक सख्या ४३२

३ गुत्तिल जातक, जातक सख्या २४३

४ सञ्जीव जातक, जातक सख्या १५०,

से सुसज्जित राजा, श्रेष्ठ रथ पर चढ आमात्यो के साथ बडी शान–बान से नगर की प्रदिक्षणा करने को निकलता था। अपने घरो के झरोखो से सुन्दरियॉ राजा पर पुष्पवर्षा करती थी।[1]

जहॉ एक ओर इन उत्सवो मे हमे सत्सग लाभ लेते लोग दिखाई देते है वही दूसरी ओर स्त्री पुरुष विलासपूर्ण क्रियाओ मे भी लिप्त दिखाई देते है। श्रावस्ती मे उत्सव होने पर सभी लोग उत्सव मनाने मे मस्त थे। सभी श्रेष्ठि–पुत्रो की पत्नियॉ थी। केवल उत्तर श्रेष्ठी का पुत्र अविवाहित था इसलिए उत्तर श्रेष्ठी के लिए उसके तरुण मित्र सब अलकारो से सजा एक वेश्या को लाये।[2] पुप्फरत्त जातक मे एक दरिद्र स्त्री उत्सव के अवसर पर केसर के रग से रगे वस्त्र पहनकर अपने पति के गले मे दोनो बाहे डालकर विचरण करने की इच्छा व्यक्त करती है।[3]

सुरामहोत्सव

सुरामहोत्सव भी बडी धूम–धाम से मनाया जाता था। इस उत्सव मे स्त्री–पुरुष सभी अनियत्रित रूप से सुरापान का आनन्द लेते थे।[4] सुरा के साथ मास का सेवन भी किया जाता था।[5] इस उत्सव मे प्राय लोग मद्यपान करके अशोभनीय व्यवहार करते थे। काशी राष्ट्र मे परम्परा के अनुसार लोगो ने सुराउत्सव मनाया और सुरा पीकर झगडा करते हुए हाथ–पैर तोडे, सिर फोडे, कान काटे एव बहुत से डण्डे तोडे।[6] एक अन्य सुरामहोत्सव मे तपस्वी शराब पी, उद्यान मे जाकर शराब से मदस्त हो, कोई–कोई उठ कर नाचने लगे, कोई कोई गाने लगे। नाच–गा कर खारी आदि फैला कर सो गये। शराब का नशा उतरने पर जब उन्हे चेतना लौटी तो अपने उस दशा को देख 'हमने प्रव्रजित जीवन के अनुकूल नहीं किया (सोच) रोने पीटने लगे।[7]

---

१ उम्मदन्ती जातक, जातक सख्या ५२७

२ वट्टक जातक, जातक सख्या ११८

३ पुप्फरत्त जातक, जातक सख्या १४७

४ कुम्भजातक, जातक सख्या ५१२

५ सिगाल जातक, जातक सख्या १४२

६ पानीय जातक, जातक सख्या ४५९

७. सुरापान जातक, जातक सख्या ८१

चातुर्मासिक कौमुदुनी उत्सव

महानारद कश्यप जातक मे चातुर्मासिक कौमुदुनी उत्सव का सुन्दर वर्णन मिलता है। मिथिला का अग राजा, ने चातुर्मास की चॉदनी पूर्णिमा को अपने आमत्यो के साथ मन्त्रणा कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आज अन्धकार मुक्त चॉदनी रात्रि मे किसी बहुश्रुत श्रमण–ब्राह्मण की सगति की जाय। तब काश्यप गोत्र के अचेल की सगति हेतु मृदगाय जाने का निश्चय किया गया। राजा के लिए दन्त–निर्मित, चान्दी के किनारेवाला, शुद्ध, चिकना, श्वेत तथा चन्द्रिका सदृश रथ जोता गया जिसमे चार कुमुद–वर्ण सैन्धव घुडे जुते थे जिनका वेग वायु के सामन था तथा जिनके गले मे सुनहरी मालाये थी। श्वेत छत्र, श्वेत रथ, श्वेत अश्व तथा श्वेत बीजनी के साथ अमात्यो सहित विदेह राजा चन्द्रमा की तरह शोभा देता था। बहुत से इन्द्रखगधारी, बलवान्, अश्वारोही आदमियो ने उस राजा का अनुगमन किया।[1]

कर्षणोत्सव

इस उत्सव मे कृषि–कार्य का श्रीगणेश किया जाता था। इसमे कृषको के साथ आमात्य परिषद एव राजा स्वय भाग लेते थे। राजा एव आमात्य गण रत्न–सुवर्णजटिल बहुमूल्य हलो से तथा कृषक साधारण हल से जुताई का कार्य प्रारम्भ करते थे। जिसको देखने के लिए भीड एव तमाशा लगता था। दास–नौकर सभी नये वस्त्र गन्ध माला से विभूषित हो एकत्र होते थे एव राजपरिवार के सदस्य भी इसमे हिस्सा लेते थे।[2]

---

१ जातक सख्या ५४४

२. जातक प्रथम, हि०अ० पृ० १७६

हस्ति मंगलोत्सव

ये उत्सव राजभवन मे आयोजित होता था। हाथी को मागलिक करने की पूजा—पाठ करवाने के लिए हाथी—मगल कारक की नियुक्ति होती थी। विद्वान एव हस्ति विद्या मे पारगत व्यक्ति ही इस प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त होता था। इस हस्ति—मगलोत्सव मे सामान भाण्डे तथा हाथी के अलकार आदि करोडो मूल्य की वस्तु जो भेट देते थे वो हस्ति—मगल कारक को ही मिलती थी।[1] इसकी पूजा पाठ मे बडा जश्न मनाया जाता था मगल हाथी राज्य के लिए शुभ माना जाता था। उसका शृगार सुवर्ण एव बहुमूल्य मणियो द्वारा किया जाता था। महावेस्सन्तर जातक मे सिवि राष्ट्र के सर्वश्वेत मगल हाथी के शरीर पर कुल वाईस लाख रुपये के स्वर्णाभूषण एव छत्र के ऊपर मणि, चूलामणि, मुक्ताहारमणी, अङ्कुश पर मणि, हाथी के गले मे बाधने के मुक्ताहार मे मणि, हाथी के कुम्भ पर मणी का उल्लेख आया है।[2]

बौद्ध ग्रन्थो मे समज्ज शब्द का उल्लेख है जो कदाचित् उत्सव या मेला का ही द्योतक है। रतिलाल मेहता के अनुसार समाज एक विशेष प्रकार का जनसमुदाय था, जिसमे आबालवृद्ध स्त्री—पुरुष विविध प्रकार के खेल अभिनय, सगीत, नृत्य, आख्यान, राजयुद्ध, अश्वयुद्ध, दण्डयुद्ध मल्ययुद्ध आदि देखते थे और उनमे स्वय भी भाग लेते थे।[3] विनयपिटक मे राजगृह मे गिरग्ग—सम्ज्ज (पहाड के पास समाज या मेला) का उल्लेख आया है। जहाँ नाच, गाना, बाजा आदि देखने के लिए गये भिक्षुओ के लिए दण्ड का विधान किया गया है।[4]

---

१ सुसीम जातक, जातक सख्या १६३

२ महावेस्सन्तर जातक, जातक सख्या ५४७

३ प्री बुद्धिष्ट इण्डिया, पृ० ३५५

४ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५/१/५

द्यूत-क्रीडा

द्यूत–क्रीडा भी मनोरजन का एक प्रमुख साधन था। अति प्राचीन काल से भारत मे लोग द्यूत–क्रीडा प्रेमी थे। लोग दूर–दूर से जुआ खेलने के लिए एकत्र हुआ करते थे।[१] राजा–महाराजाओ के यहाँ द्यूत–क्रीडा के लिए द्यूत–शाला हुआ करती थी। जिसमे पदानुसार बैठने के लिए आसन लगा रहता था।[२] राजा–पुरोहितो के चाँदी के फलक पर सोने के पासे से खेलने का उल्लेख आया है।[३] लित्त जातक मे एक कुटिल जुआरी का प्रसग है जो जीत होने पर तो धाँधली न करता, लेकिन जब हार होती दीखती, तो गोटी को मुँह मे डाल, गोटी खो गई कहकर, खेल मे धाँधली मचा कर चल देता था।[४] एक स्थल पर मालिक, सावट, बहुल, शान्ति, भद्र आदि चौबीस पासे गिने गये है। कभी–कभी गीत गाते हुए लोग पासे फेकते थे।[५]

विनयपिटक के चुल्लवग्ग मे विभिन्न प्रकार के जुओ के नाम मिलते है– अष्टपद, दशपद, शलाकाहस्त, अक्ष, पगचीर, वकक, मोक्खीचक, त्रिगुलक, अक्षरिका, मनेसिका।[६] इसी प्रकार की एक सूची दीघ–निकाय के सामञ्जफल सुत्त मे मिलती है।

---

१ सुसन्धिजातक, जातक सख्या ३६०

२ विधुर जातक, जातक सख्या ५४५

३ अडभूत जातक, जातक सख्या ६२

४ लित्त जातक, जातक सख्या ६१

५ अडभूत जातक, जातक सख्या ६२

६ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, १/३/१, दीघ–निकाय, सामञ्जफल–सुत्त, पृ० २५

उद्यान-क्रीडा

दैनिक जीवन की आपा–धापी से मुक्त हो शारीरिक एव मानसिक स्फूर्ति एव शान्ति प्राप्त करने हेतु बुद्धयुगीन समाज मे लोग प्रकृति के सुरम्य वातावरण के आश्रय मे जाते थे। पालि साहित्य मे राजा–महाराजाओ, राजकुमारो, श्रेष्ठि–पुत्र एव पुत्रियो के बडे वैभव के साथ उद्यान मे मनोविनोद हेतु जाने के प्रसग मिलते है।[1]

उद्यान–क्रीडा के लिए जाने के पूर्व वहाँ माली उद्यान की सफाई आदि करते थे।[1] ग्रामवासी मार्ग ठीक करते थे[2] तब नरेश अपनी मण्डली सहित उद्यान मे प्रवेश करता था। राजा उदयन शराब के नशे मे, अपने अनुयायियो के साथ उद्यान कीडा के लिए पहुँचा वहाँ एक शिला पर स्त्री की गोद मे सिर रखकर, गायन एव वादन करती स्त्रीयो से घिरा, सो गया।[3] विकण्णक जातक मे उल्लेख आया है कि काशी नरेश के उद्यान मे पहुँचने पर नृत्य गीत मे कुशल लोगो ने नाचना–गाना प्रारम्भ कर दिया। इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि उद्यान मे गायन–वाद–नृत्य का भी आनन्द लिया जाता था।[4]

पुरुष ही नही स्त्रीयाँ भी उद्यान–क्रीडा हेतु जाया करती थी। वाराणसी के सेठ की कन्या दिट्ठमगलिका दो माह मे एक बार उद्यान कीडा के लिए जाती थी। उद्यान मे भोजन एव मद्यपान आदि के व्यवस्था रहती थी। दिट्ठमगलिका को मार्ग मे एक चण्डाल मातंग दिख जाने पर उसे अपशकुन मान वापस लौट गयी। श्रेष्ठी कन्या के अनुयायियो ने क्रुद्ध होकर उस चण्डाल को खूब पीटा, क्योकि वे मुफ्त के भोजन एव शराब से वचित रह गये थे।[5]

---

१ चुल्लवोधि जातक, जातक सख्या ४४३

२. महाउम्मग्ग जातक, जातक सख्या ५६४

३ मातग जातक, जातक सख्या ४९७

४. विकण्णक जातक, जातक सख्या २३३

५. मातग जातक, जातक सख्या ४९७

वन–खण्ड मे भी लोग मौज–मस्ती के लिए जाते थे। बनारस के तीस मित्र अपनी–अपनी–स्त्रीयो के साथ वन–खण्ड मे मनो–विनोद के लिए गये थे। उन मित्रो मे एक अविवाहित था अत उसके लिए वेश्या लायी गयी। जब सारे लोग नशे मे मदहोश थे तो वो वेश्या सबका सामान, आभूषण आदि लेकर भाग गयी।[1]

जल-क्रीडा

मनोरजन का एक साधन जल–क्रीडा भी था। प्राय जल–कीडा उद्यान–कीडा दोनो एक दूसरे से सम्बन्धित दिखाई देते है क्योकि उद्यान मे ही पुष्करिणी रहती थी।[2] कलण्डुक जातक मे उल्लेख आया है कि श्रेष्ठी कलण्डुक जल कीडा की इच्छा से बहुत सारा माला–गन्ध–विलेपन तथा खाद्य–भोज्य ले नदी के तट पर गया।[3] राजा लोग रानियो एव अनुचरो के साथ जलक्रीडा हेतु नदी या पुष्करणी के तट पर जाते थे।[4] नदी तट पर कभी कभी पूरा मण्डप भी सजवा दिया जाता था जहॉ भोजन आदि की पूरी व्यवस्था रहती थी।

जातको मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि जलक्रीडा करते समय कोई तीव्र औषधि युक्त दूध को पिया जाता था जिसमे सारे दिन जलकीडा मे थकान नहीं महसूस होती थी।[5] इस प्रकार के मनोविनोद भिक्षु–भिक्षुणियो के लिए निषिद्ध थे।[6]

---

१ विनयपिटक, १/१/१३

२. महासार जातक, जातक सख्या ६२, विकण्णक जातक, जातक सख्या २३३

३. कलण्डुक जातक, जातक सख्या १२७

४. महासार जातक, जातक सख्या ६२

५. कलण्डुक जातक, जातक सख्या १२७

६. विनयपिटक, हि०अ०, पृ० ६१

खेल-तमाशा

पालि ग्रन्थो मे लोगो के मनोरजन हेतु अनेकानेक प्रकार के खेल–तमाशो के आयोजन का उल्लेख आता है। इन प्रदर्शनो की उत्सवो–महोत्सवो पर विशेष धूम रहती थी। दीघ–निकाय के ब्रह्मजाल, सुत्त मे इन दर्शनो की एक सूची दी हुई है–'नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घडे पर तबला बजाना, गीत मण्डली, लोहे की गोली का खेल, बास का खेल, धोपन, हस्ति–युद्ध, अश्वयुद्ध, महिष युद्ध, वृषभ युद्ध, बकरो का युद्ध, भेडो का युद्ध, मुर्गो का लडाना, बत्तक का लडाना, लाठी का खेल, मुष्टि–युद्ध, कुश्ती, मार–पीट का खेल, सेना, लडाई की चाले इत्यादि।'[१] विशेष लोकप्रिय खेल–तमाशे निम्न रूप से उल्लिखित है–

सपेरा

विभिन्न प्रकार के खेल–तमाशो मे सपेरो का सर्प–नृत्य एक प्रमुख खेल था। सपेरे दिव्य औषध एव मन्त्र जाप आदि के द्वारा जहरीले सर्पो को अपने वशीभूत कर उनके विषैले दॉत तोड देते थे।[२] सर्पो को लताओ की टोकरी मे रखा जाता था और वे सपेरो के इशारे पर अपना नित्य दिखाते थे जिसको देखने के लिए बडा जनसमुदाय उमड पडता था। प्रत्यन्त गॉव से लेकर राजप्रसादो तक सपेरे तमाशा दिखाते थे। सीलवीमस जातक मे सपेरे द्वारा सॉप को पूछ से पकडकर लटकाने, गरदन मे डालने एव लपटने का वर्णन है।[३]

---

१ दीघ–निकाय, ब्रह्मजाल सुत्त, १/१

२ चम्पेय्य जातक, जातक सख्या ५०६

३ सीलवीमस जातक, जातक संख्या ८६

कुछ सपेरे अपने प्रदर्शन पर बहुत मालामाल भी हो जाया करते थे। इस प्रकार के सपेरे सॉपो को लताओ की टोकरी मे न रखकर रतन निर्मित टोकरी मे रखते एव सुन्दर रथो मे रेशमी वस्त्र पहन कर यात्रा किये करते थे।[1] कभी–कभी सपेरे सर्प के साथ साथ अन्य पशु–पक्षियो का प्रदर्शन भी करते थे। सालक जातक मे उल्लेख आया है कि सपेरे ने एक वन्दर को भी प्रशिक्षित कर लिया था एव सर्प तथा बन्दर का तमाशा दिखाता हुआ जीविका चलाता था।[2]

वाजीगर

वजीगर एव नट विभिन्न प्रकार के करतबो का प्रदर्शन कर लोगो का मनोरजन करते थे। ये लोग प्राय परम्परागत रुप से पैतृक व्यवसाय को अपनाते थे एव अपनी कला का पूरा प्रशिक्षण लेते थे।[3] इनकी पहुँच सर्वत्र रहती थी। ये एक स्थान से दूसरे स्थान ग्राम–निगम राजधानियो मे घूमते हुए लोगो की भीड एकत्र कर अपना तमाशा दिखाते थे।[4] ये प्राय अपने करतबो के प्रदर्शन के साथ–साथ वीणा आदि वाद्यो के साथ गीत भी गाते थे।[5] धम्मपद मे एक कुशल वाजीगर कन्या का प्रसग आया है जो आश्चर्य जनक करतब दिखलाती थी एव प्रतिवर्ष राजगृह मे होने वाले उसके खेल को देखने के लिए बडी सख्या मे जन–समुदाय उमड पडता था। स्पष्ट है केवल पुरुष ही नहीं स्त्रीयॉ भी कुशल नटी हुआ करती थी।[6]

---

१ भूरिदन्त जातक, जातक सख्या ५४३, सीलमीमस जातक, जातक सख्या ८६

२ सालक जातक, जातक सख्या २४६

३ दुब्बच जातक, जातक सख्या ११६,

४ कणवेर जातक, जातक सख्या ३१८

५ पदकुसल माणव जातक, जातक सख्या ४३२, कणवेर जातक, जातक संख्या ३१८

६ पदकुसल माणव जातक, जातक सख्या ४३२

मल्लयुद्ध

पालि ग्रन्थो मे मल्ययुद्ध का स्थान–स्थान पर उल्लेख मिलता है। समय–समय पर मल्लयुद्ध का आयोजन किया जाता था। इसके लिए कुश्ती मण्डप बनवा, अखाडा तैयार किया जाता था फिर कुश्ती–मण्डप को सजवा कर जय–पताका बन्धवाई जाती थी। बडी सख्या मे लोग चारो ओर से घेर कर मल्ल–युद्ध (कुश्तीबाजी) को देखा करते थे। अखाडे मे पहलवान इत्र, माला धारण कर चन्दानादि शरीर पर लिप्त कर कूदते, गरजते एव थापी मारते हुए विचरण करते थे।[1] पहलवानी का कार्य स्त्रीयॉ भी करती थी। विनयपिटक मे एक मल्ली (पहलवान स्त्री) का उल्लेख आया है जो बाद मे प्रव्रजित हो गयी।[2]

---

१ घ्रत जातक, जातक सख्या ४५४

२ विनयपिटक, १०/४/१२

अध्याय-७

उपसं .ार

बुद्ध युग भारतीय इतिहास मे द्वितीय नगरीकरण का काल कहलाता है परन्तु गगा के मैदानी इलाको मे यह प्रथम शहरीकरण था। प्रारम्भिक पालि साहित्य मे चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी वैशाली, मिथिला, आदि अनेकानेक नगरो के अस्तित्व के साक्ष्य मिलते है। इन महानगरो–नगरो मे बडी समृद्धि, सुख एव चहल–पहल व्याप्त थी। कुशावती नगरी के रुप मे दीघा–निकाय मे नगरो के ऐश्वर्य एव वैभव की झॉकी प्रस्तुत की गई है। 'कुशावती नगरी समृद्ध थी, उन्नतिशील थी, बहुत आबादी वाली, गुजलार थी, सुभिक्ष थी।

कुशावती राजधानी दस शब्दो से रात–दिन सदा भरी रहती थी, जैसे हाथी के शब्द, अश्व–शब्द, रथ–शब्द, भेरि शब्द, मृद्ड्ग शब्द वीणा–शब्द, झाझ शब्द, ताल–शब्द, शख–शब्द, "खाओ" "पिओ" के शब्द।' लोहे के प्रचलन ने इन नगरो के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लौह–हथियारो से गगा के जलोढ मैदानो के घने जगलो की सफाई की गई एव लोह निर्मित विभिन्न कृषि उपकरणो के द्वारा कृषक अब बहुत अधिक अन्य उत्पादन करने लगा। कृषक के अपने परिवार के भरण–पोषण के बाद बचे अनाज से नगर मे रहने वाले शासको, पुरोहितो, शिल्पीयो, व्यापारियो, सिपाहियो एव सन्यासियों की बडी जमात का पोषण होने लगा। फलतः नगर, महानगर, महाजनपद, बडे–बडे राजतन्त्रो–गणतन्त्रो का अस्तित्व कायम हो सका।

ग्रामीण बस्तियो का भी विस्तार हुआ। पालि साहित्य मे अनगिनत गॉवो का उल्लेख हुआ है। अनेक प्रकार के गॉव बसे। साहित्य मे स्थायी गॉव, अस्थायी गॉव, सजातीय गॉव, एक ही पेशे से सम्बद्ध गॉव, द्वार ग्राम, निगम ग्राम आदि का उल्लेख मिलता है। सम्पन्न गॉवो के लिए साहित्य मे "जनाकीर्ण तृण–काष्ठ–उदक धान्यसम्पन्न" जैसे विशेषणो का प्रयोग हुआ है। कृषि के विस्तार, अन्न के प्रभूत उत्पादन, विभिन्न व्यवसाय–शिल्पो की प्रगति से इनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ हुई। निगम की स्थिति गॉव एव नगर के मध्य की थी जहॉ वाणिज्यिक गतिविधियॉ ग्राम की अपेक्षा तीव्रतर थी।

जीवकोपार्जन का सबसे प्रमुख साधन कृषि था। सभी जाति एव वर्ग के लोग इसमे सलग्न थे। कृषि विकास पर ध्यान देना राजा का एक प्रमुख कर्तव्य था। एक जातक कथा मे राजा एव उसके आमात्यो द्वारा बुवाई के उत्सव मे खेत जोतने का वर्णन का आया है। लोहे के फाल, फरसा, कुदाल, निखादन आदि कृषि उपकरणो की आपूर्ति ने आर्थिक क्षेत्र मे युगान्तकारी परिवर्तन किये। यद्यपि लोहे का ज्ञान भारतवासियो को बुद्ध–युग पूर्व ही हो गया था परन्तु ई०पू० छठी शती के आस–पास ही यह सामान्य प्रचलन की धातु बन पायी। गगा के मैदानी इलाको के घने जगलो को लोहे के उपकरणो से साफ किया गया। बौद्ध साहित्य मे जगलो की सफाई के उपरान्त वहॉ कृषि कार्य प्रारम्भ करने के साक्ष्य मिलते है। इन जगलो को केवल जलाने से नष्ट नहीं किया जा सकता था। लोहे की कुल्हाडी या कुदाल से पेड की ठूँठ एव जड को समाप्त किया गया। इस युग का सबसे लोकप्रिय खाद्यान्न चावल था। चावल की विभिन्न किस्मो एव व्यजनो का उल्लेख साहित्य में सहज ही दृष्टव्य है। इसकी उत्तम फसल प्राप्त करने के लिए गहरी जुताई की आवश्यकता होती है जो लकडी के फाल द्वारा पूर्वी उत्तर

प्रदेश एव बिहार की सख्त भूमि पर असम्भव थी। लोहे के फाल द्वारा ही यह सम्भव हो सका। सुत्त–निपात, सयुक्त–निपात एव सूची जातक लोहे के फाल के प्रयोग के स्पष्ट साक्ष्य प्रस्तुत करते है। धान की विभिन्न किस्मो के अलावा, जौ, गेहूँ, सावाँ, टॉगुन, चीना (–चेना), कोदो एव दालो मे मूँग, उडद, कुलथी, मसूर एव मटर का उत्पादन होता था। ईख भी बडे पैमाने पर पैदा की जाती थी, जिसकी उत्तम पैदावार लोहे के फाल से गहरी जुताई करके प्राप्त की गई। विनयपिटक मे गुड के घडो से भरी पॉच सौ गाडियो को व्यापार हेतु जाने का विवरण मिलता है।

कृषि कार्य मे पशु–धन की उपयोगिता स्पष्ट हो गयी थी। इसके अतिरिक्त बोझा–ढोने, परिवहन खाल, बाल, दूध–दही, मास के लिए तथा युद्ध एव शान्ति मे विभिन्न पशुओ का विविध प्रकार से उपयोग किया जा रहा। था आर्थिक उन्नति के लिए इनका सरक्षण आवश्यक था। यही प्रमुख कारण था, जिसके लिए महात्मा बुद्ध ने यश आदि मे इनकी निरर्थक हिसा पर बडा झोभ व्यक्त किया है। गाय को माता–पिता एव भाई–बन्धु के समान मनुष्य का परम मित्र एव अन्न, बल तथा सुख का दाता कहा गया है। देश मे पैमाने पर गो–पालन किया जाता था। मेडक गृहपति ने इस कार्य हेतु साढे बारह सौ गोपालको को नियुक्त किया था। प्रारम्भिक पालि साहित्य मे स्पष्ट है कि दूध, दही, मक्खन, घी, मण्ड का प्रचुरता से प्रयोग किया जाता था।

कृषि–कार्य मे बैल का अत्यधिक महत्व था। सयुक्त–निकाय में बैल को प्राणियों मे सहायक कहा गया इसके साथ ही साथ ढुलाई का अधिकाश कार्य बैलों से ही लिया जाता था। पशु–पालकों को इस बात के लिए विशेष सचेत रहना पडता था कि उनके पशु कही खडी

फसल को हानि न पहुँचा दे। पशुओ को लेकर वे प्राय जगलो मे जाते थे क्योकि कृषि भूमि के विस्तार के कारण गॉव मे चारा प्राप्त करना कठिन होता जा रहा था। गाय एव बैल के अतिरिक्त हाथी, घोडे, भेड, बकरी, गधे, कुत्ते एव सुअर का भी पालन किया जाता था। हाथी एव घोडे राजकीय महत्व के पशु थे। राजकीय सरक्षण मे हस्तिशाला, हस्ति–वैद्य एव हस्ति शिक्षक विद्यमान रहते थे। हाथी युद्ध मे बडा उपयोगी था इसके अतिरिक्त सम्भ्रान्त वर्ग द्वारा इसकी पीठ पर सवारी भी की जाती थी। हाथी–दॉत भी एक मूल्यवान वस्तु था। उत्तर–पश्चिम भारत मे श्रेष्ठ नस्ल के घोडे पाये जाते थे। वहॉ के घोडे की पूरे देश मे माग थी। उत्तरापथ के घोडो की बिक्री का एक प्रमुख बाजार बनारस मे था। घोडे मुख्यत पीठ की सवारी, रथ की सवारी एव रण–क्षेत्र मे काम आते थे। बकरी, सुअर एव भेड की उपयोगिता अपने मास के कारण थी। बकरी का दूध भी पीया जाता था। इसके अतिरिक्त भेड के बाल से निर्मित ऊनी वस्त्रो का बडा चलन था।

द्वितीय नगरीकरण के इस युग मे विभिन्न प्रकार के उद्योगो मे अभूतपूर्व प्रगति आई एव जीविका के अनेकानेक साधनो का विकास हुआ। कृषि क्षेत्र मे तो लौह–धातु की भूमिका स्पष्ट की जा चुकी है। अन्य क्षेत्रो मे भी यह अपनी उपयोगिता प्रमाणित कर रहा था। लौह पात्रो का प्रयोग जनसामान्य के साथ–साथ भिक्षु–भिक्षुणी का समुदाय भी करता था। इसके दो स्पष्ट कारण थे एक तो लौह वस्तुओ की जीवनावधि बहुत अधिक थी, दूसरे ये अपेक्षाकृत सस्ते भी थे। लोहे से विभिन्न अस्त्र–शस्त्र बर्छी, कूट, वाण, शूल, तीर, कवच आदि, सिलाई के उपकरण– सूई कैची आदि एव स्थापित्य के क्षेत्र मे– प्राकार, गृह, सिटकनी, कील आदि निर्मित किये जाते थे। सुवर्ण एव रजत बहुमूल्य धातुये थी, अतः यह मुख्यत धनाढ्य वर्गो द्वारा

प्रयोग मे लायी जाती थी। चादी की तुलना मे सुवर्ण अधिक लोकप्रिय था। स्त्री–पुरुष ही नही राजा–महाराजाओ के यहाँ हाथी, गौ, अश्व भी सुवर्णालकारो से सुसज्जित रहते थे। मुद्रा के रूप मे सुवर्ण का प्रयोग मँहगे सौदे के देन–लेन मे होता था। अनाथपिण्डिक ने 'हिरण्य' से भरी कई गाडियो से जेत राजकुमार से जेतवन् क्रय किया था।

वस्त्र–उद्योग तत्कालीन समय का एक प्रमुख उद्योग था। काशी, खोम, कोटुम्बर, गन्धार इसके प्रसिद्ध केन्द्र थे। इनमे काशी के वस्त्र सबसे अधिक मूल्यवान एव उत्तम कोटि के होते थे। यहॉ के सूती एव रेशमी वस्त्र विशेष रूप से विख्यात थे। ऐश्वर्यमय वस्तुओ यथा प्रासाद गाय, के साथ काशी के वस्त्रो की गणना की गई है। विनयपिटक मे रगाई के शिल्प पर विस्तार से प्रकाश पडता है। कुम्भकार मिट्टी के वर्तन, घडे एव खिलौनो का निर्माण करते थे जिनकी समाज मे बडी माग थी। आज की ही भॉति चाक पर मिट्टी की वस्तुए बना कर उन्हे ऑव मे पकाया जाता था। मृण्मय पात्रो एव खिलौनो पर विविध प्रकार की चित्रकारी एव रगाई की जाती थी। बढई काष्ठ से घर, रथ, नाव जैसे बडी एव मूल्यवान वस्तुओ के साथ–साथ कृषि एव वस्त्र–उद्योग के लिए विभिन्न उपकरण, खिलौने, पात्र, चारपाई, पीढा, पादुका आदि का निर्माण करते थे। दन्तकार हाथीदॉत से विभिन्न प्रकार के आभूषण बनाया करते थे। इसके अतिरिक्त रथ एव पलग आदि की सजावट मे भी हाथी दॉत प्रयुक्त होता था। बुद्ध युगीन समाज मे मासाहार–प्रियता ने शिकारियो के व्यवसाय को पनपने का अच्छा अवसर दिया। शिकारी जगलो मे पशु–पक्षियो का शिकार कर, उन्हे वेचकर अपनी आजीविका चलाते थे। पशु–पक्षीयो की बहुलता होने पर शिकारी जंगलो के समीप, वही अपना ग्राम बसा लेते थे। इसी प्रकार मछुआरे नदी एव जलाशय से मछली पकड उन्हे बेचकर अपना निर्वाह करते थे।

जातक कथाओ से शिकारियो एव मछुआरो की कार्यविधि पर विस्तार से प्रकाश पडता है। यद्यपि बौद्ध साहित्य मे इस प्रकार से क्रूर–कर्म करने वालो की निन्दा की गई है। चिकित्सा–कार्य द्वारा जीविकोपार्जन करना एक सम्मानजन पेशा था। कुशल चिकित्सक राजपरिवार की सेवा मे नियुक्त होते थे। शल्य–क्रिया भी की जाती थी। चिकित्सा कार्य के बदले चिकित्सक बहुमूल्य उपहार एव फीस के रूप मे मुद्राराशि प्राप्त करता था। नाई, लोगो के हजामत एव केश बनाने का कार्य करता था। राजा के व्यक्तिगत सेवकाई का कार्य भी नाई किया करते थे। सम्भ्रान्त वर्ग के घरो मे भोजन–निर्माण हेतु रसोइये रक्खे जाते थे। प्रधान रसोइये के साथ उनके कार्य मे सहायता देने के लिए सहायक व्यक्ति भी रहा करते थे। इस काल मे दर्जी के पेशे मे भी प्रगति दिखाई देती है। गॉव की अपेक्षा नगर के दर्जी वस्त्रो की सिलाई अधिक सुघडता से करते थे। पुष्पो का प्रयोग विविध रुपो मे समाज मे किया जाता था। मालाकार विभिन्न प्रकार के पुष्पाभूषण निर्मित करते थे। पूजा हेतु भी फूलो का प्रयोग किया जाता था। समाज का एक वर्ग राजकीय सेवाओ के माध्यम से जीविकोपार्जन करता था। विभिन्न राजकीय कर्मचारियो का उल्लेख प्रारम्भिक पालि साहित्य मे मिलता है। राजा, उपराजा, पुरोहित, सेनापति, कोषाध्यक्ष–श्रेष्ठी, न्यायाधीश, रज्जुग्राहक, विविध प्रकार के आमात्य उच्च पदस्थ अधिकारी थे। इसके अलावा द्वारपाल, सारथी, नगर–कोतवाल, सन्देशवाहक, भण्डागारिक एव बडी मात्रा मे विभिन्न प्रकार के सैनिक कर्म करने वाले जैसे हस्ति–सैनिक, अश्व–सैनिक, व्यूह रचना करने वाले सैनिक आदि भी नियुक्त किये जाते थे। दूसरो का बहुभॉति मनोरजन कर जीवन यापन करने वालो का भी एक वर्ग था जिनमें गन्धर्व, [illegible] नट–नटी, संपेरा प्रमुख थे।

व्यापार एव वाणिज्य की दृष्टि से बुद्ध कालीन भारत भारतीय इतिहास का एक अति महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। बडे व्यापारी अकूत धन–सम्पदा के स्वामी होते थे। शासन पर भी इनका प्रभाव होता था। बाजार दुकाने गॉव एव शहरो मे जगह–जगह विद्यमान थी जिनमे जनसामान्य की आवश्यकता की सभी वस्तुऐ सुलभ थी। कभी कभी पूरे–पूरे गॉव एव गली मे एक ही वस्तु का विक्रय किया जाता था। वैहगी एव गाडियो पर भी माल लादकर, बेचा जाता था। कुछ छोटे व्यापारी दरवाजे–२ जाकर आवाज देते हुए अपना सौदा बेचते थे। बडे व्यापारी गाडियो मे माल लदवाकर सुदूर स्थानो पर आया–जाया करते थे। अन्तर्देशीय एव विदेशी दोनो प्रकार के व्यापारो मे, कुछ मार्गो की बडी महत्वपूर्ण भूमिका थी। सबसे विख्यात महापथ 'उत्तरापथ' था जो राजगृह से प्रारम्भ होकर वैशाली, नालदा, पाटलिपुत्र, वाराणसी, प्रयाग, कान्यकुब्ज, सकाश्य, सोरो, वेरजा, मथुरा, इन्द्रप्रस्थ, शाकल होते हुए तक्षशिला तक जाता था। इस मार्ग पर व्यापारियो एव विद्यार्थियो की विशेष चहल–पहल रहती थी। उत्तर से दक्षिणपूर्ण जाने वाला मार्ग (अर्थात् राजगृह से श्रावस्ती) एव दक्षिणापथ मार्ग (अर्थात् श्रावस्ती से प्रतिष्ठान), तत्कालीन प्रमुख व्यापारिक मार्ग थे। देश के सभी व्यापारिक केन्द्र इन मार्गों से सम्बद्ध थे। स्थल–मार्ग के सुदूर व्यापार मे बैलगाडी ही परिवहन का सबसे प्रचलित साधन थी। नदी एव समुद्री मार्गो के द्वारा भी व्यापार होता था। नदी मार्गों मे, गगा एव यमुना महत्वपूर्ण जलमार्ग प्रस्तुत करती थी। समुद्री मार्ग मुख्यत विदेशी व्यापार के साधन थे। बेबिलोन, सुवर्णभूमि एव ताम्रलिप्ति आदि देशो के साथ भारत के प्रगाढ व्यापारिक सम्बन्ध थे। समुद्री यात्रा मे अति विशालकाय नौकाये प्रयुक्त होती थी जिनमे सैकडो व्यक्ति एक साथ यात्रा करते थे। भरूकच्छ, सुप्पारक, करम्बिय, गम्भीर, सेरिव भारतीय समुद्रतटो पर स्थित प्रमुख बन्दरगाह थे। थल एव

जलमार्गो की सुदूर यात्राये निर्बाध नही थी। थल मार्ग मे पानी का अभाव, भोजन की कमी, चोर–डाकुओ का आतक, विषैले पेड–पौधे, रेतीली तप्त भूमि आदि कठिनाइयॉ थी। ऐसे सकट की घडी मे 'सार्थवाह' अपनी सूझ–बूझ से यात्रियो की प्राण–रक्षा करता था। इसके अतिरिक्त वन पथो मे सुरक्षा एव सहायता हेतु वन–रक्षको की भी सेवाये ली जाती थी। जल मार्ग के खतरे और भी गम्भीर थे। जहाजो मे छेद होने एव डूब जाने की घटनाये प्राय घटित होती रहती थी। जल भॅवर, भीमकाय समुद्री जीव भी समुद्री–यात्रियो के प्राणो को सकट पैदा कर देते थे। ऐसी विकट स्थितियो मे ज्येष्ठ नाविक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए यात्रियो को सकट–मुक्त करने का प्रयास करते थे। प्राय ऐसी परिस्थिति मे प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य मे दैवी शक्तियो द्वारा व्यापारियो की प्राणरक्षा करने का उल्लेख मिलता है।

इस युग की प्रमुख व्यापारिक वस्तुओ मे खाद्यान्न, रेशमी वस्त्र, सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र, सुगन्धित वस्तुऐ, जवाहरात एव सुवर्ण आदि बहुमूल्य धातुओ से निर्मित वस्तुये, हाथीदॉत के सामान, साग–सब्जी, घोडे, पक्षी, शराब, मृण्पात्र, मॉस–मछली की गणना की जा सकती है। इन युग मे मुद्रा एव ऋण के चलन एव श्रेणी सगठन ने व्यापारिक प्रगति मे बडी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। धनाढ्य श्रेष्ठी छोटे व्यापारियो को ऋण वितरित किया करते थे इसके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो से भी व्यापारी ऋण लिया करते थे। कभी–२ राजकीय सहायता रूप मे भी व्यापारियो को व्यापार हेतु पूॅजी प्राप्त हुआ करती थी। विकसित अर्थतन्त्र में केवल वस्तु–विनमय प्रणाली से काम नहीं चल सकता। मुद्रा का चलन इस युग की अपनी विशिष्टता है। सबसे प्रचलित सिक्का कार्षापण था, पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि ये रजत एव ताम्र निर्मित हुआ करते थे। मूल्यवान् सौदो एव दानादि में हिरण्य एव निष्क नामक

स्वर्णमुद्राये प्रचलित थी। अर्द्ध–कार्षापण, पाद, मासक, अर्ध–मासक एव काकणिका का प्रयोग भी मुद्रा के रूप मे होता था। सगठन एव सहयोग, इस युग के आर्थिक क्षेत्र की विशिष्टता थी विभिन्न व्यवसायियो ने अपने–अपने सगठन बना लिये थे जो 'श्रेणी' नाम से जाना जाता था। जातक कथाओ मे अट्‌ठारह प्रकार के शिल्पकारो की श्रेणियो का उल्लेख आया है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य व्यवसायियो के भी इसी प्रकार के सगठन कार्यरत थे। इन सगठनो के प्रधान को 'जेठ्‌ठक' या 'प्रमुख' कहा जाता था। व्यापारिक 'श्रेणियो के प्रधान को 'श्रेष्ठी' कहा जाता था। इन श्रेष्ठियो की आर्थिक, राजनैतिक एव सामाजिक स्थिति बडी सम्मानजनक थी। श्रेणी–मुख्यो को कुछ न्यायायिक एव प्रशासनिक अधिकार भी प्राप्त थे।

खान–पान के सम्बन्ध मे कोई विशेष नियम–निषेध नहीं दिखायी पडता। अन्नाहार का प्रचुरता से प्रयोग किया जाता था परन्तु समाज मे मासाहार का भी खूब प्रचलन था। मद्यपान भी किया जाता था। यद्यपि मासाहार एव मादक पेय पदार्थ का प्रयोग समाज के सभी वर्गो द्वारा किया जाता था परन्तु इसके विरोध मे भी स्वर साहित्य मे कहीं कहीं सुनाई पडता है। बुद्ध युग मे आमोद–प्रमोद के विभिन्न साधन प्रचलित थे।गायन, वादन, नृत्य के सगीतमय कार्यक्रम का आनन्द समाज के सभी वर्ग के लोग लेते थे। अनेक प्रकार के उत्सवो का आयोजन होता था जिसे लोग बडी धूमधान से मनाते थे। सुरामहोत्सव एव अन्य उत्सवो मे कभी–कभी स्त्री–पुरुष दोनो अनियत्रित मद्यपान का आनन्द लेते थे। द्यूतक्रीडा, जलक्रीडा, उद्यान क्रीडा, सर्प–नृत्य, नटो के करतब, मल्लयुद्ध मनोरजन के अन्य प्रमुख प्रचलित साधन थे।

बुद्ध का युग सामाजिक एव सास्कृतिक परिवर्तन का युग था। इसमे ग्रामीण समाज के साथ–साथ नगर एव नागरिक जीवन का विकास सामने आता है। ग्राम जीवन मे भी पशु–पालन से अधिक महत्व अब कृषि व्यवसाय का दीखता है। जनसख्या की वृद्धि परिलक्षित होती है। नगर जीवन उद्योग और व्यापार का विकास सूचित करता है। इस विकास के साथ मुद्राओ का प्रचलन भी प्रारम्भ हुआ और श्रेणियो की व्यवस्था और विकास देखने मे आते है। गणराज्य क्रमश महाजनपदो को स्थान देते है और इस युग के शासक **व्यवसायिक सेना विशेषज्ञ**, प्रशासनिक सहायको से अपने प्रभुत्व को दृढ करते है। पुरानी ग्रामीण और गणव्यवस्था के बदलने से धर्म की नयी व्याख्या सामने आती है। पुराने देवताओ का यज्ञ प्रधान पूजन अब पर्याप्त नहीं प्रतीत होता। प्रकृति एव समाज के सचालक तत्व के रूप मे धर्म को एक औपौरुषेय नियामक शक्ति के रूप मे देखना आरम्भ होता है। मानव जीवन कर्म से सचालित होता है उसका बन्धन देवताओ को प्रसन्न करके नहीं काटा जा सकता इसके लिए तत्वज्ञान आवश्यक है। ससार स्वय दुख रूप है, हेय है, उसे छोड कर सन्यास आश्रयनीय है।

इस प्रकार धर्म की व्याख्या के अब दो परस्पर विरुद्ध प्रकार उभरते है एक ओर पुरानी वैदिक ब्राह्मण परम्परा जो धर्म को विधि विधान कर्मकाण्ड और वर्णाश्रम के द्वारा परिभाषित करती थी दूसरी ओर श्रमण परम्परा जो कि निवृत्ति मार्गी एव ज्ञान मार्गी थी। यह ब्राह्मण श्रमण परम्पराओ का सघर्ष उसी युग का है जिस युग मे नगर जीवन का उदय हो रहा था और गणराज्यो का ह्रास।

ग्रन्थ-सूची

मूल-स्रोत

विनयपिटक — हि०अ० राहुल साकृत्यायन, बौद्ध आकर ग्रथमाला, काशी विद्यापीठ, वाराणसी १९६४

दीघ–निकाय — सम्पा, भिक्षु जगदीश काश्यप, भाग १–३, नालन्दा, बिहार, १९५८, हि०अ० भिक्षु राहलु साकृत्यायन एव भिक्षु जगदीश काश्यप महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, १९३६ ई०।

अगुत्तर निकाय — सम्पा, भिक्षु जगदीश काश्यप, चार जिन्दो मे प्रकाशित, नालन्दा, देवनागरी पालि सीरीज, १९६०, हि० अनुवाद, आनन्द कोसल्यायन, महाबोधि सभा, कलकत्ता, १९५७, जिल्द १, जिल्द २, १९५७, जिल्द ३, १९६३, जिल्द ४, १९६६

जातक — सपा, भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा, बिहार, १९३७, खु०नि० खड ३, भाग १, २, हि०अनु० आनन्द कौसल्यायन, खण्ड १ से ६, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९४१

सयुत्त–निकाय — सपा, भिक्षु जदीश काश्यप, भाग १ से ४ तक, नालन्दा, १९५६, हि०अ० भिक्षु जगदीश काश्यप त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित, दो भाग मे, महाबोधि सभा, सारनाथ बनारस, ई०स० १९५४।

मज्झिम निकाय — सपा, वी०पी० बापट एव भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा, बिहार, १९५६, हि०अ० राहुल साकृत्यायन महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, १९३३

खुद्दकपाठ — सम्पा०, भिक्षु जगदीश काश्यप खुद्दकनिकाय, खड १, नालन्दा, बिहार, १९५६।

इतिवुत्तक — सपा, भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा, बिहार, १९५६

उदान — सम्पा०, भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा, बिहार १९५६, हि०अनु०, भिक्षु जगदीश काश्यप, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी।

अपदान — सपा०, भिक्षु जगदीश काश्यप, खुद्दक निकाय, खड ६, नालन्दा, बिहार १९५५।

थेरगाथा — सम्पा०, भिक्षु जगदीश काश्यप, खुद्दकनिकाय, भाग २, १९५६, हि०अनु० भिक्षु धर्मरत्न, महाबोधि समा, सारनाथ, वारणसी, १९५५।

थेरीगाथा — सपा०, भिक्षु जगदीश काश्यप, खुद्दकनिकाय, खंड २, १९५६, हि०अनु० डॉ० भरतसिह उपाध्याय, थेरीगाथाएं, नई दिल्ली, निगाथा साहित्य मडल १९३७।

पाराजिक — भिक्षु जगदीश काश्यप, (सम्पा०), नालन्दा, बिहार, १९५८, हि०अनु० राहुल साकृत्यायन, विनयपिटक, सारनाथ, वाराणसी १९३५।

पेतवत्थु — सम्पा० भिक्षु जगदीश काश्यप, १६५६, नालन्दा, बिहार।

महानिद्देस — सपा०, भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा, बिहार, १६५६।

विमानवत्थु — सम्पा०, भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा, बिहार।

धम्मपद — सम्पा०, भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा, बिहार, १६५८, हि०अनु० भिक्षु धर्मरक्षित महाबोधी सभा, सारनाथ, वारणसी, १६५५।

चरिया–पिटक — (मूलपालि और हि०अ० सहित) अनुवादक, भिक्षु धर्मरक्षित, मास्टर खेलाडीलाल एण्ड सन्स, कचौडी गली, बनारस, १६५४।

चुल्लवग्ग एव महावग्ग — भिक्षु जगदीश काश्यप, (सपा०), नालन्दा, बिहार, १६३७, हि०अनु० राहलु साकृत्यायन, विनयपिटक, सारनाथ, विनयपिटक, सारनाथ, वाराणसी, १६३५।

सुत्त निपात — सम्पा० भिक्षु जगदीश काश्यप, खुद्दकनिकाय, खड १, नालन्दा, बिहार, १६५६, हि०अनु० जगदीश काश्यप, महाबोधि सभा, वाराणसी, १६५५।

बुद्धवस — सपा०, भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा, बिहार, १६५६।

एस० बी० ई० वाल्यूम — हरमन यकोबी

बाइस एव पैतालीस

वाल्मीकि रामायण — गीता प्रेस, गोरखपुर

अर्थशास्त्र — आर० पी० काग्डे
तीन जिल्दो मे, बाम्बे

सहायक ग्रंथ :

अग्रवाल, वासुदेव शरण — पाणिनीकालीन भारतवर्ष, वाराणसी, १६६४

एलेन जे — कैटलाग आव क्वाइन्स इन एन्शिएट इडिया, १६३०

अच्छेलाल — प्राचीन भारत मे कृषि, वारणसी, १६८०

ओम प्रकाश — प्राचीन भारत का सामाजिक एव आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, १६६४

आद्या, जी०एल० — अर्ली इडियन एकोनामिक्स, दिल्ली, १६६६

आयगर, के०वी०आर० — आस्पेक्ट्स ऑफ ऐनशियन्ट इन्डियन इकोनामिक थॉट, बनारस, १६३४

अनस्टे, वीरा — गिल्डस–इडियन, इन[illegible]या आफ सोशल साइन्सस, वाल्यूमा सात,

अप्पादुरई, ए — इकोनामिक कन्डीशनस्, इन साउथ इडिया, २ वाल्यूम, मद्रास, १६३६

अग्रवाल, आर०एस० — ट्रेड सेटर्ल ऐड रुट्स इन नॉरदर्न इडिया, दिल्ली, बी०आर० पब्लिशिग कारपोरेशन, १६८२

अग्रवाल, डी०पी० — दि कॉपर ब्रोज एज इन इडिया नयी दिल्ली, मुशीराम मनोहरलाल

अल्तेकर, ए०एस० — ए हिस्ट्री ऑफ इम्पारटेट एशेट टाउस ऐड सिटीज इन गुजरात ऐड काठियावाड, बम्बई १६२६

अयगर, के०पी० रगास्वामी — ऐस्पेक्ट्स ऑफ एशेट इडियन एकोनामिक थाट, वाराणसी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, १६३४

बाजपेई, कृष्णदत्त — भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, १६५१

बदोपध्याय, एन०सी० — इकोनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन ऐनशियन्ट इण्डिया, कलकत्ता, १६५४

बनर्जी, एम०एन०, — मैटलस एण्ड मैटलर्जी इन इडिया, आई एच क्यू ३

बरनेट, एल०डी० — कार्मिशयल एण्ड पालिटिकल कन्कशेन्स ऑफ ऐनशियन्ट इन्डिया विथ दी वेस्ट, BSOAS, I, १६१७

बाशम, ए०एल० — दि वन्डर दैट वाज इन्डिया, लन्दन, १६५४

बोस, ए०एन० — सोशल एण्ड रुरल इकोनामि ऑफ नार्दन इण्डिया, २ वाल्यूमस, कलकत्ता, १६४२–४५

वुच, एम०ए० — एकोनामिक लाइफ इन ऐनशियट इडिया, इलाहाबाद, २ वाल्यूमस १६७६

बन्दोपाध्याय, नारायण चन्द्र — एकनामिक लाईफ एण्ड प्रोग्रेस इन एशेट इडिया, कलकत्ता, दि यूनिवर्सिटी, १६४५

बनर्जी, पी०एन० — ए स्टडी ऑफ इडियन एकानामिक्स, लदन, १६४०

बनर्जी, एन०आर० — दि आयरन एज इन इडिया, दिल्ली, मुशीराम मनोहरलाल, १६६५

वाशम, ए०एल० — अद्भुत भारत, आगरा, शिवलाल अग्रवाल ऐड कपनी, १६७२

बोस, ए०एन० — सोशल ऐड रुरल इकानामी ऑफ नारदर्न इडिया, कलकत्ता युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, १६४५ खण्ड एक एवं खण्ड दो

भट्टाचार्य, एस०सी०	सम एस्पैक्ट्स ऑफ इडियन सोसाइटी, कलकत्ता फर्म के एल०एम० प्राइवेट लिमिटेड १९७८
बनर्जी, सुरेशचन्द्र	एस्पेक्ट्स ऑफ एशेट इडियन लाइफ, कलकत्ता, पुथी पुस्तक, १९७२
बर्डवुड, जी०सी०एम०	इन्डस्ट्रीयन आर्टस् ऑफ इन्डिया, रीप्रिन्ट, १९७१
चकवर्ती, हरिपद	ट्रेड एण्ड कामर्स ऑफ ऐनशियन्ट इन्डिया कलकत्ता, १९६६
चट्टोपाध्याय, बी०	ऐशेज इन ऐनशियट इडियन एकोनामिक हिस्ट्री, न्यू दिल्ली, १९८७
चकवर्ती, एस०के०	करेन्सी प्राब्लम्स इन एशेट इडिया, कलकत्ता, १९६६
डेविड्स, रीज	बुद्धिस्ट इडिया, दिल्ली, पटना, १९७१, बुद्धिज्म इट्स हिस्ट्री एण्ड लिटरेचर, लन्दन, १८८६
दास, बी०एस०	स्टडीज इन द एकोनामिक हिस्ट्री ऑफ उडीसा, कलकत्ता, १९७८
दास, शुक्ला	सोशियो–एकोनामिक्स लाइफ ऑफ नार्दन इडिया (५५० ई० ६५० ईस्वी), न्यू दिल्ली, १९८०
डेविड्स, टी०डब्लू० राइस	बुद्धिस्ट इडिया, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास, १९७१
दास, एस०के०	एकनामिक हिस्ट्री ऑफ एशेट इडिया, इलाहाबाद, बोहरा पब्लिशसर एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, १९८०
दूबे एस० एन०	क्रास करेन्ट ऑफ बुद्धिज्म
दास, दीपकरजन	एकनामिक हिस्ट्री ऑफ दि डेक्कन, दिल्ली, मुशीराम मनोहरलाल, १९६९
फिक्, आर०	इग्लिस–ट्रान्सलेशन, एस०के० मित्रा, कलकत्ता १९२०
फेयर सर्विस, वाल्टर ए०	'दि रुट्स ऑफ एशेट इडिया', लदन दि यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, प्रेस, १९७५
गायगर, विल्हेलम	पालि लिटरेचर एण्ड लैग्वेज, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९५६
गोयल, श्रीराम	विश्व की प्राचीन सभ्यताए, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९०
गागुली, के०के०	ज्वैलरी इन ऐनशिन्ट इडिया, ISIA, X, १९४२

गोपाल, लल्लनजी	दि एकोनामिक लाइफ ऑफ नार्दन इडिया, दिल्ली, १९६५, आस्पैक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन ऐनशियट इडिया, वाराणसी, १९८०,
गोपाल, एम०एच	मौर्यन पब्लिक फाइनेन्स, लन्दन १९३५
गुप्ता, परमेश्वरी लाल	क्वाइन्स, नयी दिल्ली नेशनल बुक ट्रस्ट, १९६९
घिल्डियाल, डॉ० अच्युतानन्द	प्राचीन राजवश और बौद्ध धर्म (छठी शताब्दी ई०पू० से सातवीं शताब्दी तक) विवेक घिल्डियाल बन्धु, श्रीनगर गढवाल, वाराणसी १९७६
हुसैनी, एम०ए०क्यू०	इकानॉमिक हिस्ट्री ऑफ इडिया, खण्ड एक, कलकत्ता, १९६३
इरविन, जे०	इन्डियन टैक्सटाइल इन हिस्टारिकल पर्सपैक्टीव, इन टैक्सटाइल्स एण्ड आर्नामैन्ट्स ऑफ इन्डिया, ई०डी० व्हीलर, न्यूयार्क, १९५६
जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम	विनयपिटक के आधार पर भारतीय भौतिक जीवन की एक झलक, जे०यू० पी०एच०एस०, १९५१–५२
जैन, बीना	गिल्ड आर्गनाइजेशन इन ऐनशियन्ट इडिया, दिल्ली, १९९०
जैन, कैलाशचन्द्र	प्राचीन भारतीय सामाजिक एव आर्थिक सस्थाए, भोपाल, मध्यप्रदेश छिदी
जोशी, मुरलीधर	'आर्थिक पद्धतियॉ', लखनऊ, हिन्दी ग्रथ अकादमी, १९६३
जैन, डॉ० कोमलचन्द्र	पालि साहित्य का इतिहास विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९८७
जैन, जगदीश चन्द्र	ऐन्शैन्ट इण्डिया ऐज् डिफ्किटैड इन द जैन कैनन, बम्बई
कनिघम, अजेक्जेडर	ज्योग्राफी आव एन्शियट इडिया का हिन्दी अनुवाद, प्राचीन भारत का भूगोल अनु० डॉ० जगदीश चन्द्र आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, १९७१
कनिघम, अजेक्जेडर	क्वाइन्स आव एन्शियट इडिया फाम द अलीयेस्ट टाइम्स टू दी सेवेन्थ सेन्चुरी, प्रकाशित पत्र, लन्दन, १८९१
कुमारस्वामी, ए०के०	इन्डियन काफ्टस मैन, लन्दन, १९०९
खेर, एन०एन०	एग्रेरियन एण्ड फिसिकल एकोनामि ऑफ ऐनशियट इडिया, दिल्ली, १९७३

काणे, पी०वी० — हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पूना, भडारकर ओरियन्टल रिसर्ज इस्टीट्यूट, १६३०–४६

कृष्णाराव, एम०वी० — स्टडीज इन कौटिल्य, दिल्ली मुशीराम मनोहरलाल, १६५८

लाहा, विमलाचरण — प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल रामकृष्ण द्विवेदी द्वारा अनुदित, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १६७२

लॉ, बी०सी० — इडिया ऐज डिस्क्राइण्ड इन अली टैस्टस् ऑफ बुद्धिजम एण्ड जैनिजम, लन्दन, १६४१

लिली, आर्थर — दी लाईफ ऑफ बुद्धा सीमा पब्लिकेशनस् सी–३, १६, आर०पी० बाग, देलही ११०००७, प्रथम सस्करण १६७४

मिश्र, जयशकर — प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, वाराणसी, १६८०

मुखर्जी, राधाकुमुद — ए हिस्ट्री आव इडियन शिपिग, लन्दन, १६१२

मोतीचन्द्र — प्राचीन भारतीय वेशभूषा, प्रयाग, सम्वत् २००७

महतो, एम०एल० — जातक कालीन भारतीय सस्कृति, पटना, १६५८

मिश्र, रमानाथ — प्राचीन भारतीय समाज, अर्थ–व्यवस्था एव धर्म, भोपाल, १६६१

मिश्र, श्याम मनोहर — दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास, नई दिल्ली, १६६५

मिश्र, सच्चिदानद — प्राचीन भारत मे ग्राम एव ग्राम्य जीवन, गोरखपुर, १६८४

मुकर्जी, आर०के — हिन्दू सभ्यता, दिल्ली, १६७५ चन्द्रगुप्त मौय और उसका काल, दिल्ली, १६६०

मैकडानेल, ए०ए० — वैदिक इनडैक्स ऑफ नेमस् एण्ड सब्जैक्ट्स २ वाल्यूमस, दिल्ली १६६७

मैती, एस०के० — अर्ली इन्डियन क्वाइन्स एण्ड करेन्सी सिटम, दिल्ली, १६७०

मजूमदार, आर०सी० — कारपोरेट लाइफ इन ऐनशियन्ट इडिया, न्यू दिल्ली, १६६४

मैक्किन्डल, जे०डब्लू० — ऐनशियन्ट इडिया ऐस डिस्काइब्ड बाइ मेगस्थनीज एण्ड एरियन, लन्दन, १८७७

मेहता, आर०एल० — प्री–बुद्धिस्ट इडिया, बाम्बे, १६३६

मिश्रा, जी०एस०पी० — द ऐज ऑफ विनया, दिल्ली, १६७२

मुखर्जी, आर०के० — हिस्ट्री ऑफ इन्डियन शिपिग एण्ड मैरिटीम ऐक्टीवटी, लन्दन, १९१२

मोतीचन्द्र — सार्थवाह, पटना, १९५३

मोतीचन्द्र — ट्रेड एण्ड ट्रेड रुट्स इन ऐनशियन्ट इन्डिया, नयी दिल्ली, १९७७

मजूमदार, आर०सी० एव पुसालकर — इ०डी० (सपा) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इडियन पीपुल दि वैदिक एज, बम्बई भारतीय विद्या भवन, १९५७

मजूमदार, आर०सी० एव पुसालकर — ई०डी० इ०डी० (सपा) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इडियन पीपुल दि वैदिक एज, बम्बई भारतीय विद्या भवन, १९६८

मजूमदार, आर०सी० एव पुसालकर — ई०डी० इ०डी० (सपा) हिस्ट्री एण्ड कल्वर ऑफ दि इडियन पीपुल दि वैदिक एज, बम्बई भारतीय विद्या भवन, १९६८

मजूमदार, आर०सी० एव पुसालकर — ई०डी० इ०डी० (सपा) हिस्ट्री एण्ड कल्वर ऑफ दि इडियन पीपुल दि क्लासिकल ऐज, बम्बई भारतीय विद्या भवन, १९६८

मजूमदार, आर०सी० एव पुसालकर — ई०डी० इ०डी० (सपा) हिस्ट्री एण्ड कल्वर ऑफ दि इडियन पीपुल दि क्लासिकल ऐज, बम्बई भारतीय विद्या भवन, १९७०

मजूमदार, रमेश चन्द्र — एशेट इडिया, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास, १९५२

मिश्र, शिवशकर — मुद्रा बैकिग एव अतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कपनी ऑफ इडिया लिमिटेड, १९७५

मिश्रा, सुदामा — जनपद स्टेट इन एशेट इडिया, वाराणसी, भारतीय विद्या प्रकाशन, १९७३

मुकर्जी, राधाकमल — दि फाउन्डेशन ऑफ इडियन इकनामिक्स लदन लागमैन्स ग्रीन ऐंड कपनी, १९१६

मुकर्जी, आर०के० — इडियन शिपिग, इलाहाबाद, किताब महल, १९६२

मुकर्जी, आर०के० — चन्द्रगुप्त मौर्य ऐंड हिज टाइम्स, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास, १९६६

मेहता, आर०एल० — प्री–बुद्धिस्ट इडिया, बम्बई,१९३९

मिश्र, श्याम मनोहर — प्राचीन भारत मे आर्थिक जीवन, प्रामानिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, १९९७

निगम, श्याम सुन्दर — एकोनामिक आर्गनाइजेशन इन ऐनशियन्ट इडिया, दिल्ली, १६७५

नियोगी, एस०पी० — मर्चेन्ट्स इन वैदिक एण्ड हिरोइक इडिया, मार्डन रिव्यू, ८३, १६५३

अर्पेट, जी० — ऑन दि ऐनशियन्ट कामर्स ऑफ इन्डिया, मद्रास, १८७६

पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र — फाउन्डेशन ऑफ इडियन कल्चर वाल्यूम दो, डाइमैनस्न्स ऑफ ऐनशियन्ट इडियन सोशल हिस्ट्री, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिर्सस प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र — बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, १६७६

पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र — स्टडीज इन द ओरिजिन्स ऑफ् बुद्धिज्म, इलाहाबाद, १६५७

पाडेय, जयनारायण — पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, १६६५

पुसालकर, ए०डी० — एज ऑफ इम्परियल यूनीटि, १६६५, क्लासिकल ऐज, बाम्बे, १६६२

प्राणनाथ, — ए स्टडी इन द एकोनामिक कन्डीशन ऑफ इडिया, रीप्रिन्ट, इलाहाबाद, १६८०

प्रसाद, बेनी — स्टेट इन ऐनशियन्ट इडिया, इलाहाबाद, १६२३

प्रसाद, पी०सी० — फारन ट्रेड एण्ड कामर्स इन ऐनशियन्ट इडिया, दिल्ली, १६७७

प्रकाश, बुध — इडिया ऐड दि वर्ल्ड, होशियारपुर, १६६४

प्रसाद, प्रकाश चरन — फारेन ट्रेड ऐड कामर्स इन एशेट इडिया, नई दिल्ली, अभिनव पब्लिकेशन, १६७७

प्रसाद, बेनी — थ्योरी ऑफ गर्वन्मेट इन एशेट इडिया, इलाहाबाद, सैंट्रल बुक डिपो, १६७४

प्राणनाथ, — ए स्टडी इन द एकोनामिक कन्डीशन ऑफ इडिया, लदन, रायल एशियाटिक सोसाइटी, १६२६

फेयरसर्विस, वाल्टर ए० — दि रुटस ऑफ एशेट इंडिया, लदन दि यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, १६७५

रायचौधरी, हेमचन्द्र — पालिटिकल हिस्ट्री आव एन्शियट इडिया, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १६५३

राय, जैमल — द अर्बन—रुरल एकोनामि एण्ड सोशल चेन्जज इन ऐनशियन्ट इडिया, वाराणसी, १६७४

राइस डेविड्स, टी० डब्लू	बौद्धभारत, हि० अ० ध्रुवनाथ चतुर्वेदी किताब महल, ५६ ए जीरो रोड, इलाहाबाद
रैपसन, ई जे	इडियन क्वाइन्स वाराणसी, इन्डोलॉलिकल, बुक हाउस, १६५६
राय, उदय नारायण	प्राचीन भारत के नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, हिन्दुस्तान एकेडमी, १६६५
राव, एस आर	शिपिग एण्ड मेरीटाइम ट्रेड ऑफ दि इडस पीपुल्स, १६६५
रिनपोछे, बेन समदोड	दी सोसल फिलासफी ऑफ बुद्धिज्म के० उ० नि० शी० सस्थान, सारनाथ वाराणसी, प्रथम, सस्करण, १६७५
राइज डेविडस, सी०एफ०	अली इकोनामिक कन्डीशन्स इन नार्दन इन्डिया, JRAS १६०१
शास्त्री, नीलकण्ठ	नन्द–मौर्य–युगीन भारत, वाराणसी, १६६६
शास्त्री, नीलकण्ठ	एज आफ नन्दाज एण्ड मोर्याज, दिल्ली, १६६७
सत्यप्रकाश	क्वाएनेज इन एन्शिएट इडिया, १६६८
साकृत्यायन राहुल	बुद्धचर्या, सारनाथ, १६५१
श्रीवास्तव, कृष्णकुमारी	पालि जातक– एक सास्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, १६८४
शर्मा, रामशरण	प्रारभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, १६६२, प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाए, नयी दिल्ली, १६६३
सैलीतोर, आर० एन०	अर्ली इडियन इकोनामिक हिस्ट्री, बाम्बे, १६७३
समदार, जे०एन०	लैक्चर्स आन एकोनामिक कन्डीशन ऑफ ऐनशियन्ट इडिया, कलकत्ता, १६२२, इन्ड्रस्टिर्ल एण्ड ट्रेडिग आर्गनाइजेशन इन ऐनशियन्ट इडिया, जे० बी० ओ० आर० एस० सात, (चार), १६२१
सामदार, जे०एन०	लैक्चर्स आन इकोनामिक कन्डीशन ऑफ ऐनशियन्ट इडिया, कलकत्ता, १६२२, इन्ड्रस्टिर्ल एण्ड ट्रेडिग आर्गनाइजेशन इन ऐनशियन्ट इडिया JBORS, VII (IV), १६२१
शास्त्री, के० ए० एन०	(सपा०) कम्प्रीहैन्सीव हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, वाल्यूम दो, कलकत्ता, १६५७

शर्मा, ब्रिजेन्द्र नाथ	सोशल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ नार्दन इडिया, न्यू दिल्ली, १६७२
शर्मा, आर०एस०	प्रास्पैक्टीव्स इन सोशल एण्ड एकोनामिक लाइफ, बाम्बे, १६६६
सिह, एम०एम०	लाईफ इन ऐनशियन्ट इडिया इन प्री मौर्यन टाइम्स, न्यू दिल्ली, १६५४
सरकार, डी०सी०	(सपा०) स्टडीज इन इडियन क्वाइन्स, दिल्ली, १६६८
श्रीवास्तव, जी०पी०	ट्रैडिशनल फार्म आफ को–परेशन इन इडिया, न्यू दिल्ली, १६६२
सुब्बाराव, एन०एस०	एकोनामिक एण्ड पोलिटिकल कन्डीशन्स इन ऐनशियन्ट इडिया, मैसूर, १६११
शर्मा, आर०एस०	स्टेजेस इन एशेट इडिया इकानामी, दिल्ली १६५१
शास्त्री, नीलकठ	एडवास हिस्टरी ऑफ इडिया, दिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स, १६७०
श्रीवास्तव, बलराम	ट्रेड एण्ड कामर्स इन एशेट इडिया, वाराणसी, चौखम्भा सस्कृत सिरीज आफिस, १६६८
स्मिथ, विसेट ए०	क्वाइन्स ऑफ एशेट इडिया, वाराणसी इन्डोलॉजिकल बुक हाउस, १६७२
समद्दर, जे०एन०	लैक्चर्स ऑफ दि इकानामिक कडिशन आफ एशेट इडिया, कलकत्ता यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता
सालेतोर, आर०एन	अर्ली इडियन इकानामिक हिस्ट्री, बम्बई एन०एम० त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड, १६७३
सिन्हा, बी०पी०	डायनेस्टी हिस्ट्री ऑफ मगध, दिल्ली, अभिनव पब्लिकेशन, १६७७
सोराव, के०टी०एस०	अर्बन सैन्टर्स एण्ड अर्गनाइजेशन ऐस रिफीलैकटेड इन द पाली विनय एण्ड सुत्त पिटक्स– दिल्ली
साकृत्यायन, स्व महापण्डित राहुल	पालि साहित्य का इतिहास, उत्तर प्रदेश शासन, हिन्दी भवन, माहत्मा गाधी मार्ग, लखनऊ
श्रीवास्तव, डॉ० प्रिया	प्राचीन बौद्ध ग्रथों में वर्णित धातु एव धातु कर्म, रत्ना पब्लिकेशन्स वाराणसी
सालेतोर, आर० एन०	अर्ली इंडियन इकानामिक हिस्टरी, बम्बई: एन० एम० त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड, १६७३;

सिन्हा, बी० पी०	डायनेस्टी हिस्टरी ऑव मगध, दिल्ली, अभिनव पब्लिकेशन १९७७
सोराव, के० टी० एस०	अर्बन सैन्टर्स एण्ड अर्बनाइजेशन ऐस रिफीलैकटेड इन द पाली विनय एण्ड सयुक्त पिटक्स–दिल्ली
साकृत्यायन, स्व महापण्डित राहुल	पालि साहित्य का इतिहास उत्तर प्रदेश शासन हिन्दी भवन महात्मा गॉधी मार्ग, लखनऊ
श्रीवास्तव, डा० प्रिया	प्राचीन बौद्ध ग्रन्थो मे वर्णित धातु एव धातु कर्म, रत्ना पब्लिकेशन्स वाराणसी
सैलीतोर, आर० एन०	अर्ली इडियन इकोनामिक हिस्ट्री, बाम्बे, १९७३
सामदार, जे० एन०	लैक्चर्स आन इकोनामिक कन्डीशन ऑफ ऐनशियन्ट इडिया, कलकत्ता, १९२२
सामदार, जे० एन०	इन्ड्रस्टिर्ल एण्ड ट्रेडिग आर्गनाइजेशन इन ऐनशियन्ट इडिया, JBORS, VII (IV)
शास्त्री के० ए० एन०	कम्प्रीहैन्सीव हिस्ट्री ऑव इन्डिया, वाल्यूम II, कलकत्ता, १९५७
ठाकुर, विजय	अर्बनाइजेशन इन ऐनशियन्ट इन्डिया, न्यू दिल्ली, १९८१, रोल ऑफ गिल्डस इन ऐनशियन्ट इन्डयन अर्बन ऐडमिनसट्रेशन, जे०एन०एस०आई०, ४६
थापर, रोमिला	अशोक एण्ड द डिक्लाइन ऑफ दी मौर्यान् आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९८५ए १९९३
थपल्याल, के०के०	गिल्डस् इन ऐनशियट इडिया, न्यू दिल्ली, १९९६
टाउटेन, जे०	दि इकॉनामिक लाइफ ऑफ दि एशेट वर्ल्ड, न्यूयार्क, १९३०
त्रिपाठी, रामनरेश	प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार, इलाहाबाद, बोहरा पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, १९८१
उपाध्याय, भरतसिह	पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, शकसंवत् २०१८
उपाध्याय, भरतसिह	बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, शकसवत् २०१८
उपाध्याय, वासुदेव	प्राचीन भारतीय मुद्राए, पटना, प्रज्ञा प्रकाशन, १९७१
उपाध्याय, प्रो० वासुदेव	प्राचीन भारतीय अभिलेख (प्रथम भाग), प्रज्ञा प्रकाशन, पटना १९७०

वाग्ले, नरेन्द्र — सोशायटी इन द टाइम आफ द बुद्धा, बाम्बे, १९६६

वॉट, जी० — डिक्शनरी ऑफ एकोलामिक्स, प्रोडक्टस् ऑफ इडिया, ६ वाल्यूम

वॉट, जी० — कामर्शियल प्रोडक्टस् ऑफ इन्डिया, लन्दन, १९०८

वियागी, मोहनलाल महतो — जातककालीन भारतीय सस्कृति, पटना १९५८

व्यूलर — धर्मसूत्रज, एस० बी० ई० II, XIV
मानव धर्मशास्त्र, एस० बी० ई० XXV

याजदानी, जी० — (सपा०) दि अर्ली हिस्ट्री आफ दि डेकन, बम्बई आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९६०

्रातात्विक स्रोत

ऐक्सक्वेशन्स ऐट पिपरहवा एण्ड गनवरिया– के०एम० श्रीवास्तव, मैमोर न० १४, आर्किलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, न्यू दिल्ली, १९६७–६८

डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु बाई के०एम० श्रीवास्तव, बुकस् एण्ड बुकस्, १९८६, न्यू दिल्ली

एम०सी० जोशी, अर्ली हिस्टारिकल अर्बन ग्रोथ इन इन्डिया, सम आबर्जवेशनस्, पुरातत्व, न० ७, १९७४

ए फुहरर, एन्टीक्वैटीस् ऑफ दि बुद्धाज बर्थ–प्लेस इन द नेपालीज तराई, आर्कलाजीकल सर्वे ऑफ इण्डया, न्यू इम्पीरियल सीरिज, वाल्यूम XXVI (रिप्रीन्टैड, वाराणसी, १९७२)

ए०सी०एल० कार्यायल, इन कनिघम, आर्कलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, रिर्पोटस, (रिप्रीन्टैड, वाराणसी १९७२) वाल्यूम XII, पी० ८७

देवलामित्रा, बुद्धिस्ट मान्यूमैन्टस (कलकत्ता, १९७२) बीबलोग्राफी ऐट द ऐन्ड

द मान्युमैन्टस ऑफ सॉची– जे मार्शल

जे० मार्शल, तक्षशिला (कैम्ब्रिज १९५१) ३ वाल्यूमस्

ऐक्सिवेशनस् ऐट वैशाली– ए०एस० अल्तेकर एण्ड वी० मिश्रा, पब्लिशड् बाई गर्वमेन्ट ऑफ बिहार

बी०सी० लॉ–	सरस्वती इन इण्डियन लिटरेचर, मेमोर न० ५०, ए०एस०आई० एण्ड ऐक्सकिवेशन रिपोर्ट बाई के०के० सिन्हा, पब्लिशड बाई बी०एच०यू०
बी०सी० लॉ–	कौशाम्बी इन इण्डियन लिटरेचर–मेमोर, आर्कलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया ६० एण्ड ऐक्सकेवशन रिपोर्टस इलाहाबाद यूर्निवसर्टी
शास्त्री, हीरानन्द	ऐक्सकेवशनस् ऐट काशी, ऐनुवल रिपोर्ट, १९११–१२ (कलकत्ता १९१५) पी०पी० १३४–४०, १९१९–२० पी०पी० २८–२९
बी०सी० लॉ–	राजगृह इन इण्डियन लिटरेचर मेमोर, आर्कलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया न० ५८
वोगल, जे०पी०एच०,	ऐक्सकेवेशनस् ऐट काशी, ऐनुवल रिपोर्ट, आर्कलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया १९०५–०६ (कलकत्ता १९०९) पी०पी० ६१–८५, १९०६–०७ पी०पी० ४४–६७
बनर्जी, एन०आर० (१९६५)	द आयरन ऐज ऑफ इण्डिया, दिल्ली
बरुआ, बी० (१९३४)	गया एण्ड बोध गया, वाल्यूम दो, कलकत्ता
मार्शल, जे० (१९०५–०६)	राजगिरि एण्ड इट्स रिनेनस् आर्कलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया अनुवल रिपोर्ट– १९०५–०६
मार्शल, जे० एच	(1910-11) ऐक्सकेवेशन् ऐट सहेट–महेट, आर्कलाजिकल सर्वे ३